तुलनात्मक पालि-प्राकृत-अपभ्रंश व्याकरण

डॉ० सुकुमार सेन
भूतपूर्व खैरा प्रोफेसर आफ लिंग्विस्टिक्स
कलकत्ता विश्वविद्यालय

•

अनुवाद
महावीर प्रसाद लखेड़ा
प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद युनिवर्सिटी

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद - १

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद—१ द्वारा प्रकाशित

●

कापी राइट. हिन्दी अनुवाद
लोकभारती प्रकाशन

●

प्रथम संस्करण
२ अक्तूबर, १९६९

●

वासल प्रेस, इलाहाबाद
द्वारा मुद्रित

आमुख

प्रस्तुत पुस्तक का प्रारम्भिक रूप 'इन्डियन लिंग्विस्टिक्स' की जिल्द ११ से शुरू कर बाद के अंकों में क्रमशः प्रकाशित हुआ था और बाद में इस सामग्री को अलग से पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिया गया था। पुस्तक के इस दूसरे संस्करण में मैंने कुछ संशोधन किये हैं और मध्य भारतीय आर्य भाषा की साहित्यिक प्राकृतों का अधिक पूर्ण परिचय दिया है।

पुस्तक के प्रकाशन में तथा सहायक-ग्रन्थ-सूची प्रस्तुत करने में डॉ० एन० एम० कत्रे ने अत्यधिक परिश्रम किया है, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। शब्दानुक्रमणी तैयार करने के लिए श्री भवतारण दत्त, एम० ए० तथा पुस्तक के मुद्रण में सर्वतोभाव से सहयोग देने के लिए जी० एस० प्रेस, मद्रास के अधिकारीगण मेरे धन्यवाद के पात्र हैं।

गेस्ट हाउस
डेक्कन कॉलेज, पूना
४ जून, १९६०

सुकुमार सेन

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

●

●

प्रथम संस्करण
२ अक्तूबर, १९६९

●

वासल प्रेस, इलाहाबाद
द्वारा मुद्रित

मूल्य : १०.००

आमुख

प्रस्तुत पुस्तक का प्रारम्भिक रूप 'इण्डियन लिंग्विस्टिक्स' की जिल्द ११ से शुरू कर बाद के अंकों में क्रमशः प्रकाशित हुआ था और बाद में इस सामग्री को अलग से पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिया गया था। पुस्तक के इस दूसरे संस्करण में मैंने कुछ संशोधन किये हैं और मध्य भारतीय आर्य भाषा की साहित्यिक प्राकृतों का अधिक पूर्ण परिचय दिया है।

पुस्तक के प्रकाशन में तथा सहायक-ग्रन्थ-सूची प्रस्तुत करने में डा० एन० एम० वर्मा ने अत्यधिक परिश्रम किया है, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। शब्दानुक्रमणी तैयार करने के लिए श्री भवनारायण दत्त, एम० ए० तथा पुस्तक के मुद्रण में सर्वतोभाव से सहयोग देने के लिए जी० एस० प्रेस, मद्रास के अधिकारीगण मेरे धन्यवाद के पात्र हैं।

सुकुमार सेन

रेस्ट हाउस
डेकन कॉलेज, पूना
४ जून, १९६०

छ—सख्यावाचक शब्द

सात—क्रियापद

आठ—प्रत्यय

-नौ—समास

●

संकेत-सूची

√ =धातु-चिह्न
* =कल्पित रूप
> =उत्पन्न करता है
< =उत्पन्न हुआ है
अन्य पु०=अन्य पुरुष
अप०=अपभ्रंश
अभि०=अभिलेख
अ० मा० अथवा अर्धमा=अर्धमागधी
अवे०=अवेस्ता
अशो०=अशोकी प्राकृत (अशोक के अभिलेखों की प्राकृत)
आ० भा० आ०=आधुनिक भारतीय आर्य-भाषा
उत्तम पु०=उत्तम पुरुष
ए० व०=एक वचन
का० अथवा काल०=अशोक का कालसी अभिलेख
क्रिया वि०=क्रिया विशेषण
कौशा०=कौशाम्बी अभिलेख
खरो०=खरोष्ठी
खरो० ध०=खरोष्ठी धम्मपद
च०=चतुर्थी विभक्ति
जति०=जतिंगा-रामेश्वर अभिलेख
जोगी०=जोगीमारा अभिलेख
जौ० अथवा जौग०=जौगड अभिलेख
तृ०=तृतीया विभक्ति
द्वि०=द्वितीया विभक्ति
धौ०=धौली अभिलेख
न० लिं० अथवा नपुं०=नपुंसक लिंग
नागा०=नागार्जुन गुहा अभिलेख

नियo=निय प्राकृत
पo=पञ्चमी विभक्ति
पा=पालि
पुo अथवा पुo=पुल्लिग
प्रo=प्रथमा विभक्ति
प्रo पुo=प्रथम पुरुष (उत्तम पुरुष)
प्राo अथवा प्राकृo=प्राकृत
प्राo फाo=प्राचीन फारसी
प्राo भाo आo=प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा
बo वo अथवा बहुवo=बहुवचन
बैo अथवा बैराo=बैराट-अभिलेख
बौo सo=बौद्ध-संस्कृत
ब्रह्मo=ब्रह्मगिरि-अभिलेख
मथिo=मथिया-अभिलेख
भाo=भाब्रू-अभिलेख
भाo अथवा भानo=भान सेहरा-अभिलेख
मo पुo=मध्यम पुरुष
मo भाo आo=मध्य भारतीय आर्य-भाषा
महाo=महाराष्ट्री प्राकृत
मागo=मागधी प्राकृत
रधिo=रधिया अभिलेख
रामo=रामपुरवा-अभिलेख
रुम्मo=रुम्मनदेई-अभिलेख
रूपo=रूपनाथ-अभिलेख
वाo सo=वाजसनेयि सहिता (शुक्ल यजुर्वेद)
वैo=वैदिक-भाषा
शo ब्राo=शतपथ-ब्राह्मण
शाo अथवा शाहा=शाहबाजगढी-अभिलेख
शौo=शौरसेनी प्राकृत
षo=षष्ठी-विभक्ति
सo=सप्तमी विभक्ति
सम्बोo=सम्बोधन

सस०=ससराम-अभिलेख
स०=सम्कृत
सां०=सांची-अभिलेख
सिद्ध०=सिद्धपुर-अभिलेख
सुपा०=सुपारा-अभिलेख
स्त०=स्तम्भ-अभिलेख
स्त्री०=स्त्रीलिंग

तुलनात्मक
पालि-प्राकृत-अपभ्रंश व्याकरण

एक | भूमिका

§१. मध्य-भारतीय-आर्य-भाषा कुछ निश्चित ध्वनि-परिवर्तनो तथा प्रवृत्तियो को लेकर चली और जैसे-जैसे भाषा आगे बढती गयी, ये प्रवृत्तियाँ तथा परिवर्तन भी सबल होते गये। प्रारम्भ से ही इसमे ऋ स्वर का लोप हो गया। म० भा० आ० मे इसके स्थान मे जो (मूल उच्चारण $^{\text{अ}}$र्$^{\text{अ}}$ से अर् होते हुये) अ हुआ, वह इसका सर्वप्रथम एव मूल स्थानापन्न था, जैसा कि इन उदाहरणो से स्पष्ट होता है—वै. विकट–, स. नट–, वट–। इसका दूसरा स्थानापन्न उ (मूल उच्चारण $^{\text{उ}}$र्$^{\text{उ}}$ से उर् होते हुये) निश्चित ही अधिक पुराना था, (जैसा कि प्रा० फा० कुनउतिय, अकुता और परवर्ती वै. वुरु से विदित होता है), परन्तु यह परिवर्तन केवल एक विभाषीय विकास मात्र रह गया। ऋ का इ मे परिवर्तन ऋ के मूल उच्चारण '$^{\text{इ}}$र्$^{\text{इ}}$' के इर् के रूप मे विकृत होने का परिणाम है। ऋ का '$^{\text{इ}}$र्$^{\text{इ}}$' उच्चारण ऋग्वेद के कुछ महत्त्वपूर्ण शब्दो के रूप से समर्थित होता है (जैसे श्रृणोति<*श्रिणोति<*श्रुणोति,* त्रितीय–के स्थान पर तृतीय–, शिथिर<*श्रृथिर)। दीर्घ-सयुक्त स्वर ऐ, औ का ए, ओ मे परिवर्तन म० भा० आ० की एक अन्य आधारभूत विशेषता है। यह परिवर्तन जन-सामान्य के उच्चारण मे इन सयुक्त–स्वरो के प्रथम अश के ह्रस्वीकरण का परिणाम था। व्यञ्जनो मे सबसे पहले तीन सयुक्त व्यञ्जनो तथा ऊष्म (श्, ष्, स्) के साथ सयुक्त व्यञ्जन मे परिवर्तन हुआ। अन्य प्रकार के सयुक्त व्यञ्जन भी धीरे-धीरे समीकृत हुये। ध्वनि-परिवर्तनो मे पूर्वाञ्चल की विभाषा सबसे आगे थी। उत्तर-पश्चिम की विभाषा सर्वाधिक सरक्षणशील थी और इसमे सयुक्त व्यञ्जन अन्य विभाषाओ की अपेक्षा बहुत बाद तक बने रहे तथा इसने कुछ ऐसे भारत-ईरानी रूपो को भी बनाये रखा, जो प्रा० भा० आ० मे भी नही मिलते।

जब अधिकाश विभाषाओ मे पद-मध्य के संयुक्त-व्यञ्जन समीकरण द्वारा द्वित्व-व्यञ्जनो मे परिवर्तित होने लगे और पदादि के संयुक्त-व्यञ्जन भी

सरलीकृत हो गये, तो स्वरमध्यग स्पर्श-व्यञ्जनो (क्, ख्, ग्, घ्; त्, थ्, द्, ध्; प्, फ्, ब्, भ्) मे भी विकार आने लगा। इनमे से एक व्यञ्जन ध् मे तो प्रा० भा० आ० भाषा के काल मे ही विकार आ गया था, क्योकि कुछ ऐतिहासिक शब्द-रूपो मे हम इसे ह् मे परिवर्तित पाते है (जैसे, हित-<धा-; शृणु-हि<---धि-) और परिवर्तन की यह प्रवृत्ति (-ध्->ह्) म० भा० आ० की प्रारम्भिक स्थिति मे स्पष्टतः परिलक्षित होती है (जैसे, अशो. उपदहेवु<*उपदधेयु:)। इसके बाद जिन व्यञ्जनो मे विकार आया वे थे त् और थ्, जो स्वरमध्यग होने पर पहले तो सघोष (अर्थात् द् और ध्) हुये और तब इस-द्-का लोप तथा-ध्-का-ह्-मे परिवर्तन हुआ।-त्-और-थ्-का सघोष मे परिवर्तन पूर्वी एवं पूर्व-मध्य की विभाषाओ मे ईसा-पूर्व प्रथम शती मे प्रतिष्ठित हो चुका था, यद्यपि स्वरमध्यग त् के लोप के कुछ उदाहरण इससे दो शताब्दी पहले की भाषा (अर्थात् अशोक के अभिलेखो की भाषा) मे मिल जाते है (जैसे, अशो० चावुदस<चातुर्दशम्)। स्वरमध्यग-क्-का सघोष-ग्-मे परिवर्तन, जो अशोक के अभिलेखो मे कही-कही ही मिलता है, ईसा की पहली शती तक प्रतिष्ठित हो चुका था। स्वरमध्यग क् का लोप तथा ख् का ह् मे परिवर्तन किन्ही विभाषाओ को छोडकर (जैसा कि स्वरमध्यग द् और ध् के साथ भी हुआ) अन्यत्र सभी जगह ईसा की चौथी शताब्दी के अन्त तक पूर्णतः स्थापित हो चुका था। स्वरमध्यग स्पर्श-व्यञ्जन के सघोषीकरण (यदि वह अघोष हो) तथा उसके लोप अथवा-ह्-मे परिवर्तन के बीच इन व्यञ्जनो के ऊष्म उच्चारण की स्थिति निश्चित रूप से आयी। यह स्थिति उत्तर-पश्चिम के विभाषीय वर्ग-उत्तर-पश्चिमी भारत तथा मध्य एशिया से प्राप्त खरोष्ठी अभिलेखो मे प्रदर्शित हुई है।

दीर्घ संयुक्त-स्वर ऐ, औ के ए, ओ मे परिवर्तित होने मे एक ऐसी प्रवृत्ति अभिलक्षित हुई, जिसने शीघ्र ही म० भा० आ० मे स्वरों की मात्रा को प्रभावित कर दिया। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप संवृत-अक्षर के दीर्घ स्वरो का ह्रस्वीकरण हो गया। अ को छोड़ अन्य स्वरो के बाद आनेवाले पदान्त विसर्ग का लोप हो गया और पदान्त अ: का तीन रूपो मे विकास हुआ-(अ) इसका लोप हो गया (जैसा कि प्राचीन फारसी मे), (आ) यह वाह्य सन्धि के रूप ओ मे बदल गया, और (इ) यह आन्तरिक सन्धि के रूप ए मे परिवर्तित हो गया (जैसा कि ऋ वे० सूरे दुहिता मे)। पदान्त म् के प्रतिनिधि अनुस्वार के अतिरिक्त अन्य सभी पदान्त व्यञ्जनो का अन्तःस्फोट द्वारा लोप हो गया। यह लोप प्राचीन फारसी मे पहले ही हो चुका था, क्योकि इसमे पदान्त म् के सिवाय

केवल र् और श् ही पदान्त मे रह गये थे। तीनो ऊष्म व्यञ्जन (श् , ष् , स्) केवल उत्तर-पश्चिम के विभाषीय वर्ग मे ही कुछ समय तक टिके रहे।[1] अन्य विभाषाओ मे इनके स्थान पर केवल एक ही ऊष्म व्यञ्जन बच रहा, अधिकाश मे दन्त्य स् , परन्तु कही-कही तालव्य श्। ण् और न् मे भेद अधिकाश में उच्चारण की अपेक्षा वर्तनी मे ही रह गया।

द्विवचन का आरम्भ मे ही लोप हो गया। ऋग्वेद मे द्विवचन का प्रयोग सीमित था। अवेस्ता की भाषा मे इसके अत्यल्प उदाहरण मिलते हैं और प्राचीन फारसी मे तो यह लुप्त-प्राय ही है। ऋग्वेद तक मे व्यञ्जनान्त प्रातिपदिको को स्वरान्त बनाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है (जैसे नक्त् >नक्त)। पदान्त-व्यञ्जनो के लोप के कारण म. भा. आ. की शब्द-रूप-प्रक्रिया प्रायः पूर्णतया स्वरान्त-प्रकार तक सीमित रह गयी। स्वरान्त-रूप-प्रणाली भी मुख्यतः दो आदर्शों पर चली—(अ) पुलिङ्ग-नपुसकलिङ्ग शब्दो मे अकारान्त के आदर्श पर, (आ) स्त्रीलिङ्ग शब्दो मे आकारान्त (ईकारान्त) के आदर्श पर। ये दोनो भेद भी म. भा. आ. भाषा काल के अन्त मे केवल एक अकारान्त के आदर्श मे आ मिले।

प्राचीन फारसी की तरह म. भा. आ. मे भी सम्प्रदान का स्थान सम्बन्ध के रूपो ने ले लिया, यद्यपि किन्ही विभाषीय वर्गों मे सम्प्रदान के रूप कुछ समय तक टिके रहे। समरूपता लानेवाले ध्वनि-परिवर्तनो की प्रवृत्तियो के कारण किन्ही विकारी कारक-रूपो के प्रयोग मे स्वभावतः भ्रम होने लगा और इस भ्रम को दूर करने के लिये संज्ञा-जात तथा क्रिया-जात परसर्गों का अधिकाधिक प्रयोग किया जाने लगा।

सम्पन्न-काल अपने समस्त भावात्मक रूपो सहित लुप्त हो गया, जैसा कि प्राचीन फारसी मे भी हुआ था—; इसमे से केवल अह् और विद्-धातुओं के निर्देश-भाव के रूप ही बच रहे और वस्तुत. ये रूप सम्पन्न-काल के हैं भी नही, जैसा कि इनके अर्थ से तथा इनमें प्रथम व्यञ्जन के द्वित्व न होने से प्रकट होता है। अभिप्राय-भाव के रूप सम्भावक तथा अनुज्ञा के रूपो मे जा मिले। जैसा कि प्राचीन फारसी मे हुआ, अनम्पन्न के रूप सामान्य मे मिल गये और इस

---

1. अशोक के अभिलेखो के मध्यदेशीय विभाषीय वर्ग मे श् तथा ष् भी विद्यमान हैं। बाराबर गुफा अभिलेख मे स् के स्थान मे भी ष् मिलता है।

2. बहुत आश्चर्य की बात है कि प्राचीन फारसी मे सम्पन्न-काल का एक ही रूप मिलता है चरिया (विधिलिङ्)।

प्रकार म. भा. आ. के भूत-काल के रूप बने। परन्तु शुद्ध भूतकाल के रूपों का अन्त निश्चित हो गया। ये अपभ्रंश मे टिक न सके, जहाँ भूतकालिक कृदन्त तथा अन्य कृदन्त रूपो ने और अन्य कालो के रूपो ने भी इसका कार्य अपने ऊपर ले लिया।

प्रा. भा. आ. के वर्तमान-व्यूह के धातु-रूपो की अत्यधिक विविधता समाप्त होकर केवल अ तथा अय्>–ए विकरण-युक्त अङ्ग वाले रूप ही अवशिष्ट रह गये। प्रारम्भिक स्तर की म. भा. आ. की किन्ही संरक्षणशील विभाषाओ मे आत्मनेपद के कुछ प्रत्यय कही-कही बने रहे और इनका कुछ प्राकृत विभाषाओ मे केवल कृत्रिम प्रयोग ही होता रहा। आत्मनेपदीय प्रत्यय अपभ्रंश मे सर्वथा लुप्त हो गये। कर्म-वाच्य के रूप म. भा. आ. मे अन्त तक बचे रहे, परन्तु ये रूप आंशिक रूप से सम्भावक के रूपो मे जा मिले, क्योकि सम्भावक के रूपो मे इसी के समान अङ्ग-प्रत्यय लगता था। भविष्यत् के रूप म. भा. आ. के द्वितीय पर्व तक पूर्णतः प्रतिष्ठित रहे। अपभ्रंश मे वर्तमान-कालिक कृदन्त तथा-तव्य प्रत्यय-युक्त-रूप भविष्यत् काल के रूपो के प्रबल प्रतिद्वन्द्वी बन गये।

§ २. वैदिक काल के अन्तिम चरण के आस-पास र्>ल् के आधार पर भारतीय आर्य-भाषा को मोटे तौर पर तीन क्षेत्रीय विभाषीय वर्गो मे बाँटा जा सकता है—उत्तर-पश्चिमी, केन्द्रीय और पूर्वी। यह क्षेत्रीय विभाजन एक ही अर्थ के वाचक विभिन्न शब्दो के क्षेत्रीय प्रयोग से भी समर्थित होता है। 'महाभाष्य' मे पतञ्जलि ने विभिन्न अञ्चलो मे विशेष शब्दो के प्रचलन का उल्लेख किया है; जैसे—कम्बोज (उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र के कोने पर) 'शवति' (<च्यु–, प्रा. फा. शियु–), सुराष्ट्र (पश्चिमी अञ्चल) मे हम्मति (<हम्–), प्राच्य-मध्यदेश मे रहति (<रह्–), परन्तु आर्य-जन गम्-धातु का प्रयोग करते हैं; हँसिया के लिये उदीच्य-जन 'दात्र–' तथा प्राच्य-जन 'दाति–' कहते थे।

§ ३. अशोक के अभिलेख, जिनमें प्रारम्भिक म. भा. आ. की सब से पुरानी तथा सब से कम मिलावटवाली कुछ विस्तृत प्रामाणिक सामग्री प्राप्त होती है, चार सुनिश्चित विभाषीय वर्गों का निर्देश करते है—(१) उत्तर-पश्चिमी अथवा कम्बोज-उदीच्य[१] (२) पश्चिमी अथवा सुराष्ट्र, (३) पूर्व-मध्यवर्ती अथवा प्राच्य-मध्य, और (४) पूर्वी अथवा प्राच्य। उत्तर-पश्चिमी विभाषीय वर्ग की विशेषता यह है कि इसमे तीनो ऊष्म व्यञ्जन श्, ष्, स्

---

१. जिसे एच० डब्ल्यू० बेली ने ठीक ही 'गान्धारी' कहा है।

तथा कुछ सयुक्त व्यञ्जन सुरक्षित हैं। पश्चिमी विभाषीय वर्ग ध्वनि-विकारो मे उत्तर-पश्चिमी की अपेक्षा कम प्राचीनतापरक होते हुये भी व्याकरण तथा शब्द-समूह मे अधिक सरक्षणशील है। यह वैदिक भाषा के सर्वाधिक समीप है। पूर्व-मध्यवर्ती विभाषीय वर्ग मे ल् व्यञ्जन का विशेष आग्रह दिखाई देता है और पूर्वी विभाषीय वर्ग के साथ-साथ यह भी ध्वनि-विकारो तथा वाक्य-विन्यास मे बहुत आगे बढी हुई है। पूर्वी विभाषीय वर्ग मे प्रायः सर्वत्र ल् ही मिलता है। शब्द-समूह की दृष्टि से भी पूर्वी तथा पूर्व-मध्यवर्ती विभाषीय वर्ग एक ही श्रेणी मे आते है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी मे गम्, भुज् का प्रचलन है तो उत्तर-पश्चिमी मे व्रज् , अश् का, परन्तु पूर्वी तथा पूर्व-मध्य-वर्ती मे या, अद् का।

§ ४. परवर्ती अभिलेखो की भाषा पर सस्कृत का प्रभाव बढता गया और इसमें अधिक सूक्ष्म विभाषीय अन्तर समाप्त हो गये, इन अभिलेखो मे तीन मुख्य विभाषीय वर्ग परिलक्षित होते है—(१) उत्तर-पश्चिमी, (२) मध्यवर्ती, और (३) पूर्वी। इनमे से पहला वर्ग अपनी विशेषताओ के कारण सर्वथा भिन्न बना रहा, परन्तु शेष दो वर्गो की भिन्नता केवल ध्वनि-सम्बन्धी ही है। पाली मे हमे मध्यवर्ती तथा पूर्वी का पूर्ण परन्तु कृत्रिम सश्लेष मिलता है, यद्यपि इसमे मध्यवर्ती का प्रभाव ही सर्वोपरि है। परवर्ती अभिलेखो तथा पालि से स्पष्टतः विदित होता है कि ईसा पूर्व पहली शती के अन्त तक शासन के कार्यो तथा साहित्य मे म. भा. आ. का एक अखिल भारतीय रूप प्रतिष्ठित हो चुका था। म. भा. आ. का यह साहित्यिक रूप सस्कृत से लद कर 'बौद्ध-सस्कृत' के नाम से कही जाने वाली भाषा के रूप मे विकसित हुआ, जिसका प्रयोग उत्तर के बौद्धो ने किया। प्रारम्भिक साहित्यिक म. भा. आ. का इससे भी कही अधिक सस्कृत-रूपान्तर महाभारत तथा अपेक्षाकृत पूर्ववर्ती पुराणो की भाषा मे मिलता है।

§ ५. प्राचीन वैयाकरणो द्वारा निर्दिष्ट प्राकृत-भाषाये, जिनका सस्कृत नाटको तथा प्राकृत-काव्यो मे प्रयोग हुआ है, भारतीय आर्य भाषा के विकास की परम्परा मे सीधे-सीधे नही आती। ये प्राकृते म. भा. आ. के द्वितीय पर्व की भाषा के आधार पर कृत्रिम रूप से बनाये गये व्याकरणिक नियमो के अनुसार गढी गयी हैं और इनका जन-समाज की बोलचाल मे प्रयुक्त म. भा. आ. भाषा से वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि काव्यो की सस्कृत का वैदिक भाषा से।

§ ६. अपभ्रश, जिसके बारे मे प्राकृत वैयाकरणो ने बहुत भ्रम पैदा किया है और जिसका उन्होने कृत्रिम रूप प्रस्तुत किया है, वस्तुतः भारतीय आर्य-

भाषा के विकास की सीधी परम्परा मे आती है। म. भा. आ. का द्वितीय पर्व वस्तुतः अपभ्रंश का प्रारम्भिक पर्व है। वैयाकरणो द्वारा प्रस्तुत अपभ्रंश इसके दूसरे पर्व का कुछ गढा हुआ रूप है। अपभ्रंश का तीसरा पर्व आ. भा. आ. का प्राग् रूप है और अवहट्ठ (अर्थात् अपभ्रष्ट) या लौकिक कहा जाता है।

§ ७. म. भा. आ. का विकास-क्रम निम्नलिखित तालिका में प्रदर्शित है—

प्राग् भारतीय आर्य-भाषा (१२०० ई० पू०)
(बोलचाल की तथा साहित्यिक)
प्रारम्भिक वैदिक (१२००-८०० ई० पू०)
(साहित्यिक एव बोलचाल के रूप मे स्पष्ट अन्तर)
परवर्ती वैदिक (८००-५०० ई० पू०)
(साहित्यिक तथा कथ्य रूपो मे अत्यधिक भेद)
सस्कृत (५०० ई० पू०—)
(विद्वानो की साहित्यिक)
बोलचाल की सस्कृत
(जन-सामान्य की साहित्यिक)
प्रथम मध्य भारतीय आर्य विभाषायें
बौद्ध सस्कृत
(७०० ई० पू०-३०० ई०)
उत्तर-पश्चिमी
पश्चिम-मध्यवर्ती
पूर्व-मध्यवर्ती
पूर्वी
द्वितीय मध्य-भारतीय-आर्य
निय प्राकृत
(२००-३०० ई०)
पालि (२००-ई० पू०)
प्राकृत
(साहित्यिक)
अपभ्रंश
(१-६०० ई०)
तृतीय मध्य-भारतीय-आर्य
अवहट्ठ (६००-१२०० ई०)

दो | भाषाएँ, विभाषाएँ तथा विभाषीय वर्ग

१. अभिलेखीय मध्य-भारतीय-आर्य

अ० अशोक के अभिलेखो की भाषा

(प्रारम्भिक अभिलेखीय म० भा० आ०)

§ ८. अशोक के अभिलेखो मे म० भा० आ० की सबसे प्राचीन तथा सबसे अच्छी समसामयिक प्रामाणिक सामग्री प्राप्त होती है। ईसा-पूर्व की तीन शताब्दियो के अभिलेख, जो अशोक के अभिलेखो की तुलना मे बहुत छोटे और खण्डित हैं, इस सामग्री के पूरक हैं, ये अभिलेख है—उत्तर बंगाल से प्राप्त महा-स्थान-प्रस्तर-अभिलेख, मध्य-भारत मे जोगीमारा-गुफा-अभिलेख, ग्वालियर मे वेसनगर स्तम्भ अभिलेख, उत्तर-पश्चिमी भारत मे शिनकोट-मञ्जूषा-अभिलेख, (खरोष्ठी मे) तथा उडीसा मे हाथीगुम्फा-गुफा-अभिलेख, इत्यादि। अशोक के अभिलेखो की साहित्यिक शैली तत्कालीन बोलचाल की भाषा से बहुत दूर नही है। इन अभिलेखो मे चार विस्तृत विभाषीय वर्ग प्रकट होते है और ईसा-पूर्व के अन्य अभिलेखो से भी विभाषीय वर्गो की यह स्थिति समर्थित होती है।[1] ये हैं—(अ) उत्तर-पश्चिमी विभाषीय वर्ग (अथवा उदीच्य), (आ) दक्षिण-पश्चिमी विभाषा (या प्रतीच्य), (इ) मध्य-पूर्वी विभाषीय वर्ग (या प्राच्य-मध्य) और (ई) पूर्वी विभाषीय वर्ग (या प्राच्य)।

अभिलेखो की वर्तनी मे द्वित्व-व्यञ्जन के स्थान पर एक ही व्यञ्जन लिखा जाता है (जैसे-क्क के स्थान पर क, क्ख के स्थान पर ख)। खरोष्ठी-लेखो मे स्वरो की दीर्घता प्रदर्शित नही की जाती। अ, आ के अतिरिक्त अन्य स्वरो के बाद आनेवाली नासिक्य-ध्वनि बहुत निर्बल होती थी और इसलिए कही-कही इ, ई, उ, ऊ के बाद यह लिखी नही गयी है।

---

१. विभाषाओ के इस वर्गीकरण का पतञ्जलि ने भी उल्लेख किया है।

§ ६ उत्तर-पश्चिमी विभाषीय वर्ग का प्रतिनिधित्व अशोक के शाहबाजगढी तथा मानसेहरा के शिलालेख करते हैं, जो खरोष्ठी लिपि मे लिखे गये हैं। इन दोनों शिलालेखो के पाठ मे भी विभाषीय अन्तर है। शाहबाजगढी का शिलालेख मानसेहरा के लेख की अपेक्षा अपने वर्ग का सच्चा प्रतिनिधि है, क्योंकि मानसेहरा के लेख की भाषा मे मध्य-पूर्वी विभाषीय वर्ग का प्रभाव झलकता है। शाहबाजगढी के लेख सघोष व्यञ्जन के अघोषीकरण (यथा–पढ <वाढम्, समयस्पि<*स्मिन्) तथा ए को इ मे ह्रस्व करने (यथा–दुवि<द्वे, भगि अग्नि<भागे अन्ये)। शाहबाजगढी के लेख मे प्रथमा एकवचन का रूप ओकारान्त है, जब कि मानसेहरा मे एकारान्त रूप का अधिक प्रयोग हुआ है। शाहबाजगढी के पाठ मे पद के आदि के भ– का ह– मे परिवर्तन नही हुआ [1], जबकि मानसेहरा तथा अन्य पाठो मे यह परिवर्तन हुआ है [2]।

इस विभाषीय वर्ग की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित है—

ऋ का परिवर्तन रि, रु या (विरल रूप से) र मे हुआ है तथा अनुवर्ती दन्त्य स्पर्श का मूर्धन्यीकरण कही हुआ है और कही नहीं भी हुआ है; मान. भ्रिग–वुध्रेसु (–वुढेसु, स. वृद्धेषु) वध्रि(–*वढि, सं. वृद्धि) शाह., अगकिट्र (=क्रिट–कृत–),–), ग्रहथ–।

क्ष् के स्थान मे प्रायः सर्वत्र च्छ् हो गया है, शाह्.मान.—मोछ<मोक्ष– इत्यादि, परन्तु शाह. खुद्रक–, मान. खुद–<क्षुद्र (क)—।

स्म् और स्व् का स्प् हो गया है, शाह. मान –स्पि<–स्मिन् (अधिक. ए. व. का प्रत्यय), स्पग्रम्<स्वर्गम्।

र् युक्त सयुक्त-व्यञ्जनो का सामान्यतः सरलीकरण नही हुआ; शाह मान. प्रज–, श्रमन–, ध्रम–(=धर्म–), द्रशन–(=दर्शन–) इत्यादि, परन्तु शाह्. दियध–, मान. दियढ–<द्वि–अर्ध–।

स् युक्त सयुक्त-व्यञ्जनो का कही-कही समीकरण हुआ है, परन्तु इनके अनुवर्ती दन्त्य-स्पर्श का मूर्धन्यीकरण कही हुआ है और कही नही; शाह. मान. ग्रहथ–'गृहस्थ', अस्ति, उठन–<उत-स्थान–; शाह. अस्त–, मान. अठ–'आठ'।

दन्त्य-स्पर्शो का मूर्धन्यीकरण इस विभाषीय वर्ग मे अन्य विभाषाओ की अपेक्षा अधिक अनुलक्षणीय है। इस प्रकार शाह विस्त्रिटेन, गिर.

---

१. इसका केवल एक अपवाद 'होति' (केवल एक वार) मिलता है।

२. मानसेहरा मे भोति' रूप केवल एक वार आया है।

विस्ततेन 'फैले हुये'; शाह. अठ, गिर. अथ-<अर्थ-; मान. अेडश, गिर. त्रैदस 'तेरह'; शाह. मान. ओषढनि, काल. धौ. जौग. ओसधानि 'जडी-बूटियाँ'। शाहबाजगढी की विभाषा मे संभवतः मूर्धन्य स्पर्शों का उच्चारण वर्त्स्य होता था, अन्यथा मूर्धन्य तथा दन्त्य स्पर्शो मे ऐसा घाल-मेल न होने पाता जैसा कि निम्न उदाहरणो मे-त्रेतमति (परन्तु त्रेठम् भी) और अस्तवष-(परन्तु मान. अठवष-)।

य् का अपने पूर्ववर्ती व्यञ्जन मे समीकरण हो गया है; शाह. मान. कलण-'कल्याण', कटव-'कर्तव्य'; शाह. अपच-(मान. अपतिय-) 'अपत्य'; परन्तु शाह. एकतिए, मान. एकतिय (सं० *एकत्य-)।

य्-युक्त नासिक्य संयुक्त-व्यञ्जन तथा ज्ञ् का ञ्ञ के रूप मे समीकरण हो गया है; शाह. मान. अञ-<अन्य-(परन्तु मानम अणञ-), पुञम् (मान पुणम् भी)<पुण्यम्, अञम्<ज्ञानम्।

ह् पदादि के अतिरिक्त अन्य स्थितियो मे एक निर्बल ध्वनि सिद्ध हुई है; शाह मान इ अ इ ह म अ[1] <*मह 'मेरा' शाह ब्रमण-, मान बमण-, <ब्राह्मण-; शाह गरन<गर्हणा।

त्वि प्रत्ययान्त (Gerundial)

इस विभाषीय वर्ग की एक अपनी विशेषता है।

§ १०. दक्षिण-पश्चिमी विभाषा का प्रतिनिधित्व गुजरात के अन्तर्गत जूनागढ मे स्थित गिरनार के शिलालेख करते है। प्रारम्भिक म० भा० आ० विभाषाओ मे यह विभाषा सर्वाधिक प्राचीनतापरक है। इसकी प्रमुख विशेषतायें नीचे गिनायी जा रही हैं।

स् युक्त संयुक्त-व्यञ्जन प्रायः सर्वत्र सुरक्षित हैं; अस्ति, हस्ति,-सस्ति-(-सष्ति-भी) परन्तु इथी < स्त्री—।

प्रा० भा० आ० धातु स्था यहाँ अपने भारत-ईरानी स्ता-रूप में मिलती है, परन्तु सामान्यतः इसके रूप का कोई न कोई व्यञ्जन मूर्धन्य हो गया है; स्टिता, उस्टानम् (मिलाइये अवे. उस्तान-) 'उत्थान' तिष्टंतो, घरस्त 'गृहस्थ'।

क्ष् का उत्तर पश्चिमी विभाषा के समान च्छ् हो गया है; व्रछा 'वृक्ष' छुद (क)<क्षुद्र (क)-, परन्तु इथी-झख-<स्त्री-अध्यक्ष—।

र् युक्त संयुक्त व्यञ्जन के समीकृत अथवा असमीकृत रूप समान संख्या मे मिलते हैं; अतिकातम् या अतिक्रातम् 'बीत गये' ती अथवा त्री 'तीन', परता या परत्रा 'परजन्म मे', सव अथवा सर्व 'सब'।

---

१. यह मय-अथवा मम-का प्रतिरूप भी हो सकता है।

य्—युक्त-व्यञ्जनो का समीकरण हुआ है, परन्तु—व्य् का नही; अपचम् (स. अपत्यम्), कलान–'कल्याण', इथी-भ्रख (स० स्त्री-अध्यक्ष), परन्तु मगव्या 'शिकार', कतव्या—।

ऋ का अ अथवा व् से अनुगमित होने पर उ हो गया है; मग 'मृग', मत (परन्तु शाह. मट) 'मृत', दढ–(परन्तु शाह. मान. काल. दिढ–) 'दृढ', कतंत्रता (परन्तु शाह. मान. काल. कित–, शाह. क्रिट–या किट्र–) 'कृतज्ञता', वुत–(शाह. मान. धौ. मे भी; काल. मे–वत–भी)<वृत्त—।

—त्व्–और–त्म्–के स्थान मे–तप्–हो गया है और–द्व्–कही-कहीं–द्ुव्–हो गया है,—त्पा<—त्वा (gerund), चत्पारो 'चार', अत्प–'आत्म, अपना', दुवादस–'द्वादश', परन्तु द्वे, द्वो 'दो'।

अधिकरण एकवचन का विभक्ति-प्रत्यय–स्म–का–म्ह–हो गया है, जब कि उत्तर-पश्चिमी विभाषा में इसका–स्प्–तथा अन्य विभाषाओ मे–स्(स्)–हुआ है;–म्हि<–स्मिन्।

समापिका क्रिया (Tinite verb) के कुछ आत्मनेपदी प्रत्यय (Middle endings) केवल इसी विभाषा मे सुरक्षित हैं।[1]

कुछ शब्द विशिष्ट रूप से इसी विभाषा मे मिलते हैं, थइर (अन्यत्र 'वुढ') 'वूढा, स्थविर', पन्थ–(अन्यत्र 'मग') 'रास्ता', यारिस.. ...तारिस (अन्यत्र (य्) आदिस ..तादिश) 'जैसा......तैसा', महिड़ा 'महिला', पसति (अन्यत्र दखति, देखति) 'देखता है'।

पूर्ण तत्सम रूप 'भवति' तथा तद्भव रूप 'होति' दोनो का ही यहाँ समान रूप से प्रयोग मिलता है।

§ ११. मध्य-पूर्वी विभाषीय वर्ग का प्रतिनिधित्व कालसी (मसूरी के समीप) का शिलालेख तथा टोपरा (दिल्ली) का स्तम्भ-लेख करते है। जोगी-मारा गुहा-अभिलेख भी इसी विभाषा से सम्बद्ध है, परन्तु इसमे केवल श् मिलता है। दशरथ के नागार्जुनी पहाडी गुहा-अभिलेख मे केवल ष् मिलता है, जो वर्तनी की भूल के कारण श् तथा ष् दोनो के स्थान मे प्रयुक्त हुआ जान पडता है। पूर्वी विभाषा के समान मध्य-पूर्वी विभाषीय-वर्ग में निम्नलिखित विशेषतायें अभिलक्षित होती हैं—

र् का स्थान सामान्यतः ल् ने ग्रहण किया है।

श् तथा ष् कही-कही बच रहे हैं।

पदान्त–अः म–ए हो गया है।

---

१. प्राचीन—अरे,—एरन्,—आरु भी इनमें शामिल हैं।

पदान्त–अ का प्रायः दीर्घ हो गया है; आहा<आह, काल. लोकसा (सं. लोकस्य) 'लोगो का'। स्वार्थे–क (–की) प्रत्यय का अधिक प्रयोग किया गया है और यह प्रायः तालव्यीकृत (Palatalized)–क्य (–क्यो) के रूप मे मिलता है; काल. नातिक्य (सं. ज्ञातिः) 'नातेदार' टो. अढकोसिक्य–<क्रोशिक–, जोगी. देवदशिक्यि<–दाशिकी।

पद-मध्य ओ को इ मे बदलने की प्रवृत्ति दिखायी देती है; कलेति <करोति।

स् (ष्) तथा र् युक्त संयुक्त-व्यञ्जनो का सर्वत्र समीकरण हो गया है; अठ<अष्ट, अर्थ; सव–<सर्व, अथि<अस्ति, निखमंतु (सं० निष्क्रामन्तु) 'वे सब बाहर चले जायें'।

त् तथा व् के बाद–य् के स्थान मे–इय् हो गया है, परन्तु य् अपने पूर्ववर्ती द् अथवा ल् मे समीकृत हो गया है; अपतिय (सं० अपत्य)-'सन्तान', करविय<कर्तव्य,–अज<अद्य 'आज', मझ<मध्य, उयान,<उद्यान–, कयान <कल्याण–परन्तु–त्य के समीकरण के भी उदाहरण मिल जाते हैं, टो. सच<सत्य—।

व्यञ्जन के बाद के–व्–के स्थान मे–उ (व्)–हो गया है, परन्तु पदमध्यग –त्व–के स्थान मे–त्–हुआ है; दुवे, दुवादस–; धौ. जौग. अनुलना<अत्वरणा; काल. कुवापि<क्वापि 'कही भी'; स्त. अमि. सुवे सुवे<श्वः श्वः; काल. चतालि<चत्वारि 'चार'।

—स्म्–तथा–ष्म्–का–प्फ्–हो गया है, तुफे<*तुष्म–'तुम', अफाक (म्)<अस्माकम् 'हमारा', येतफा<यः तस्मात् अथवा एतस्मात्। परन्तु अधिकरण एकवचन के विभक्ति-प्रत्यय–स्मिन् का–(स्) सि[1] हुआ है।

---

१. –स्म्–के इस निराले परिवर्तन से–सि की व्युत्पत्ति किसी अन्य स्रोत मे खोजना, उदाहरणार्थ–अस् मे अन्त होनेवाले प्रतिपदिको के अशुद्ध विश्लेषण से–सि को व्युत्पत्ति मानना, स्वाभाविक है। परन्तु अर्धमागधी–स्सिम् स्पष्टतः इस–सि से सम्बद्ध है। –स्मिन्>–(स्) सि परिवर्तन मे पुरोगामी समीकरण (Progressive Assimilation) हुआ है अथवा बीच की कडी के रूप मे–स्मिन्>–स्पि (–स्प्–>–स्स्–) परिवर्तन हाथी. बहसति–मित– <बृहस्पति-मित्र मे मिलता है। –स्म्–>–(प्) फ् परिवर्तन मे बीच की कडी –स्फ्–थी जो शायद पूर्वी विभाषा की विशेषता थी।

क्ष् के स्थान में हमेशा (क्) क्ख् हुआ है: मोख<मोक्ष, खुद–<क्षुद्र; परन्तु छणति<क्षणति।

स्वरमध्यग–क्–का सघोषीकरण कहीं-कहीं मिलता है; काल. अंतियोग 'अन्तिओकुस्' (एक यूनानी नाम) जबकि गिर. अंतियक–, शाह. मान. धौ. जौग. अंतियोक–, मात्र् अधिगिच्य<–कृत्य, जौग. हिद-लोगन्<इवलोकम्।

भ्–धातु का सदैव. हु–हो जाता है।

§ १२. पूर्वी विभाषीय वर्ग के अन्तर्गत अशोक के शेष सभी अभिलेख (अर्थात् धौली और जौगड़ के शिलालेख, सभी लघु शिलालेख तथा स्तम्भलेख, अशोक के गुहा-अभिलेख, महास्थान प्रस्तर-लेख, सोहगौरा ताम्रपत्र-अभिलेख तथा खारवेल और उसकी रानियों के हाथीगुम्फा अभिलेख) आ जाते हैं। पूर्वी विभाषीय वर्ग को मध्य-पूर्वी विभाषीय वर्ग से अलग करनेवाली प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है—

–अः का हमेशा–ए हो गया है तथा पदमध्यग–ओ–प्रायः–ए–हो जाता है।

श् तथा स् के स्थान मे सदैव स् आता है।

प्रथम पुरुष सर्वनाम के विविध प्रकार के रूप मिलते हैं।

वर्तमानकालिक कृदन्त आत्मनेपदी प्रत्यय—मीन है; स्त. अभि. पायमीन–, धौ विपतिपादयमीन—।

आ. लंका के अभिलेखों की विभाषा

§ १३. लंका के अभिलेख. जिनकी तिथि ईसा पूर्व पहली शती से लेकर ईसा की तीसरी शती तक है, अधिकांश में मध्य-पूर्वी विभाषीय वर्ग से मेल खाते हैं। इनमें प्रथमा ए. व. का प्रत्यय–ए>–इ है, सप्तमी ए. व. का प्रत्यय–हि<–सि है तथा इनमें कहीं-कहीं ष् के स्थान में श् है। अपभ्रंश के साथ इनकी समानता यह है कि इनमें षष्ठी ए. व. का प्रत्यय–ह <–स है।[1]

इ. अश्वघोष के नाटकों की विभाषा

§ १४. मध्य एशिया से प्राप्त अश्वघोष के नाटक (ईसा की प्रथम शती) के खण्डित अंशो मे[1] जिनका पाठ-निर्धारण तथा सम्पादन एच. लूडर्स (Lüu-

---

१. Epigraphia Zvlanica, vol. 1, edited by Don Martino de Zilve Wickremasinghe, London, 1912.

chstuecke Buddhistischer Dramen, Berlin, 1911) ने किया, तीन भिन्न विभाषायें मिलती हैं। ये हैं—(१) दुष्ट की विभाषा, (२) गणिका तथा विदूषक की विभाषा, तथा (३) गोभम् की विभाषा। इन विभाषाओं में अशोक के अभिलेखों की सी भाषा के दर्शन होते हैं। इनमें एक अपवाद सुरब- (<सुरत-) के सिवाय अन्यत्र कहीं भी स्वरमध्यग स्पर्शों का सघोषीकरण नहीं हुआ है। साहित्यिक रचना होने के कारण इस नाटक की भाषा में संस्कृत का पर्याप्त प्रभाव अप्रत्याशित नहीं है।

दुष्ट की विभाषा को लूडर्स ने प्राचीन मागधी (या पूर्वी प्राकृत) कहा है, क्योंकि इसमें मागधी की तीन प्रमुख विशेषतायें मिलती हैं—र् के स्थान में ल्, ष्, स् के स्थान में श् तथा—अः (एवं पदमध्यग ओ) के स्थान में—ए; जैसे, कालना<कारणान, किश्श<*किष्य, वुत्ते<वृत्तः, कलेमि<करोमि। इसमें मिलनेवाली मागधी की अन्य विशेषतायें हैं—(१) अहकम् (अशो. हकम्)<अहम् तथा (२) षष्ठी ए. व. में—हो प्रत्यय, जैसे—मक्कटहो।

गणिका तथा विदूषक की विभाषा प्राचीन शौरसेनी (या पश्चिमी प्राकृत) है। इसमें पदान्त—अः का—ओ हो गया है (दुक्करो, आदंमो); न्य् के स्थान में—ञ्ञ् हो गया है (हञ्ञन्तु<हन्यन्तु), इसी प्रकार ञ् के स्थान में भी ञ्ञ् है (अभिनञ्ञ<अभिज्ञ-), क्ष>ड (जैसे—हिदयेन); र्य्>य्य् (जैसे—धारयि-तव्वो;): क्ष्>क्ख् (जैसे सक्खी, पेक्खामि): वर्तमानकालिक कृदन्तीय आत्मनेपदी प्रत्यय—मान सुरक्षित है (जैसे—भुञ्जमानो, पाटयमानो इत्यादि)। अन्य ध्यान देने योग्य रूप हैं—तुवम् (<त्वम्; प्रा. फा. तुवम्), इमस्स (<*इमस्य; अशो. इमस), खु (अशो. खो), नं (अशो. में भी), कहिं (<*कधिम्), भवां (<भवान्), करीय (कृत्य के लिये), करिय (<*कर्य, कृत्वा) इत्यादि।

गोभम् की विभाषा मध्य-पूर्वी विभाषीय-वर्ग की है (लूडर्स ने इसे प्राचीन अर्ध-मागधी कहा है)। इसमें र् की जगह ल् तथा—अः के स्थान में—ओ है और श् का अभाव है (जैसे—मट्टिदालके, करोमि)। इसमें स्वार्थे—क—, आक,—इक प्रत्ययों का अत्यधिक प्रयोग किया गया है (जैसे—वलमोदनाकम्,—पएडलावक <पाएडर+)।

ई. मध्य-एशिया की खरोष्ठी पाण्डुलिपियों का विभाषीय वर्ग (या निय प्राकृत)

§ १५. मध्य-एशिया से सर औरेल स्टीन (Sir Aurel Stein) द्वारा प्राप्त खरोष्ठी पाण्डुलिपियाँ जिस मध्य भारतीय आर्य विभाषा में लिखी गयीं

हैं, उसे निय प्राकृत नाम दिया गया है, क्योंकि अधिकांश पाण्डुलिपियाँ निय नामक स्थान से प्राप्त हुई हैं। यह प्राकृत शान् शान् राज्य की राज-काज की भाषा थी। इन दस्तावेजों में मुख्यतः राज्य के अधिकारियों के शासन-सम्बन्धी या अन्य पत्र तथा उनको दिये गये आदेश हैं। इनकी तिथि ईसा की तीसरी शती के आसपास की है। यह भाषा मूलतः उत्तर-पश्चिमी भारत से वहाँ गयी थी। यह भाषा अशोक के अभिलेखों की उत्तर-पश्चिमी विभाषा से पर्याप्त समानता रखती है तथा उत्तर-पश्चिमी भारत से प्राप्त खरोष्ठी पाण्डुलिपियों की भाषा के बहुत ही समीप है। परन्तु इस भाषा पर पड़ोसी ईरानी, तोखारी तथा मंगोली भाषाओं का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। खरोष्ठी धम्मपद (Le manuscript Kharosthi du Dhammapada: Les fragmants Dutreuil de Rhins—Emile Senart, 'Journal Asiatique', Sept.-Oct. 1898) की भाषा निय-प्राकृत से मिलती-जुलती है, परन्तु साहित्यिक रचना होने के कारण धम्मपद की भाषा कुछ प्राचीन है।

§ १६. खरोष्ठी पाण्डुलिपियों के विभाषीय वर्ग के निम्नलिखित विशिष्ट लक्षण हैं।

तत्सम तथा अर्ध-तत्सम शब्दों में अय तथा अव का क्रमशः ए और ओ के रूप में संकोचन नहीं हुआ है।

पदान्त–य,–या,–ये का–इ हो गया है: खरो. ध. भवनइ<भावनायाम्, समवइ<समवाय, भावइ<भावने: निय. मुलि<मूल्य, एश्वरि <ऐश्वर्य—।

पद के आदि में न होने पर ए का इ में परिवर्तन करने की प्रवृत्ति है: खरो. ध. इमि<इमे 'ए', उवितो<उपेतः: निय. छित्र<क्षेत्र—।

पदान्त–ओ का कहीं-कहीं–उ हो गया है: खरो. ध. मझु<*मध्यतो, मध्यत. 'बीच से', प्रनु<*प्राणो, प्राणः।

ह्, भ् तथा व् के बाद आनेवाले उ के स्थान में प्रायः ओ मिलता है: निय. खरो. ध. बहो<बहु 'अनेक, बहुत', खरो. ध. ब्रोहि<बृहि- निय. प्रहोद<प्रभूत—।

स्वरमध्यग स्पर्श, ऊष्म (स्. श्. ष्) तथा अन्तःस्थ वर्णों का सघोषीकरण हुआ है और ऊष्मों को छोड़ अन्य का कहीं-कहीं लोप होकर उनके स्थान में श्रुति 'glide' के रूप में अलिफ अथवा–ह्–आ गया है: खरो. ध. यथ <यथा, प्रशम्सति 'प्रशंसा करते हैं', सदिइ<सन्तिके,–भोइ<भोग–, म–यि<मा–चित्, त्वय<त्वचा, धम्मिहो<धार्मिकः, रोअ–मेह<रोग–मोह–,

पढम<प्रथम; निय. अवगज<अवकाश–, कोडि<कोटि–दझ[1]<दास, दितए, दितग<*दितक 'दिया हुआ', गोयरि<गोचर, भोयम्न<भोजन—।

नासिक्य अथवा ऊष्म (स्, श्, ष्) से युक्त संयुक्त–व्यञ्जन में अघोष वर्णों का सघोषीकरण खरोष्ठी धम्मपद में मिलता है; पगसन<पङ्कासन्न 'कीचड़ में सना',–सगपमनो<सङ्कल्पमनस्–, पज<पञ्च–, सिज<सिञ्च, एक-प्रननुअविम<*एकप्राणानुकम्पिय्य, सवन्नो<सम्पन्न, –दुवकति<दुष्प्रकृति, सघर<संस्कार, अदर<अन्तर–, हृदि<हन्ति, क्षदि<क्षान्ति—।

कहीं-कहीं सघोष स्पर्शों का अघोषीकरण भी मिलता है,[2] खरो. ध. विरकु<विरागः, वुधक्त<–गतममकत<समागतः, विकय<विगाह्य, योक-क्षेमस<योगक्षेमस्य (निय. यकक्षेम), किलने<ग्लानः, तएट<दण्ड–, चिवरछि<जीवरक्षि–, पोग<भोग, पल्यि<वलि 'राज्कर'।

निय-प्राकृत में सघोष महाप्राण का अल्पप्राण में परिवर्तन संभवतः पड़ोसी ईरानी तथा आर्येतर भाषाओं के प्रभाव से हुआ है; बुम 'भूमि', तनना<धना-नाम्, सद<सध 'साथ'।

पदादि के अघोष व्यञ्जन के सघोषीकरण के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं, ये उदाहरण बहुत-कुछ वर्तनी के दोष के फलस्वरूप भी हो सकते हैं, खरो. ध. बतित<पतित–'गिरा हुआ', निय. देन<तेन, दनु<तनु।

विसर्ग-|-ख् अथवा क्ष् का सरलीकरण या इनके स्थान में केवल ह् का रह जाना खरोष्ठी धम्मपद में कहीं-कहीं मिलता है; खरोः ध. दुह<दुःख, अनवेहिनो<अनपेक्षिणः, अवेह<अपेक्षा।

अपने ऊष्म उच्चारण के कारण इसमें कहीं-कहीं मूल घ् (तथा थ् के परिवर्तन से प्राप्त घ्) तथा ऊष्म (स्, श्, ष्) का एक दूसरे के स्थान पर भ्रम-पूर्ण प्रयोग किया गया है; खरोः ध. मसुरु<मधुरः, गशन<गाथानाम् शिशिल<शिथिल, निय. मसु<मधु, असिमत्र<अधिमात्राः विसिन्या<विधिज्ञ– (BSOS, Xi, P. 776)।

यद्यपि तीनों अघोष ऊष्म (स् श् ष्) थोड़ा-बहुत सुरक्षित हैं, परन्तु अधिक रुचि दन्त्य स् की ओर है। सघोष ऊष्म ज् जिसे स् या झ् लिखा गया

---

१. झ्=ज़्

२. नियप्राकृत में पदादि के व्यञ्जन में भी विकार होता है। सघोष-अघोष व्यञ्जनों के घालमेल में वर्तनी का भी काफी दोष है। देखिए, ruBrow § 14।

है) भी विद्यमान है। निय ने ज़् (जिसे ज़् या श् लिखा गया है), ग् (जिसे ग् या य् लिखा गया है), तथा ड् (जिसे ड् लिखा गया है) को भी सुरक्षित रखा है।

अन्य मभाआ भाषाओं की तरह इसमे क्ष्, स्क्, तथा स्च् सयुक्त-व्यञ्जनो का (च्) छ्, (क्) ख् तथा (च्) छ् के रूप मे पूर्णत. विकास नही हुआ है और इसके लिये इस प्राकृत की वर्तनी मे अलग चिह्न हैं।

व् का कही-कही म् हो गया है, खरो ध नम<नावम्, भमन<भावना; निय एम<एवम्, चिमर<चीवर-।

ऋ के स्थान मे खरो ध मे अ, उ, रु या रि (जैसे—मुदु<मृत·, सवुतो <सवृतः, स्वति<स्मृति-, व्रिढ<वृद्ध, द्रिढ<दृढ) तथा निय मे अ, इ, उ, रु या रि (जैसे—अनहेतु<ऋण-, किड<कृत-, हुडि<भृति-, ऋित<हृत-, पुछिदवो<*पृच्छितव्य-) हो गया है।

पदान्त-अ. खरो ध मे -ओ हो गया और यह -ओ भी अक्सर -उ हो गया है (जैसे—पनितो, पनितु<पण्डितः)। निय मे या तो पदान्त -अः का लोप हो गया है (प्राचीन फारसी के समान) या इसका -ए अथवा -ओ मे परिवर्तन हो गया है, मनुश[1] <मनुष्य·, से<सः, तदो<ततः।

र् तथा ल्[2] से युक्त सयुक्त-व्यञ्जन प्राय सुरक्षित हैं, खरो ध प्रनोदि <प्राप्नोति, ब्रोमि<ब्रवीमि, तत्रइ<तत्र-चित् या तत्रायम्, कीर्त<कीर्ति-, प्रधति 'पीछे पडता है', ब्रुम्मेधिनो<दुर्मेधिनः, भद्रग्रु<भद्रदव·, सव्रसि<सर्वशः, सर्वि<सर्व-, धर्म (धम भी), मार्ग, वर्धति (वढति भी), परिव्रयति[3] <परिव्रजति, द्रिघम्<दीर्घम्, मेत्र<मैत्र-, पर्वइदस<प्रव्रजितस्य, भयदशिम <-र्दशि-, कुय<कुर्यात्। निय अग्र, अत्र, अल्प, सर्व (सव भी), अर्घ (अघ, अढ भी), सर्घ (सघ भी)<सार्धम्, अर्थ, दर्शन, कर्तवो (कटवो भी); परन्तु अय <आर्य-, उन<ऊर्णा, उट<उष्ट्र, मशु<श्मश्रु।

नासिक्य-युक्त सयुक्त-व्यञ्जनो का नासिक्य मे समीकरण हो गया है, खरो ध प्रनोवि<प्राप्नोति, पणिदो<पण्डित., दण<दण्ड-(परन्तु निय दड), छिन<छिन्द, उदुमर<उदुम्बर-, गमिर<गम्भीर-, ब्रमनो<ब्राह्मणः, सत्रम्

---

१ Burrow ने इसको मूलत द्वितीया का रूप माना है (§ ५३)।

२ ल् केवल निय मे ही सुरक्षित है। खरो ध मे इसका समीकरण हो गया है, जैसे— -सगप<सङ्कल्प-, अप<अल्पम्।

३. बयति 'घूमता है' भी।

<संयमः, कुञरु<कुञ्जरः, प्रञ<प्रज्ञा, पुञे<पुण्ये-, शुञ्<शून्य, समे <सम्यकः। निय भन<भाण्ड-, छिनति<* छिन्दति, बननए<बन्धनाय, परन्तु बधितग, अनति <आज्ञप्ति-, विनति<विज्ञप्ति- ।

श्र् का ष् हो गया है, खरो ध. षवक<श्रावक, निय मषु<श्मश्रु- ।

क्र्, ग्र्, त्र्, द्र्, प्र्, ब्र्, भ्र् तथा स्त् अपरिवर्तित टिके है, खरो ध क्रोधन, ग्रधति, त्रिहि<त्रिभिः, भद्रम्<भद्रम्+, प्रिअप्रिअ<प्रियाप्रिय-, ब्रोमि 'मैं कहता हूँ', सभ्रमु<सम्भ्रम-, हस्त (निय मे भी); निय अग्र, अत्र, प्रति, भ्रत । [एच. डब्ल्यू. बेली (H. W. Bailey) के अनुसार न्त्र्>न्न् समीकरण खरो ध. मे दो शब्दो मे मिलता है—मनभणि (पाली मन्त-भाणी) और तनि मे । परन्तु मनभणि की व्युत्पत्ति मन्द-भाणिन् 'मिठबोला' से करना अधिक ठीक होगा और तनि की व्युत्पत्ति भी तन्त्रे से न करके ताने (तान-'तन्तु, धागा') से करना उचित होगा ।]

स्म् का खरो ध. मे स्व् हो गया है, परन्तु निय मे इसका सामान्यत समीकरण हो गया है, खरो ध. स्वति<स्मृति-, अणुस्वरो<अनुस्मरण-, अस्वि<अस्मिन्;-मि<स्मिन् (अधिक. ए व का प्रत्यय) ।

ष्ट् तथा ष्ठ् का समीकरण हो गया है; खरो ध शेठो<श्रेष्ठः, दिठि <दृष्टि, अठ (निय. मे भी अट), निय जेष्ठ- । परन्तु स्था धातु का स्थ् खरो. ध मे सर्वत्र तथा निय. मे प्रायः ठ् हो गया है; खरो ध ठणेहि <स्थान-, उठन-<उत्-स्थान-, भुम-ठ<भूमि-स्थ-, अणुठहदु<अनुस्था+, निय. वठयग<उपस्थायक- (परन्तु स्तिदग, थिद । ठ् निय के कठ<काष्ठ-, उठ (उट भी) <उष्ट्र- मे दिखायी देता है ।

भिखु (एक जगह पर भिगु भी) को छोड अन्य स्थलो मे क्ष् खरो ध तथा निय मे (जहाँ यह छ् लिखा गया है) अपरिवर्तित है, निय मे श्च् भी टिका है ।

निय. मे ऊष्म (स्, श्, ष्) युक्त सयुक्त-व्यञ्जन सामान्यत असमीकृत है, अस्ति, स्तितग (परन्तु थिद) <स्थित-, वत्स, कश्चि (=कश्चित्), मुष्केषु<मुष्केषु, परन्तु अठि<अस्थि अठि (या अटि) <अष्ट-, कठ <काष्ठ- । खरो ध मे ऊष्म (स्, श्, ष्) युक्त सयुक्त-व्यञ्जनो का अधिकाश मे समीकरण हो गया है, पछ<पश्चात्, अठ<अष्ट-, निखमथ<निष्क्रामथ ।

त्व् (मूल या त्व्<त्म्) टिका है, परन्तु किसी शिन्-ध्वनि (Sibilant) के बाद इसके स्थान मे प् हो जाता है; खरो ध अत्व<ज्ञात्वा, त्वय<त्वचा, छित्वन<* छित्वान, अत्वन (निय. मे भी) <आत्मन, विश्पश, विश्पसि

<विश्वसेत्; निय अश्प<अश्व (परन्तु खरो. व अवलश<अवलाश्वम्, भद्रशु<भद्राश्वः), स्वे<स्वयम्, श्पसु (श्वसु भी) <स्वसा 'बहिन', पुष्प (परन्तु खरो. व पुसविव<पुष्प इव)।

खरो व में ध्व् सुरक्षित है, उध्वरथ<ऊर्ध्वरथ, अध्वन<अध्वानम्। निय में त् तथा द् के बाद के व् के स्थान पर प् हो गया है; चपरिश <चत्वारिंशत्, बवश<द्वादश तथा विति<* द्वित्य–।

द्वितीया ए व का विभक्ति-प्रत्यय –म् लुप्त हो गया है; इसी प्रकार निय. मे प्रथमा ए व. का विभक्ति-प्रत्यय –स् भी नही रहा। खरो व मे प्रथमा ए व का प्रत्यय –ओ>–उ है अथवा इसका लोप हो गया है।

निय के विशेष व्याकरणिक लक्षण नीचे गिनाये जा रहे हैं।

द्विवचन केवल पाद–शब्द के दो रूपो पदेभ्यम् तथा पदेयो (पतेयो, पदयो) मे प्राचीनता-परक प्रवृत्ति के फलस्वरूप बच रहा है।

षष्ठी ए व का नियमित प्रत्यय –अस (=अज) है।

समापिका क्रिया (Finite Verb) के केवल वर्तमान तथा भविष्यत् निर्देश (indicative), वर्तमान तथा भविष्यत् आज्ञा (imperative) तथा वर्तमान सम्भावक (optative) के रूप मिलते हैं। इनमे से वर्तमान सम्भावक के रूपो में हमेशा अविकृत (Primary) प्रत्यय ही लगे हैं (जैसा कि कहीं-कही अशोक की प्राकृतो मे भी), जैसे—करेयसि, करेयति, देयाति (देयेयति), स्यति; मिलाइये अशो शाह मान अपकरेयति, शाह मान (काल वी) सियति<सियाति। सम्पन्न (?), (Perfect) के केवल एक रूप अहुति मे भी अविकृत (Primary) प्रत्यय ही है, जैसा कि अशो शाह मान. अहुति मे भी।

भूतकाल के रूप नियमित रूप से कृदन्तीय कर्मवाच्य (Passive Participle) से बने हैं, जिनमें अन्य पुरुष बहुवचन में –अन्ति तथा उत्तम एवं मध्यम पुरुष में अस् धातु के वर्तमान निर्देश (indicative) के उत्तम एव मध्यम पुरुष के रूप जोड दिये गये हैं, जैसे—श्रुतेमि<श्रुतोऽस्मि, श्रुतम<श्रुताः स्म', वितेमि<दत्तोऽसि, किट 'उसने किया', गतंति 'वे गये'। रूप-रचना का यह प्रकार कहीं-कहीं परवर्ती वैदिक भाषा तथा महाकाव्यों की भाषा में दिखायी देता है, परन्तु भारत-भूमि में प्राप्त किसी भी मध्य भारतीय आर्य भाषा की रचना मे नहीं मिलता। फिर भी बंगला-जैसी नव्य भारतीय आर्य-भाषा मे इस रचना-प्रकार की विद्यमानता इसके विस्तृत प्रयोग की सूचक है।

भूतकालिक कृदन्तीय रूप के क्रियार्थक प्रयोग को विशेषणात्मक प्रयोग

से अलग करने के लिये स्वार्थे –क प्रत्यय का प्रयोग किया गया है, जैसे— गत 'वह गया', गतग 'गया हुआ'।

पूर्वकालिक कृदन्त (gerund) का रूप उत्तर-पश्चिमी अशो प्रा के समान नियमित रूप से –त्वि प्रत्यय के योग से बनाया गया है, जैसे—श्रुनिति, अप्रुछिति 'बिना पूछे'; खरो ध मे –त्वा (न) तथा –इ<–य प्रत्यय भी है।

असमापिका (infinitive) के रूप में –अन मे अन्त होने वाले क्रियाजात-सज्ञा (Verbal Noun) की चतुर्थी का रूप प्रयुक्त हुआ है, जैसे—गच्छनए <*गच्छनाय 'जाने के लिये', देयनए 'देने के लिये', मिलाइये अशो प्रा (शाह) क्षमतए। –तुम् प्रत्यय से निष्पन्न भी कुछ रूप है, जैसे—कर्तुं (करंनए भी), विसजितु (विसर्जनए भी), मिलाइये खरो ध शकरु (?), <सकर्तुम् या संकुर्वन्, अशो प्रा. (गिर) करु (या करु), (धौ जौ) कटु।

२. साहित्यिक मध्य भारतीय आर्य

उ. बौद्ध सस्कृत

§ १७ साहित्यिक म भा आ के अन्तर्गत बौद्ध (अथवा मिश्रित) सस्कृत, पालि तथा वे अनेक प्राकृते आती है, जिनका पुराने वैयाकरणो ने वर्णन अथवा उल्लेख किया है। इन सब पर सस्कृत की छाया तो पडती ही रही है, परन्तु जैसे-जैसे म भा आ. भाषाये ढल कर नव्य भारतीय आर्य भाषाओ की स्थिति के समीप आती गयी और प्रा. भा आ तथा म भा आ के बीच की खाईं विस्तृत होती गयी, सस्कृत का प्रभाव कम होता गया।

ईसा पूर्व की शताब्दियो मे उत्तर-पश्चिमी विभाषा को छोड अन्य म भा आ विभाषायें परस्पर बोधगम्य थी। इसीलिये ईसा की दूसरी शती तक राज-पत्रो (जिनका सम्बन्ध प्रजा के सभी वर्गो से—सामान्य वर्ग से भी—रहता था) मे सस्कृत का प्रयोग नही दिखायी देता। उत्तर-पश्चिमी तथा पश्चिमी विभाषाये, अपनी विशेष वर्ण-रचना तथा रूप-रचना के कारण, मध्य तथा पूर्वी विभाषीय वर्गो से बहुत ही भिन्न हो गयी, और इसलिये यह बहुत ही ध्यान देने योग्य बात है कि ईसा की दूसरी शती मे राजकाज मे सस्कृत का प्रयोग सर्व-प्रथम उत्तर-पश्चिमी भारत के शासको ने ही किया (जैसा कि शक क्षत्रप रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख से प्रमाणित है)।

बौद्ध सस्कृत पालि या किसी अन्य प्राकृत भाषा के समान एकरूप भाषा नही है। इसमे लिखे प्रत्येक ग्रन्थ की भाषा का अपना निराला ढग है ('महावस्तु' या 'ललित विस्तर' जैसी रचनाओ के गद्य तथा पद्य की भाषा

का नमूना परस्पर भिन्न है) । बौद्ध संस्कृत की एक विशेषता यह है कि इसने प्रा भा आ तथा म भा आ के शब्द-रूपों, धातुओं अथवा प्रत्ययों को समान भाव से ग्रहण किया है ।

ऊ. पालि

§ १८ पालि, जो दक्षिणी बौद्धधर्म की पूर्णतः धार्मिक भाषा रही है तथा जिसका विकास संस्कृत के अधिकाधिक प्रभाव के साथ दक्षिण-पश्चिम तथा दक्षिण में हुआ, अशोकी प्राकृत की दक्षिण-पश्चिमी विभाषा से कुछ समानता प्रदर्शित करती है । परन्तु इसकी आधारभूत भाषा में मध्य-पूर्वी विभाषा के कुछ लक्षण परिलक्षित होते हैं (जैसे—अः>–ए तथा र्>ल्) । सघोष महाप्राण व्यञ्जनों के स्थान में ह् का बच रहना तथा स्वर-मध्यग व्यञ्जनों का लोप और उनके स्थान में –य्–, –व्–श्रुति (glide) का सन्निवेश थोड़े ही शब्दों में मिलता है, जैसे—लहु (अशो प्रा में भी) <लघु–, रुहिर <रुधिर–, साहु<साधु–, सुव<शुक–, निय<निज–, सायति<स्वादते । स्वर-मध्यग व्यञ्जनों के सघोषीकरण के भी कुछ उदाहरण मिल जाते हैं, जैसे— उदाहु<उताहो, पतिगच्च<(पटिकच्च भी)<प्रतिकृत्य, निय्यादेति <निर्यातयति, खेल<खेट–, पवेधति<प्रव्यथते । इन परिवर्तनों के अतिरिक्त अन्य बातों में पालि प्रारम्भिक म भा आ की सामान्य प्रवृत्तियों को ठीक-ठीक प्रदर्शित करती है ।

पालि की निम्नलिखित विशेषतायें हैं—

शब्द में स्वरों के अ अ अ (आ) क्रम को अक्सर बदल कर अ इ अ (आ) कर दिया गया है, जैसे—चन्दिम<चन्द्रमा., चरिम<चरम–, परिम <परम–, सच्चिक<सत्यक– ।

कहीं-कहीं संयुक्त-व्यञ्जन में से एक का लोप कर उसके पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ कर दिया गया है, जैसे—सासप<सर्षप–, दाठा<दंष्ट्रा, सीहो<सिंह:, बीसति (अशो प्रा में भी) <विंशति ।

स्वरमध्यग –ड्– (–ढ्–) तथा कहीं-कहीं –ल्– भी –ळ्– (–ळ्ह्–) में बदल गये हैं, जैसे—आवेळा<आपीडा, मीळ्ह<मीढ– ।

विरल शब्दों में सघोष व्यञ्जनों का अघोषीकरण तथा अल्पप्राण का महाप्राणीकरण भी हुआ है, जैसे—छकल<छागल–, पलिख<परिघ–, मुतिंग <मृदङ्ग–, कुसीत<कुसीद–, सुखुमाल<सुकुमार–, थुस<तुष–, खुज्ज <कुब्ज, सुनख<शुनक–, फल<पल– ।

संयुक्त-व्यञ्जन स्म् (ष्म्, श्म्) का सर्वत्र म्ह् नही हुआ है, जैसे धम्मम्हि <* धर्मस्मिन्, परन्तु आयस्मा<आयुष्मान् ।

र्, ल् के अस्थान प्रयोग के भी उदाहरण मिल जाते हैं, जैसे—पलि <परि, किर<किल ।

व्यञ्जनान्त प्रातिपदिको के शब्द-रूपो को पालि ने जितना सुरक्षित रखा है, इतना अन्य किसी प्राकृत भाषा ने नही रखा, निस्सन्देह इसका कारण पालि साहित्य पर सस्कृत का प्रभाव है ।

पालि ने कुछ प्राचीन वैदिक रूपो को भी सुरक्षित रखा है, जैसे प्रथमा बहुवचन का दुहरे प्रत्यय–आसस् वाला रूप तथा आत्मनेपद बहुवचन प्रत्यय–अरे । समापिका (Finite) क्रिया के अन्य आत्मनेपदी रूप भी पालि मे यत्र-तत्र मिल जाते हैं ।

ए महाराष्ट्री

§ १६. वैयाकरणो के अनुसार महाराष्ट्री आदर्श प्राकृत है । ध्वनि-परिवर्तनो की दृष्टि से यह म भा आ के द्वितीय स्तर की भाषाओ मे सबसे आगे बढी हुई है । महाराष्ट्री को किसी एक क्षेत्र की भाषा मानने का कोई कारण नही है । यह सर्वाधिक साहित्य-समृद्ध प्राकृत थी और प्राकृत काव्य तो लगभग सभी इसी मे लिखे गये हैं ।

अन्य प्राकृतो की तुलना मे महाराष्ट्री मे निम्नलिखित विशेष लक्षण मिलते हैं—

सभी स्वरमध्यग अल्पप्राण स्पर्शो का लोप हो गया है और सभी स्वर-मध्यग सघोष महाप्राण व्यञ्जनो के स्थान मे –ह्– शेष रह गया है, जैसे—पाउअ<प्राकृत–, पाहुड<प्राभृत–, कहम्<कथम् । सघोषीकरण (तथा ऊष्मीकरण) और अन्तत लोप (अथवा –ह्– के रूप मे परिवर्तन) से पहले कही-कही अघोष अल्पप्राण का महाप्राणीकरण भी हुआ है, जैसे—निहस <*निखस– <निकष–, फलिह<*स्फटिख<स्फटिक–, भरह< *भरथ <भरत ।

कही-कही स्वरमध्यग –स्– को –ह्– मे बदलने मे यह प्रारम्भिक म भा आ तथा मागधी और अर्धमागधी से समानता रखती है, पाहाण (अर्धमा मे भी)<पाषाण–, ताह (मागधी मे भी)<*तास<तस्य, अनुदिअहम् <अनुदिवसम् ।

इसमे पञ्चमी ए व. का रूप क्रिया विशेषण प्रत्यय–आहि से बनता है; जसे—दूराहि, मूलाहि; मिलाइये सस्कृत दक्षिणाहि । पञ्चमी ए व का

पुराना प्रत्यय भी कुछ शब्दों मे बच रहा है (जैसे–घरा<गृहात्) और –त-प्रत्ययान्त रूप भी कुछ मिल जाते हैं (जैसे—उअहिउ<उदधितः)। सप्तमी ए व के प्रत्यय–स्मिन् का –म्मि हो गया है।

आत्मन् का इसमे अप्पा हुआ है, जबकि शौर. तथा माग. मे अत्ता हुआ है।

कृ धातु का वर्तमान निर्देश मे कु हो जाता है जैसा कि प्राचीन फारसी मे भी (जैसे—कुणइ<*कुणोति<कृणोति, मिलाइये प्रा फा कुनवतिय्)।

कर्मवाच्य के प्रत्यय –य– का –इज्ज– हो जाता है, जबकि शौर मे इसका –ईअ– होता है।

पूर्वकालिक कृदन्त (gerund) का रूप –ऊण<–त्वान से बनता है (जैसे– पुच्छिऊण, मिलाइये अशो. प्रा. (भाब्रू) अभिवादेतून।

ऐ. शौरसेनी

§ २०. शौरसेनी सस्कृत से बहुत प्रभावित है। शौरसेनी के वाक्य प्राय. ऐसे लगते हैं जैसे सीधे-सीधे सस्कृत से अनुवाद कर लिये गये हैं। इसलिये शौरसेनी अशत प्राचीनता-परक तथा आंशिक रूप से कृत्रिम है। सस्कृत नाटको के सिवाय अन्य कुछ भी विस्तृत स्वाभाविक साहित्यिक किसी भी कृति मे शौरसेनी के दर्शन नही होते।

इसके प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

स्वरमध्यग–द–(या–ध–) चाहे मूल रूप मे हो या थ के परिवर्तन मे आया हो, अपरिवर्तित रहता है (जैसे–इध, मद–, गद–<गत', कधेदु <कथयतु)। स्वरमध्यग–न्त्–कही-कही–न्द्–हो गया है, हन्द<हन्त।

क्ष् का सामान्यत क्ख् हो जाता है, जबकि महाराष्ट्री मे इसका च्छ् होना है (जैसे—कुक्खि; इक्खु, परन्तु महा उच्छु)। परन्तु इसके अपवाद भी कम नहीं हैं।

द्वित्व-व्यञ्जनो का सरलीकरण इसमे उतना अधिक नही हुआ है, जितना कि महाराष्ट्री या अर्धमागधी मे (जैसे—कादुन्<कर्तुम्, ऊसव<उस्सव <उत्सव–)।

इसमें सम्भावक (optative) के रूप सस्कृत के आदर्श पर बनते हैं, न कि महा या अर्धमा के समान–एज्ज–प्रत्यय लगा कर (जैसे—वट्टे<वर्तेत्, परन्तु महा , अर्धमा. वट्टेज्ज)।

कर्मवाच्य का प्रत्यय–य–सामान्यत –ईय–हो जाता है, जबकि महा., अर्धमा मे इसका–इज्ज–होता है (जैसे—पुच्छीयदि, गमीअदि)।

ओ. अर्धमागधी

§ २१ अर्धमागधी भी, जो पालि के समान मुख्यत. धार्मिक ग्रन्थो (जैन धर्म) की भाषा है, सस्कृत से बहुत प्रभावित है और विशेषत गद्य मे और इसके साहित्य मे गद्य-भाग ही अधिक है। लम्बे सामासिक पदो तथा दुरूह पुनरुक्तियो ने अर्धमागधी गद्य को बहुत अरोचक बना दिया है। परन्तु अर्धमागधी मे (तथा जैन महाराष्ट्री मे भी, जो कि अर्धमागधी से बहुत समानता रखती है) लोक-कथाओ का भी अच्छा सग्रह है, जिनकी वर्णन-शैली निश्चित रूप से जन-समुदाय से उद्भूत जान पडती है।

अर्धमागधी की निम्नलिखित मुख्य विशेषतायें है—

पदान्त–अः का–ए अथवा –ओ मे परिवर्तन हो गया है, –ओ मे परिवर्तन सामान्यत पद्य-रचनाओ मे मिलता है।

जिन स्वरमध्यग व्यञ्जनो का लोप किया गया है उनके स्थान मे प्राय –य्– श्रुति (–y–glide) का प्रयोग मिलता है; (जैसे *ठिय*<*स्थित*–, सायर <सागर–)।

दन्त्य व्यञ्जनो का मूर्धन्यीकरण इसमे अन्य विभाषाओ की अपेक्षा अधिक हुआ है।

स्वरमध्यग सघोष स्पर्श कही-कही टिके हैं, (जैसे—लोगंसि<*लोकस्मिन्)।

अक्सर –स्स्– के स्थान मे केवल –स्– रखकर पूर्व स्वर को दीर्घ कर दिया गया है (जैसे—वास<वस्स–<वर्ष–)। अशो. प्रा मे भी यह परिवर्तित हुआ है।

–स्म्– का –अस्– हो गया है (जैसे—अंसि<अस्मिन्, लोगसि <*लोकस्मिन्)।

सस्कृत के पूर्वकालिक कृदन्त (gerund) प्रत्यय –त्वा (>–त्ता) और –त्य<>–च्च) तथा वैदिक प्रत्यय –त्वाय अवशिष्ट हैं। इसी प्रकार –तव्य से निष्पन्न कृदन्तीय रूप मे प्रयोग मे है और इसका प्रयोग असमापिका (infinitive) पद के रूप मे किया जाता है (जैसे—गच्छित्तए<*गच्छित्वाय 'जाने के लिये')।–तुम प्रत्ययान्त असमापिका पद का भी पूर्वकालिक कृदन्त (gerund) के रूप मे प्रयोग किया गया है (जैसे—काउम्<कर्तुम् 'करना, करके')।

औ. मागधी

§ २२. मागधी मे साहित्य का विकास न हुआ। जान पडता है कि मागधी के नाम से प्रयुक्त प्राकृत म. भा. आ. के द्वितीय स्तर की किसी पूर्वी विभाषा का परिनिष्ठित रूप थी और संस्कृत नाटको मे हीन पात्रो की भाषा के रूप मे हास्य की निष्पत्ति के लिये प्रयोग की जाती थी। जैसा कि प्राचीन वैयाकरणो ने बताया है, इसका शौरसेनी से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है।

मागधी के निम्नलिखित विशेष लक्षण है—

र् के स्थान मे ल् तथा ष्, स् के स्थान मे श् हो गया है (जैसे—लाजा <राजा, शुश्क<शुष्क। ष् किन्ही शब्दो मे मिलता है।

पदान्त –अ. का –ए हो जाता है (जैसे—शे<स)।

ज् के स्थान मे य् तथा भ् के स्थान मे रह् का प्रयोग मिलता है, जो संभवत तीव्र ऊष्म उच्चारण का द्योतक है (जैसे—याणादि<जानाति, अय्य<अज्ज<अद्य अथवा <अज्ज<आर्य)।

नासिक्य-युक्त संयुक्त-व्यञ्जनो मे तालव्य नासिक्य के प्रयोग की रुचि है (जैसे—कञ्‍अका<कन्यका, पुञ्‍ञ<पुण्य–, अञ्जलि<अञ्जलि–)।

शिन्-ध्वनि (Sibilant) युक्त संयुक्त-व्यञ्जनो को सुरक्षित रखा गया है (जैसे—हस्त– शुश्के<शुष्कः)। च्छ् का श्च् तथा क्ष् का श्क् हो गया है (जैसे—गश्च<गच्छ, पश्क<पक्ष, पश्कदि<प्रेक्षते)।

स्वरमध्यग –द्– (मूल या परिवर्तन से प्राप्त) सुरक्षित है (जैसे—भविश्शदि)। अन्य स्पर्श व्यञ्जन भी कही-कही टिके हैं (जैसे—कञ्‍अका, कञ्‍अगा)।

संस्कृत नाटको मे विभिन्न प्रकार के निम्नवर्गीय पात्रो की भाषा होने के कारण मागधी मे थोडे-बहुत महत्त्व के रूप-भेद मिलते है। इसीलिये प्राकृत-वैयाकरणो[1] ने मागधी की तीन विभाषायें गिनायी है—शाकारी, चाण्डाली और शाबरी।

शाकारी के निम्नलिखित लक्षण हैं—

च् तीव्र संघर्षी (स्पष्ट तालव्य) व्यञ्जन है और य्च् लिखा गया है (जैसे—य्चिष्ठ<*चिष्ठ<तिष्ठ)।

---

१ देखिये पुरुषोत्तम का 'प्राकृतानुशासन' (Luigia Nitti Dolci द्वारा सम्पादित, पेरिस १९३७) अध्याय १३-१५।

षष्ठी ए. व का प्रत्यय अपभ्रंश के समान –अह (–आह) है—(जैसे–चालुवत्ताह्<चारुदत्तस्य)।

सप्तमी ए व का प्रत्यय –आहिं है (जैसे—पवहरणाहिं = प्रवहणे)।

स्वार्थे –क प्रत्यय का अधिक प्रयोग किया जाता है।

विभक्ति-प्रत्ययो का लोप भी कम नही हुआ है (जैसा कि अपभ्रंश मे भी)।

चाण्डाली का प्रमुख लक्षण ग्राम्य प्रयोगो का बाहुल्य है। शाबरी की विशेषता यह है कि अतिघनिष्ठता अथवा घृणा व्यक्त करने के लिये सम्बोधन मे –क प्रत्यय का प्रयोग किया गया है।

क. पैशाची

§ २३ पैशाची से हमारा परिचय केवल कुछ प्राकृत वैयाकरणो के उल्लेखो तक ही सीमित है। यह विश्वास करने के लिये पर्याप्त कारण हैं कि किसी समय मे पैशाची मे अच्छा-खासा साहित्य रहा होगा। मूलत. पैशाची मे लिखी गयी गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' जो कथाओ का एक विशाल सग्रह था, अब केवल सस्कृत रूप मे ही मिलता है और पैशाची मे साहित्य का कोई भी उदाहरण हमे आज उपलब्ध नही। पैशाची के आज हमे जो भी उदाहरण मिलते हैं वे प्राचीन वैयाकरणो तथा अलकार-शास्त्रियो द्वारा दिये गये विरल सन्दर्भ तथा विरलतर उद्धरण मात्र है। परन्तु जान पडता है कि इनमे से भी अधिकाश वैयाकरणो आदि को पैशाची का साक्षात् ज्ञान नही था। इसलिये इनके दिये हुये सन्दर्भ प्राय परस्पर विपरीत पड़ते है। पैशाची की उत्तर-पश्चिमी प्रारम्भिक म. भा आ विभाषा के साथ कुछ अत्यधिक समानतायें हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नही कि पैशाची इसी प्रदेश तक सीमित भाषा थी। इसकी विभाषायें भारत के अन्य भागो (मध्य-भारत को शामिल करते हुये) मे भी बोली जाती रही होगी। अपभ्रंश के साथ पैशाची का स्पष्ट घनिष्ट सम्बन्ध है। दूसरी ओर ध्वनि-परिवर्तनो के क्षेत्र मे इसकी सरक्षणशील प्रवृत्ति होने के कारण इस पर सस्कृत का जितना अधिक प्रभाव पड़ा उतना शौरसेनी को छोड़ अन्य म भा आ. भाषाओ पर नही पडा।

प्राकृत वैयाकरणो के अनुसार पैशाची की दो मुख्य विशेषताये हैं—(१) स्वरमध्यग सघोष स्पर्शो तथा सवर्णी वर्णो का अघोषीकरण (जैसे—नकर<नगर, राचा<राजा) और (२) स्वरमध्यग स्पर्शो का लोप न करना।

परवर्ती प्राकृत वैयाकरणो ने पैशाची की अनेक विभाषाये मानी हैं।

ख. अपभ्रंश

§ २४ प्राकृत-व्याकरण 'प्राकृत प्रकाश' मे जो आज तक उपलब्ध प्राकृत-व्याकरणो मे सबसे प्राचीन है, प्राकृतो मे अपभ्रश को गिनाया गया है। परवर्ती वैयाकरण पुरुषोत्तम तथा हेमचन्द्र ने अपभ्रश का विवेचन ही नहीं किया है, अपितु इसकी बोलियो की भी चर्चा की है। धर्मदास[1] ने अपने 'विदग्धमुखमण्डन' मे अपभ्रश पद्यो तथा पद्य-खडो मे पहेलियो के उदाहरण दिये हैं। उसने शौरसेनी को भी अपभ्रश के अन्तर्गत रखा है। पुरुषोत्तम ने अर्धमागधी को मागधिक के अन्तर्गत रखा है। इस वैयाकरण ने महाराष्ट्री को प्राकृत कहा है। इन तीन के अतिरिक्त उसने पैशाचिक तथा लौकिक का उल्लेख किया है। यह लौकिक स्पष्टत तत्कालीन (११०० ई०) देशी भाषा का साहित्यिक रूप (अवहट्ठ) है।

'अपभ्रश' नाम का उल्लेख सबसे पहले पतञ्जलि ने अपने 'महाभाष्य' मे किया है। 'अपभ्रश' तथा 'अपशब्द' से पतञ्जलि का अर्थ क्रमश लोक-भाषा (शाब्दिक अर्थ है आदर्श भाषा सस्कृत से 'दूर गिरी हुई' भाषा) तथा लोक-प्रचलित शब्द (शाब्दिक अर्थ है 'शब्दो के बिगडे रूप') से है। पतञ्जलि मध्य-पूर्वी भारत के निवासी थे और लोक-भाषा से उनका अर्थ मध्य-भारतीय-आर्य की मध्य-पूर्वी विभाषा से है। अपशब्द के उदाहरण के रूप मे उन्होने सस्कृत 'गो' शब्द के तीन पर्यायवाची दिये हैं—गोणी, गोता, गोपोतलिका। गोणी शब्द जैन-महाराष्ट्री मे मिलता है और इसका पुल्लिङ्ग रूप अशो. प्रा. की मध्य-पूर्वी (अर्थात् मध्यदेशीया) विभाषा मे (जैसे—गोने प्र. ए व तथा गोनस ष. ए व), अर्ध-मागधी मे और मागधी मे मिलता है।

अपभ्रश का सर्वप्रथम तथा किसी भी अन्य वैयाकरण से अधिक विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करनेवाले प्राकृत-वैयाकरण पुरुषोत्तम ने अपभ्रश की तीन मुख्य विभाषायें मानी है, यद्यपि उन्होने अपभ्रश के और भी अपेक्षाकृत कम महत्त्व के स्थानीय रूपो का भी उल्लेख किया है। ये तीन मुख्य विभाषाये हैं—नागरक (नागर अपभ्रश), व्राचडक (व्राचड अपभ्रश) तथा उपनागरक (उपनागर अपभ्रश)। नागरक अपभ्रश की सर्वप्रमुख विभाषा है और यह समस्त आर्य-जन की साहित्यिक एव परिनिष्ठित भाषा थी। नागरक अपभ्रश

---

१ सर्वानन्द ने 'अमरकोश' पर अपनी टीका मे धर्मदास का उद्धरण दिया है, इसलिये धर्मदास ११५० ई० से बाद के नहीं हो सकते।

(जिसे सामान्यत. शौरसेनी अपभ्रंश कहा जाता है) की निम्नलिखित मुख्य विशेषतायें है—

पदान्त इ, उ, अ को सानुनासिक करने की प्रवृत्ति है।

स्वरमध्यग –म्– कही-कही –व्– हो गया है तथा इसका अनुवर्ती स्वर सानुनासिक हो गया है, जैसे—कमल–>कवँल, कुमार>कुवँार।

प्राचीन लिङ्ग-व्यवस्था बहुत बदल दी गयी है, स्त्री-प्रत्यय के रूप मे –ई प्रतिष्ठित हो गया है, जैसे—पुत्थ– (<पुस्त) पु; पुत्थी स्त्री पुल्लिङ्ग नपुसकलिङ्ग शब्द कही-कही –आ मे अन्त होते हैं।

सज्ञा तथा विशेषण प्रातिपदिको के साथ –डा, –डी, –उल्ल, –उल्ली, –अ (<–क) आदि अनेक स्वार्थे प्रत्ययो का प्रयोग चल पडा है।

पुल्लिङ्ग प्रथमा ए. व के विभक्ति-प्रत्यय –अः के स्थान मे पहले से चले आते हुये –ओ (–ए) के अलावा –अ अथवा –उ भी मिलता है।

तृतीया ए व पुल्लिङ्ग-नपुसकलिङ्ग का विभक्ति प्रत्यय –एण (–एणं), –इण (–इणं), –एँ अथवा केवल – ं मिलते हैं, जैसे—तेण (तेणं), तिण (तिणं), तें, महुएं, महु।

पञ्चमी के प्रत्यय –हे तथा –हुँ है और इनका एकवचन तथा बहुवचन मे भेदभाव के बिना प्रयोग किया गया है। एकवचन मे –आहु प्रत्यय भी मिलता है। इस प्रकार –रुच्छहे, रुच्छहुँ, रुच्छाहु<वृक्ष–।

षष्ठी ए व के विभक्ति-प्रत्यय –स्स के अलावा –ह, –हे, –हो, –सु भी हैं। इस प्रकार –रुच्छह, रुच्छहे, रुच्छहो, रुच्छसु, रुच्छस्स<वृक्ष–।

सप्तमी ए व का विभक्ति-प्रत्यय –हि (–हिं) है, जैसे—रुच्छहिं।

इनके साथ-साथ परम्परागत रूप भी प्रयोग मे दिखायी देते है।

स्त्रीलिङ्गी प्रतिपदिको मे तृतीया-पञ्चमी-षष्ठी-सप्तमी के विभक्ति-प्रत्यय –हे तथा –हे हैं, जैसे—खट्टाहे, रइहे (<रति–)।

सम्बोधन बहु व का विभक्ति प्रत्यय –हो है, जैसे—अग्गिहो, महिलाहो।

विशिष्ट सार्वनामिक रूप बहुत बडी सख्या मे मिलते है, जैसे—तुम्हार (तुम्भार), आम्हार, (आम्भार) सार्वनामिक विशेषण, तइ (तइं), मइ (मइं) द्वितीया-तृतीया-सप्तमी ए व, तुह, तुहु, तुज्झ, महु, मज्झु षष्ठी ए व, तुम्हे, अम्हे प्रथमा बहुव, तुम्हइं, तुम्हाइ, अम्हइ द्वितीया बहुव., एह 'यह', तेह 'वह', जेह 'जो', केह 'कौन, क्या', कीस 'किस लिये', कीण 'क्यो', एवड्ड 'इतना', केवड्ड 'कितना', जेम 'जिस तरह', केम 'किस तरह' इत्यादि।

वर्तमान निर्देश (indicative) मे उत्तम पुरुष बहुव. का प्रत्यय –हुँ[1] है।

वर्तमानकालिक कृदन्त (Present Participle) तीनो कालो के लिये प्रयोग मे आ सकता है (त्रैकाल्ये शतृ)।

पूर्वकालिक कृदन्त (gerund) के प्रत्यय सामान्यत –प्पणु, –एप्पि (–एप्पिणु), –एवि (–एविणु) हैं तथा भविष्यत् कालिक कृदन्त (future participle) के प्रत्यय –एव्वउ, –एवा है।

भविष्यत्कालिक कृदन्त का प्रयोग असमापिका (infinitive) के रूप मे भी होता है।

विशेष क्रिया-रूपो का प्रयोग भी अपभ्रश की एक विशेषता है, जैसे— वद् के लिये बोल्ल–; मुच् के लिये मेल्ल–, मुक्क–, मुग्र–; स्थापय् के लिये ठव्–; शक् के लिये चग्र–; वेष्टय् के लिये वेल्ल–, वेढ–; मस्ज् के लिये बुड्ड–, खुप्प आदि।

छन्द प्राय सदैव तुकान्त होते है और छन्दो मे अत्यधिक विविधता है।

३. प्राचीन वैयाकरणो द्वारा उल्लिखित भाषायें और विभाषायें

ग. प्राच्या

§ २५ पुरुषोत्तम द्वारा अपने व्याकरण मे वर्णित तृतीय भाषा प्राच्या है। पुरुषोत्तम का कहना है कि प्राच्या शौरसेनी से बहुत मिलती-जुलती है। प्राच्या की निम्नलिखित विशेषतायें बतायी गयी हैं।

भवान् > भव, भवति > भोदि, दुहिता > धीदा, इदम् > इणम्।

निचले वर्ग के व्यक्ति के सम्बोधन मे (हीन सम्बुद्धौ) सम्बोधक-पदका–आ मे अन्त होता है। अव्यय पद आरे का प्रयोग सम्बोधन मे अथवा उपेक्षा व्यक्त करने मे किया जाता है।

वक्र > वकुड, भविष्यत् > हत्थमाणो (जैसे अर्धमागधी मे)।

घ. आवन्ती

§ २६ पुरुषोत्तम के अनुसार आवन्ती मे महाराष्ट्री तथा शौरसेनी की विशेषतायें समान रूप से मिलती हैं (महाराष्ट्री-शौरसेन्योरैक्यम्)। उन्होने इसकी निम्नलिखित विशेषतायें बतायी हैं।

---

१ एँ –उँ, –हिँ, –हँ, –हेँ, –हुँ प्रत्यय प्राय –ए, –उ, –हि, –ह, –हे, –हु प्रत्ययो मे स्वर को सानुनासिक कर देने का परिणाम हैं।

ब्र्<द्र् या द्र् ।
भवति>हो (इ) ।
श्रु-ष्य- >सोच्छ- ।
तव, मम>तुहु, महु ।

ड. शाकारी

§ २७. पुरुषोत्तम ने शाकारी को मागधी की विभाषा कहा है (विशेषो मागध्याः) । उन्होने इसकी निम्नलिखित विशेषताये बतायी है—

शब्दो मे प्राय: वर्णों का लोप, आगम अथवा विकार हो जाता है ।
सज्ञा तथा क्रिया पदो के प्रत्ययो के स्वरो का सकोच हो जाता है ।
सयुक्ताक्षर विकल्प से दीर्घ होता है (संयोगे गुरुत्वं वा) ।

स्वार्थे –क प्रत्यय का अधिक प्रयोग होता है ।
श्याल– >शिआल–, –ष्ट्> –श्ट्, इव>वु ।
विभक्ति-प्रत्ययो का कही-कही लोप हो गया है ।

च. चाण्डाली

§ २८ पुरुषोत्तम ने चाण्डाली को मागधी का विकृत रूप बताया है (मागधी-विकृतिः) और इसकी निम्नलिखित विशेषताये गिनायी हैं ।

यह गँवार भाषा है ।
–अः> –ओ, –ए; –स्मिन्> –म्मि ।
त्वा> –इय, इव>व इत्यादि ।

छ. शाबरी

§ २९. पुरुषोत्तम के अनुसार यह मागधी की एक विभाषा है । इसके मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं—

आदरार्थक न होने पर सम्बोधन मे हमेशा –का प्रत्यय लगता है ।
–अः> –अ, –ए, –इ ।
अहम्>हके, हं ।
प्रेक्ष>पेश्च ।

ज. टक्कदेशी या टक्की

§ ३० पुरुषोत्तम ने टक्कदेशी को एक विभाषा कहा है, जिसमे संस्कृत

तथा शौरसेनी का मिश्रण हुआ है (अथ टक्कदेशीया विभाषा; संस्कृत-शौरसेन्योः)[१]। उन्होने इसकी निम्नलिखित विशेषतायें बतायी हैं—

यह इकार-बहुला है।

तृतीया ए व का प्रत्यय –एँ, चतुर्थी-पञ्चमी बहुव के प्रत्यय –हुँ, –हुँ तथा षष्ठी बहुव के प्रत्यय (विकल्प से) –हुँ, –हुँ हैं।

त्वम्>तुहुँ, अहम्>हमँ (हमुँ)।
यथा>जिध, तथा>तिध।

ऋ. नागरक

§ ३१ पुरुषोत्तम ने अपभ्रंश के अन्तर्गत जो विभाषाये रखी हैं उनमे सबसे पहले तथा सबसे अधिक विस्तार से नागरक का वर्णन किया है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

संयुक्ताक्षर औ को कभी-कभी दो स्वरो के रूप मे अलग कर दिया जाता है।
श्, ष्>स्, य्>ज्, न्>ण्; स्वरमध्यग –क्–, –ग्– का लोप, स्वरमध्यग –प्– > –ब्– तथा –फ्– > –भ्–; स्वरमध्यग –ख्–, –घ्–, –थ्–, –भ्– > –ह्– और –क्, –ख्–, –त्–, –थ्– >(विकल्प से) क्रमश –ग्–, –घ्–, –द्–, –ध्–।
स्वार्थे –डा, –डी प्रत्ययो का अधिक प्रयोग।
व्यास>व्रास, भूत>भुह, स्वच्छन्द<छ्च्छन्द।
कृ, गम्, भू> (विकल्प से) कर, गं, हो।
त्वदीय, मदीय>तुम्हार, अम्हार।
यावत्, तावत्>जिम, तिम।
इव के अर्थ मे ण, णइ, णावइ, णह, जिम, जणि का प्रयोग।
किम् के अर्थ मे कइ, किंअदु, किंप्रु, किर (कीर) का व्यवहार।
पूर्वकालिक कृदन्तीय (gerund) प्रत्यय –त्वा> –एविणु, –एपिणु, –एप्पेवु, –तव्य> –तव्व; –तव्वउँ; –त्व, –ता (भाववाचक सज्ञा बनानेवाले प्रत्यय) > –त्तण, –प्पण, –दा, –द (स्वार्थे प्रत्यय) >उल्ल इत्यादि।

---

१ पुरुषोत्तम ने लिखा है कि हरिश्चन्द्र ने टक्की को अपभ्रंश के अन्तर्गत रखा है।

ज. व्राचडक

§ ३२ पुरुषोत्तम ने व्राचडक को अपभ्रश की एक बोली कहा है। इसकी विशेषताये निम्नलिखित है—

ष्, स्>श्
च वर्ग का उच्चारण 'स्पष्ट तालव्य' के रूप मे होता है; त्, ध् का उच्चारण 'अस्पष्ट' है,
पदादि के त्, द्>क्रमश. द्, ड् ।
एव>जे, ज्जि; भू>भो (पदादि मे न होने पर) इत्यादि ।

त. उपनागरक

§ ३३ अपभ्रश के उपनागरक विभेद के अन्तर्गत पुरुषोत्तम ने वैदर्भी, लाटी, औड्री, कैकेयी, गौडी जैसी स्थानीय बोलियो तथा टक्क, बर्बर, कुन्तल, पाण्ड्य, सिंहल इत्यादि देशो की बोलियो को रखा है। पुरुषोत्तम के अनुसार वैदर्भी मे –उल्ल प्रत्ययान्त शब्दो का बाहुल्य है, लाटी मे सम्बोधन पदो का आधिक्य है, औड्री मे इ, ओ ध्वनियाँ बहु-प्रयुक्त है तथा कैकेयी पुनरुक्ति बहुत पसन्द करती है।

थ. कैकेय पैशाचिका

§ ३४ पुरुषोत्तम ने कैकेय पैशाचिका को सस्कृत-मिश्रित शौरसेनी का विकृत रूप कहा है (संस्कृत–शौरसेन्योः विकृतिः)।

इसमे सामान्यत. स्वरमध्यग –ग्–, –ज्–, –ड्–, –व्–, –ब्– > –क्–, –च्–, –ट्–, –त्–, –प्– और –घ्–, –झ्–, –ढ्–, –ध्–, –भ्– > –ख्–, –छ्–, –ठ्–, –थ्–, फ् ।

ण्>न्; न्य्, ज्ञ्, ण्य्>ञ्ञ्; –र्य्– > –रिअ–; सयुक्त-व्यञ्जनो के बीच स्वर-सन्निवेश (Anaptyxis)।

पक्ष्म, सूक्ष्म>पखम–, सुखम–; पृथिवी>पुथुमी, विस्मय>विसुमअ, गृह– >किहकम्; हृदय>हितपकम्; इव>पिव; क्वचित्>कुपचि; तिरश्च >तिरिअस्, भू– >हो–, हुव–; यूयम्>तुज्झ, वयम्>अम्फ ।

तृतीया, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी ए व मे राजन् शब्द का राचि हो जाता है।

पूर्वकालिक कृदन्तीय (gerund) प्रत्यय –त्वा के स्थान पर तूनम् है।

ब. शौरसेन-पैशाचिका

§ 35 पुरुषोत्तम के अनुसार पैशाचिका के शौरसेन रूप की निम्नलिखित विशेषतायें हैं—

र्>ल्; ष्, स्>श्; चवर्ग का उच्चारण स्पष्ट रूप से तालव्य (व्यक्त तालव्य) है, –क्ष्– > –स्क्–, –च्छ्– > –स्च्–, –स्थ्– > –श्त्–; –स्न् > –स्त्– या –ष्ट– अथवा (किन्हीं के अनुसार) –थ्–;–ष्ट्– अपरिवर्तित रहता है।

पिव>पिभ, कृत– >कड–, मृत>मड–, गत– >गड–, अधुना अहुणा।

–अ >– ओ, –अ; –अप्> –अम् – ओ, –अ।

ध. पाञ्चाल-पैशाचिका

§ 36. पुरुषोत्तम के अनुसार पैशाचिका की पाञ्चाल तथा अन्य बोलियाँ परिनिष्ठित कैकेय तथा शौरसेनी से अधिक भिन्न नहीं हैं। पाञ्चाल की उन्होंने एक ही विशेषता का उल्लेख किया है कि इसमें ल्>र् मिलता है।

न. चूलिका-पैशाचिका

§ 37 चूलिका-पैशाचिका का उल्लेख केवल हेमचन्द्र ने किया है। उनके अनुसार इसकी दो मुख्य विशेषतायें हैं।

–ग्–, –ज्–, –ड्– –ब्– > –क्–, –च्–, –ट्–, –प्–; –घ्–, –झ्–, –ढ्–, –भ्– > –ख्–, –छ्, –थ्–, –फ्–।

र्>ल् (विकल्प) से।

४. तृतीय स्तर की मध्य-भारतीय-आर्य-भाषा

ट. अवहट्ठ

§ 37 किसी भी प्राकृत-वैयाकरण ने अवहट्ठ का नाम नहीं लिया है यद्यपि यह पुरुषोत्तम तथा हेमचन्द्र जैसे वैयाकरणों द्वारा वर्णित बोलचाल की भाषा के सबसे अधिक समीप थी। ये वैयाकरण बोलचाल की भाषा का आम तौर पर 'देशी' नाम से जानते थे और इसके रूप 'अवहट्ठ' को उन्होंने अपभ्रंश का ही एक विकृत रूप समझा। परन्तु कम से कम एक प्राकृत वैयाकरण ने—'संक्षिप्तसार' के लेखक ने अवहट्ठ पर विचार किया है, यद्यपि

उसने भी इसको अपभ्रंश ही कहा है। 'अवहट्ठ' नाम संस्कृत के 'अपभ्रष्ट' से बना है और एक समसामयिक लेखक ने इसको 'अभिभ्रष्ट' नाम दिया है[१]।

'अवहट्ठ' साहित्यिक नव्य-भारतीय-आर्य की प्रारम्भिक स्थिति से एकदम पहले की भाषा है और इसमे पद्यो एवं गीतो के रूप मे अच्छा-खासा अंशतः धार्मिक तथा लौकिक साहित्य है।

अवहट्ठ की मुख्य विशेषताये निम्नलिखित रूप मे बतायी जा सकती हैं—

एक के बाद एक आने वाले स्वरो का संकोच करने की विशेष प्रवृत्ति है, जैसे— अन्धार<अन्धआर<अन्धकार–, जाणी<जाणिअ<* जानित-ज्ञात–।

पदान्त –म्, जहाँ सन्धि द्वारा किसी अगले व्यञ्जन से न मिल रहा हो (जैसे किम्पि मे), वहाँ वह अपने पूर्ववर्ती स्वर को सानुनासिक बनाकर स्वयं लुप्त हो जाता है, जैसे— तहिँ<तहिम्, जेँ<जेम्<जेणम्<येन।

पदान्त –ए, –ओ का सामान्यत –इ, –उ हो जाता है, जैसे— परु<परो <परः, देउ<देओ<देवो<देवः, खणि<खणे<क्षणे।

पदादि तथा पदमध्य का ए भी कहीं-कहीं इ हो गया है, जैसे— इक्क <एक्क<ऐक्य=एक–; पिच्छिवि<पेच्छिवि<प्रेक्ष्+।

स्वरमध्यग –म्– सामान्यत. –वँ– हो जाता है और इसका पूर्ववर्ती स्वर सानुनासिक हो जाता है, जैसे— सँव>सम–।

पदान्त –अम् मे या तो नासिक्य का लोप हो जाता है अथवा इसके स्थान पर –उ हो जाता है, जैसे— नर, नरु<नरम्; वर, वरु<वरम्।

इसी प्रकार पदान्त –अः मे से या तो विसर्ग का लोप हो जाता है अथवा इसके स्थान पर –उ (<–ओ) हो जाता है, जैसे— नर, नरु<नरः, पिअ, पिउ<प्रियः।

पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूपो के भेद को कम करने की स्पष्ट प्रवृत्ति है। इस प्रकार जुअइह (युवति का षष्ठी ए व), माअह (मातृ– का षष्ठी ए. व)।

सर्वनामो के नये-नये रूप दिखायी देते है, जैसे— –एह 'यह' जेह 'जो' केह 'कौन'। इमु<इदम्; केम्, किव=कथम्; जिम, तिम=यादृक्, तादृक् मइं 'मैं', तइं 'तू', अम्ह, तुम्ह 'हम, तुम' (ए. व. मे भी), अम्हार=अस्मदीय (मदीय), तुम्हार=युष्मदीय (त्वदीय) इत्यादि।

---

१. अद्वयवज्र ने सरह की 'दोहाकोषपञ्जिका' के अन्त मे लिखा है— 'दोहा अभिभ्रष्टवचनस्येति'।

तीन | ध्वनि-विचार

अ. स्वर

§ ३९ म. भा. आ. भाषा में निम्नलिखित स्वर-ध्वनियाँ हैं—अ, इ, उ (ह्रस्व), आ, ई, ऊ (दीर्घ), ए, ओ (विवृताक्षर में दीर्घ तथा संवृताक्षर में ह्रस्व)। इस भाषा की परवर्ती स्थितियों में स्वरमध्यग व्यञ्जनों के लोप के कारण एक के बाद एक दो-दो तीन-तीन स्वर तक मिलते हैं।

म. भा. आ. भाषा के स्वर, निम्नलिखित विशेषताओं के साथ, सामान्यतः प्रा. भा. आ. भाषा के स्वरों के स्थानापन्न हैं—

(अ) प्रा. भा. आ. भाषा का दीर्घ स्वर संवृताक्षर में ह्रस्व हो जाता है (या तो केवल लिखने में अथवा छन्दानुरोध से या दोनों तरह से), जैसे—कंतं<कान्ताम्, इस्सर- <ईश्वर-।

(आ) अत्यल्प उदाहरणों में यह भी मिलता है कि प्रा. भा. आ. भाषा का संवृताक्षर में आने वाला ह्रस्व-स्वर म. भा. आ. भाषा में विवृताक्षर के साथ दीर्घ हो गया है, जैसे— वीस (ति)<विंश (ति), अशो अविहीसा <अविंहिसा, पालि दाठा<दंष्ट्रा।

(इ) और भी अल्प उदाहरणों में प्रा. भा. आ. भाषा का विवृताक्षर में आनेवाला दीर्घ स्वर म. भा. आ. में संवृताक्षर में ह्रस्व हो गया है, जैसे—प्रा. हद्दि (या हद्धिध) <प्रा. भा. आ. हा धिक्, अप. तव्व<तावत्।

(ई) स्वरागम (Anaptyxis) के कारण अथवा श्रुति (glide) के रूप में भी म. भा. आ. भाषा के अनेक शब्दों में नये स्वर आ गये हैं, जैसे—अशो -पसिन- <प्रश्न-; कसण<कृष्ण; अशो (शाह) सडुवीसति <षड्विंशति। अग्र-स्वरागम (Prothesis) का एकमात्र उदाहरण है इत्थि- <स्त्री-।

(उ) प्रा. भा. आ. भाषा में तीन अक्षरवाले शब्दों में स्वरों के अप

को म भा आ मे कही-कही अ (उ); इ, अ के क्रम मे परिवर्तित कर दिया गया है, जैसे— मुनिस- <मनुष्य, मज्झिम- <मध्यम-, पुरिस<पुरुष- ।

(ऊ) म भा आ के इ तथा उ कही-कही सम्प्रसारण के परिणाम है, जैसे— अशो कटविय- <कर्तव्य-, सुवे-सुवे<श्वः-श्व. ।

(ए) म भा आ भाषा की बाद की स्थितियो मे कही-कही एक अकेला स्वर अनेक स्वरो के सकोच का परिणाम है, जैसे— निय मुलि<*मूलिअ <मूल्य, अप अंधार<अन्धआर- <अन्धकार- ।

(ऐ) म भा आ की बाद की स्थिति मे सस्कृत से लिये हुये किन्ही शब्दो मे ऐ, औ को अइ, अउ के रूप मे तोड दिया गया है, जैसे— अइरावण- <ऐरावण-, पउस- <पौष- ।

§ ४०. प्रा भा आ का ऋ म भा आ मे सुरक्षित न रहा और इसका अ, उ, इ, ए, रि, रु, रे इत्यादि मे परिवर्तन हो गया । भारत-ईरानी ऋ का (अर्, र के रूप मे परिवर्तित होते हुये) अ मे परिवर्तन इस ध्वनि का सबसे पुराना विकास है (मिलाइये ऋग्वेद कट-, विकट-, सस्कृत बट-, नट-, भट- इत्यादि), जैसे— अशो मग- <मृग-, अपकठ- <अपकृष्ट-, मट- <मृत-, प्राकृ वसह- <वृषभ- । र् के पूर्ववर्ती ऋ का उ मे परिवर्तन भी इतना ही पुराना है (मिलाइये सस्कृत कुरु<*कृरु, तथा प्राकृ कुणइ <कृणोति), परन्तु म. भा आ मे यह परिवर्तन सामान्यत इसके आसपास ही किसी ओष्ठ्य व्यञ्जन की उपस्थिति के कारण हुआ, जैसे— अशो. मुट- <मृत-, परिपुछा<परिपृच्छा, बुढ- <वृद्ध- (परन्तु वढि<*वर्द्धि । ऋ का ए मे परिवर्तन बहुत ही विरल है (मिलाइये सस्कृत गेह- <गृह-), जैसे— अशो देखति<*दृक्षति (प्रेक्षते से प्रभावित ?), प्राकृ गेज्झ<गृह्य । ऋ का ए मे परिवर्तन सभवत *रे परिवर्तन के बाद हुआ और इसलिये यह एक अर्ध-तत्सम रूप का परिवर्तन है क्योकि ऋ का रि अथवा रु (ओष्ठ्य व्यञ्जन के बाद) मे परिवर्तन केवल अशोकी प्राकृत तथा परवर्ती काल के उत्तर-पश्चिमी विभाषा के अभिलेखो मे ही मिलता है । म भा आ की बाद की स्थितियो मे रि तथा रु का र् अपने पूर्ववर्ती व्यञ्जन मे समीकृत हो गया है (रुक्ख<वृक्ष- मे पदादि की अन्त स्थध्वनि के लोप ने र् को सुरक्षित कर दिया), म्रिग-, म्रुग- <मृग- इत्यादि ।

§ ४१ प्रा भा आ के सन्ध्यक्षर (diphthongs) ऐ, औ म भा आ मे क्रमश. समानाक्षर (monophthongs) ए, ओ हो गये है और बाद की

भाषा मे इन्हें कहीं-कहीं दो स्वतन्त्र स्वरो अइ, अउ के रूप मे तोड दिया गया है और यह सभवत· अर्व-तत्सम परिवर्तन है।

§ ४२ म भा आ की स्वर-सन्धियो मे, जो कि म भा आ मे एक विरल वस्तु है और जिसका आश्रय केवल वही लिया गया है जहाँ कि सन्धि का उत्तर-पद कोई अव्यय अथवा परसर्ग हो या छन्दानुरोध से स्वर-सकोच करना पड़ रहा हो, सामान्यत बाद का स्वर सुरक्षित रहता है और पूर्व का स्वर लुप्त होता है, जैसे— अशो. ततेस<तत+एस<ततःएष·, पजुपदने <प्रजा+उत्पादने, उपासकानंतिकं<उपासकान (म्)+अन्तिकम्, खरो. धम्म यशिध<यश+इध, यवदेथ<यावता+*एत्र, निय अजुवदए <अज+उवदए 'आज से', उत्तर-पद इति होने पर जो सन्धि होती है (जैसे— अशो धम्मेति<धर्मः इति) वह भी इसका अपवाद नही है, क्योंकि वाक्य के बीच में होने पर इति के इ का पहले ही लोप हो चुका था। ऐसी सन्धियाँ जैसे कि अशो. जनवृति, गोतीति, पजोपदाये, खरो धम्म. नरेथिन इत्यादि प्रा भा आ. की सन्धियो जानन्त्विति, *गोप्तीति, प्रजोत्पादायै, *नर+इस्त्रीणाम् की याद दिलानेवाले अवशेष है।

§ ४३ म भा. आ भाषा के स्वरो की विविध उत्पत्तियाँ नीचे दिखायी जा रही है—

१. अ—

(१) अ, अथ 'तो, अब', नर– 'मनुष्य' इत्यादि।

(२) आ (सवृताक्षर मे), अशो सस्वत<शाश्वतम्, नथि<नास्ति, आचरिये<आचार्यः इत्यादि।

(३) भारत-ईरानी *अ, गरु (न गुरु–)।

(४) ऋ, अशो मग<मृग, कण्ह–कसण<कृष्ण– इत्यादि।

(५) स्वरागम (Anaptyxis) के कारण, अशो अलहामि, पा अरहामि <अर्हामि, निय गरहति<गर्हते, पा नहापित– <*न्हापित– <स्नापित– इत्यादि।

(६) उ (समीकरण अथवा विषमीकरण के कारण), अशो, पा पन <पुनर्[१]; प्रा मउल– <मुकुल– इत्यादि।

---

१. पन की व्युत्पत्ति *पर्ण 'फिर, दुबारा' से भी की जा सकती है, जैसा कि प्राचीन फारसी दुवितां पर्नम् मे है।

२. आ—

(१) आ; अशो आचायिक– <आत्यायिक–, आपानानि 'पानी पिलाने के स्थान' इत्यादि।

(२) अ (पदान्त), अशो (का) जनसा <जनस्य इत्यादि।

(३) अ (जब किसी विवृताक्षर का संवृताक्षर मे परिवर्तन हो); अशो. (गिर) वास– <वर्ष–, (टो आदि मे) पुनावसुने <पुनर्वसु–, (सुपा, कौशा सां) भाखति <भङ्क्ष्यति, पा. दाठा <दष्ट्रा, अ मा. फास– <फस (पा) <स्पर्श– इत्यादि।

(४) भारत-ईरानी *आ, पा गारव– (स गौरव)।

३. इ—

(१) इ, अशो चिरठितिक 'हमेशा रहनेवाला' इत्यादि।

(२) ई (संवृत-स्वर मे), अशो (टो. मान) इस्या–, (धौ जौ) इसा <ईर्ष्या, अशो (गिर. भा सिद्ध जति) दिघ– <दीर्घ–, पा तिखिण– <तीक्ष्ण–।

(३) ई (जब विवृत-अक्षर संवृत हो जाता है), अशो तिनि <त्रीणि।

(४) ऋ, दिढ <दृढ, मिग, मिअ <मृग इत्यादि।

(५) ए, अशो (शाह मान) दुवि <द्वे, (सु) इक– <एक, खरो ध इमि <इमे, प्रा विअणा <वेदना इत्यादि।

(६) व्यञ्जन का अनुगामी य्, अशो कटविय <कर्तव्य, निगोह <न्यग्रोध, वर्दक पात्र अभिलेख महिय <मह्यम्; अशो (भा सिद्ध) अरोगिय, निय अरोगि <आरोग्य–; खरो ध भमनइ <भावनाय इत्यादि।

(७) स्वरागम के कारण, अशो (भा) उपतिस-पसिने (<प्रश्ने); खरो ध हिरि, पा हिरी <ह्री, निय गिलनग <ग्लानक इत्यादि।

(८) अग्र-स्वरागम (Prothesis) के कारण, अशो (शाह मान) इस्त्रि–, (गिर धौ का) इथी, पा प्रा इत्थी– <स्त्री (परन्तु अशो (शाह) स्त्रियक–)। यह अग्र-स्वरागम शायद प्राग्भारतीय-आर्य-भाषा काल की देन है, देखिये अवेस्ता इयेजस्– के साथ-साथ वैदिक रूप त्यजस्।

(९) अ (स्वर-साम्य, अथवा सादृश्य अथवा संक्रमण के कारण), अशो. (धौ. जौ. का टो) मझिम, पा मज्झिम– <मध्यम–, अशो.

(का. टो) गिहिथ– <गृहिन्+गृहस्थ, उत्तिम– <उत्तम–, चरिम– <चरम–, खरो. ध विरणेसु<*वैरिण–=वैरिन्; प्रा. पिक्क<पक्व, इत्यादि ।

४. ई—

(१) ई; अशो पा दीप–, अशो (गिर) ती<त्री (वैदिक), इत्यादि ।

(२) इ (विवृत-अक्षर मे बदलनेवाले सवृत-अक्षर का); अशो. (गिर) अविहीसा<अविंहिसा, अशो. पा वीसति[१]<विंशति; पा प्रा. वीस<विंश, पा प्रा सीह<सिंह– इत्यादि ।

(३) इ (सादृश्य के कारण), अशो (टो आदि) तीसु<त्रिषु, (धौ. जौ) चिलठितीक<–स्थितिक– इत्यादि ।

(४) आ (मिश्रण Contamination के कारण), अशो (गिर धौ जौ) हीनी<हीन–+हानि– ।

(५) इ+इ (सन्धि द्वारा), अशो (टो इत्यादि) गोतीति<*गोप्ति इति ।

५. उ—

(१) उ, अशो उडार–, पा उलार– <उदार, इत्यादि ।

(२) ऊ (सवृताक्षर मे), प्रा वधु या बहु<वधूम् ।

(३) ऊ (अनियमित), अशो भुय– <भूयः, अशो (का) हुत– <भूत– ।

(४) ऋ, अशो पा मुसा<मृषा, वुड्ढ– <वृद्ध– ।

(५) अ, इ, उ, औ (सादृश्य, मिश्रण अथवा समीकरण से); अशो उचावुच<उच्चावचम्, उदुपानानि<उदपानानि, चु<च+तु; अशो. (शाह गिर) ओसुढानि<*ओषधीनि; अर्ध मा उसु– <इषु– इत्यादि ।

(६) म भा आ ओ<अ या औ; खरो ध प्रहु<प्राप्त , बधु<*बद्ध , रुवु<*रूप (=रूपम्), उहु<उभौ, अप सीहु<सिंह इत्यादि ।

---

१ यहाँ ई प्राग्भारतीय-आर्य-भाषा काल का अवशेष भी हो सकता है । मिलाइये—अवेस्ता वीसइति, ग्रीक ईकति; अनुनासिक के पूर्व ह्रस्व-स्वर तथा अनुनासिक हट जाने पर उसी स्वर का दीर्घ हो जाना भी अवेस्ता मे मिलता है, अवे गन्तुम–, स गोधूम; फारसी बिरिन्ज, अफगान वीर्जे । (हिन्दी स)

(७) –व, अशो (वौ जौ) अतुलना<अत्वरणा, अशो पा दुतिय–<अद्वतीय (मिलाइये–द्व–), =द्वितीय– इत्यादि ।

(८) स्वरागम द्वारा, अशो (टो आदि) सडुवीसति– <षड्विंशति, (रुम्म मस्की) सुमि<अस्मि, पा पदुम– प्रा पदुम– या पउम– <पद्म– ।

(९) –अम् (पदान्त), खरो व, वौ न, निय अहु<अहम्; वौ सं. अयु<अयम्, दानु<दानम्, अप जणु<जनम् इत्यादि ।

६. ऊ—

(१) ऊ, अशो (गिर) भूत–, (वौ जौ) हूत– <भूत–, (टो आदि) सूकल– <शूकर– इत्यादि ।

(२) उ (संवृताक्षर में), पा चूल– <चुल्ल– (<क्षुद्र–), प्रा ऊसव– <उस्सव– <उत्सव– ।

(३) उ (अनियमित), अर्वमा मानूस<मनुष्य ।

(४) उ (संधि द्वारा), अशो (मा) जानंतूति<जानन्तु+इति ।

७ ऍ (ह्रस्व) केवल संवृताक्षरों (closed syllables) में मिलता है, जैसे— प्रा तेॅल्ल– <तैल–, पेॅम्म<प्रेमन् ।

८ ए (दीर्घ)—

(१) ए, लेख–, ते 'तुझे, तेरा', अशो एत या एत्र, प्रा एत्थ<*एत्र (=अत्र) ।

(२) ऐ, अय, अयि, अवि, अयो, पा वेर<वैर–, अशो (गिर) थइर–, पा. थेर– <स्थविर–, अशो तेदस, त्रेदस<*त्रैदस, *त्रयदस <त्रयोदश, निय देयनए<दयनाय ।

(३) अ (*रे में परिवर्तित होते हुये), देखिये § २३ ।

(४) –य–, खरो. ध समे-सबुध– <सम्यक्-सम्बुद्ध–, शेअदि<*शयति =शेते ।

(५) –अ, से<स, निय तदे<तत. ।

(६) –ओ–; अशो कलेति, माग कलेदि<करोति ।

९ ओॅ (ह्रस्व) केवल संवृताक्षरों (closed syllables) में मिलता है, जैसे— पा सोॅम्म– <सौम्य– (या सोम्य–), प्रा जोॅव्वण– > यौवन– ।

१०. ओ (दीर्घ)—

(१) ओ; अशो. पा करोति, शौ करोदि, अशो. असोकस<अशोकस्य, प्रा. लोअ<लोक– ।

(२) औ, अशो योन– <*यौन– (या यवन–), ओसधानि<औषध–, प्रा कोमुदी या कोमुई<कौमुदी ।

(३) आउ, अशो. (नागा.) चोदस<*चाउदस–, मिलाइये अशो. (टो) चावुदस<चातुर्दश– ।

(४) अव, अशो पा भोति या होति प्रा. भोदि, होदि या होइ<भवति; अशो ओरोधन– <अवरोधन– ।

(५) –अ ; जनो<जन., सो<स ।

(६) उ, अशो पोराण<पुराण (या पौराण), ओकपिण्डे<उल्का-पिण्ड– (या औल्क–), खरो घ , निय वहो<बहु, खरो घ. पोरुष– <पुरुष– (या पौरुष–), अयो<आयुष्–, निय. लहो– <लघु– ।

(७) अ+उ (सधि द्वारा), अशो (काल घौ) पजोपादाये<प्रज+उत्पाद–, मानुषोपगानि<मानुष+उपग– ।

(८) –अम् (पदान्त), अशो. (शाह्) कतवो<कर्तव्यम्, शको <शक्यम्, अनुदिवसो< –दिवसम्, खरो घ अहो (अहु भी) <अहम्, इछो<इच्छम् ।

§ ४४. म भा. आ भाषा मे निम्नलिखित व्यञ्जन है—

(अ) स्पर्श (Plosives)— क्, ख्, ग्, घ् (कण्ठ्य), च्, छ्, ज् (जिसके स्थान मे य् भी लिखा मिलता है), झ् (तालव्य-सघर्षी), ट्, ठ्, ड्, ढ् तथा किन्ही विभाषाओ मे ळ् तथा ळह् भी (मूर्धन्य), त्, थ्, द्, घ् (दन्त्य), प् फ्, ब्, भ् (ओष्ठ्य) ।

(आ) नासिक्य (Nasals)— ङ् (कण्ठ्य, यह सामान्यत अनुनासिक ँ के रूप मे लिखा गया है), ञ् (तालव्य, यह भी अनुनासिक ँ के रूप मे लिखा मिलता है), ण् (मूर्धन्य), न् (दन्त्य), म् (ओष्ठ्य), अनुस्वार (शुद्ध नासिक्य, म भा आ के सबसे बाद के स्तर मे अपने पूर्ववर्ती स्वर का अनुनासिकीकरण भी प्रकट करता है) ।

नासिक्य महाप्राण (Nasal aspirates)— ञ्ह्, ण्ह्, न्ह्, म्ह् (ये सयुक्त-ध्वनियाँ हैं न कि महाप्राणीकृत (aspirated) नासिक्य ध्वनियाँ) ।

(इ) अन्त.स्थ (Semi-Vowel)—य् (तालव्य), व् (ओष्ठ्य); य़्ह्, व़्ह् (विभाषाओं मे)।

(ई) लुठित (Rolled) र्।

(उ) पार्श्विक (Lateral) ल्, ल़ (निय ल्प्), ल्ह्, लह् (विभाषा मे)।

(ऊ) शिन्-ध्वनियाँ (Sibilants)—स् (दन्त्य), ष् (मूर्धन्य), श् (तालव्य), किसी भी विभाषा मे ये तीनो एकत्र नहीं मिलती।

(ए) ऊष्म-ध्वनियाँ (Spirants)—ये केवल उत्तर-पश्चिम के खरोष्टी अभिलेखो मे ही लिखने मे दिखायी गयी हैं; स़्, ज़्, क़्, श़् या य़् (दन्त्य और तालव्य); द़् (ताडित flapped), थ़् (दन्त्य), प़्, फ़् (ओष्ठ्य)।

(ऐ) महाप्राण (Aspirate) ह्।

§ ४५. प्रा० भा० आ० भाषा के असवर्ण (Heterogenous) संयुक्त व्यजन म० भा० आ० भाषा मे समीकृत होकर सवर्ण द्वित्व-व्यजनों के रूप मे बदल गये हैं। समीकरण (Assimilation) के मुख्य नियम निम्नलिखित हैं—

(१) स्पर्शों मे समीकरण पश्चगामी (regressive) होता है[1], अर्थात् पूर्ववर्ती स्पर्श परवर्ती स्पर्श के रूप मे बदल जाता है, जैसे—क्त्>त्त्, त्क्>क्क्, द्ग्> ग्ग्, ग्ध्>द्ध्, त्प्>प्प, प्त्>त्त्, ब्द्>द्द्, द्ब्>ब्ब्, द्भ्>ब्भ्, ब्ज्>ज्ज् इत्यादि।

(२) लुठित तथा पार्श्विक व्यजन स्पर्श व्यजन मे समीकृत हो जाते हैं, जैसे—क्र्, र्क्>क्क्, त्र्, र्त्>त्त्, प्र्, र्प्>प्प्, ग्र्, र्ग्>ग्ग्, द्र्, र्द्>द्द् ध्र्, र्ध्>द्ध्, भ्र्, र्भ्>ब्भ्, क्ल्, ल्क्>क्क्, ग्ल्, ल्ग्>ग्ग्, प्ल्, ल्प्>प्प्।

(३) अन्त स्थ व्यजन अपने पूर्ववर्ती स्पर्श मे अथवा अपने सदृश स्पर्श-सघर्षी व्यजन के रूप मे समीकृत होते हैं, जैसे—क्य्>क्क्, ग्य्>ग्ग्, च्य्>च्च्, ज्य्>ज्ज्, ट्य्>ट्ट्, ड्य्>ड्ड्, प्य्>प्प्, क्व्>क्क्, त्व्>त्त्, द्व्>द्ध्। परन्तु त्य्>च्च्, थ्य्>च्छ्, द्य्>ज्ज्, ध्य्>ज्झ् और विकल्प मे त्व्>प्प् तथा द्व्>ब्भ्।

(४) नासिक्य व्यजन अपने पूर्ववर्ती स्पर्श मे समीकृत होते हैं, जैसे—

---

१ अमरीकी विद्वान् इसको पुरोगामी (Progressive) समीकरण कहते हैं।

क्न्, क्म्>क्क्; ग्न्, ग्म्>ग्ग्; त्न्, त्म्>त्त्, द्म्>द्द्; परन्तु विकल्प से त्म्>प्प्।

(५) परवर्ती शिन्-व्यञ्जन अपने पूर्ववर्ती स्पर्श मे समीकृत होता है और इस समीकरण का परिणाम होता है च्छ्। विकल्प से क्ष्>क्ख्, त्स>स्स्।

(६) पूर्ववर्ती शिन्-व्यञ्जन (या महाप्राण) अपने परवर्ती स्पर्श मे समीकृत होता है और साथ ही उस स्पर्श का महाप्राणीकरण (Aspiration) हो जाता है, जैसे—ष्क्, स्क्>क्ख्, ष्ख्, स्ख्>क्ख्, श्च्, श्छ्>च्छ्, ष्ट्, ष्ठ्>ट्ठ्, स्त्, स्थ्>त्थ्, स्प्, स्फ्, ष्प्, ष्फ्>प्फ्। विकल्प से श्च्>च्च्।

(७) नासिक्य व्यञ्जन द्वारा अनुगमित शिन्-व्यञ्जन नासिक्य+महाप्राण के रूप में बदलता है, जैसे—श्न्, ष्न्, स्न्>न्ह (या ण्ह), श्म्, ष्म्, स्म्>म्ह, विभाषा मे श्न्>ञ्ह्।

(८) लुठित और पार्श्विक व्यञ्जन अपने से संयुक्त अन्तस्थ, नासिक्य अथवा शिन्-व्यञ्जन मे समीकृत हो जाते हैं, जैसे—र्व्, व्र्>व्व् (या ब्ब्), र्य्>य्य् (अथवा ज्ज्), र्श्, श्र् र्ष्, स्र्>स्स् (या श्श्), र्म्, म्र्>म्म्, र्ण्>ण्ण्, ह्य्>य्ह् (या ज्झ्); म्र् विकल्प से>म्ब्, ह्र तथा ह्ल् के बीच स्वरागम हो जाता है।

(९) म्न्>न्न्।

(१०) तीन व्यंजनो के संयोग मे पहले पूर्ववर्ती दो व्यंजन समीकृत होते हैं, जैसे—क्त्र>*त्त्र्>त्त्, क्त्व्>*त्त्व>त्त्, द्ध्व्>*द्ध्व्>द्ध्, त्स्न्>*स्स्न्>ण्ह्। परन्तु यदि संयोग मे पहला नासिक्य व्यंजन हो तो पहले बाद वाले दो समीकृत होते हैं, जैसे—ङ्ग्र्>ङ्ग्ग्>ङ्ग्, न्द्र्>*न्द्द्>न्द्, न्ध्य्>*न्झ्झ्>ञ्झ्। परन्तु क्ष्म्>क्ख या च्छ्।

§ ४६ पदादि मे संयुक्त व्यंजन का सरलीकरण समीकरण द्वारा अथवा समीकरण के बिना ही हो जाता है।

(अ) समीकरण से, जैसे—स्तूप->पा थूव-(थुव), त्सरु>पा थरु, स्पर्श->पा. फस-, स्तन->प्रा थण-, स्कम्भ->पा प्रा खम्भ-, क्षेत्र->खेत्त-।

(आ) समीकरण के बिना, जैसे—ब्राह्मण->बम्हण-, द्रव्य->दव्व-, स्थविर->पा थेर-, स्फुरति>प्रा. फुरइ, ग्राम->गाम-, श्री>सी, क्रूर->कूर-।

§ ४७. प्रा भा आ. भाषा से बाद मे लिये हुये शब्दो मे पदादि तथा

(ख)–ष्क्–, –स्क्–, अशो (का धौ मान) अगिकंध–<अग्निस्कन्ध–; दुकरं<दुष्कर–, निय निकसति (निखसति भी) <निष्कसति, निक्रंत<निष्क्रान्त–, पा. चतुक्क, प्रा चउक्क<चतुष्क–; पा. तक्कर–<तस्कर–, अप सक्कय<संस्कृत।

(ग) –.क्–, प्रा अन्तक्करण<अन्तःकरण।

(३) ख्—

(अ) ख्, अशो खादियति, प्रा खादिअदि, खाइअइ, खज्जइ<खाद्यते, अशो खो, प्रा खु (मिलाइये प्रा भा आ. खलु), अशो. पा मुख–<मुख–।

(आ) स्ख्–, पा खलति, प्रा. खलदि, खलइ<स्खलति, खम्भ–<स्कम्भ–।

(इ) क्, निय खुल–<कुल–, पा खुज्ज–<कुब्ज–, सुनख–<शुनक–(या *शुनख–), खप्पर–<कर्पर–, पा अर्धमा खिल<किल; यह एक विभाषीय विकार है।

(ई) क्र्– (सम्भवत प्राग्भारतीय-आर्य विभाषीय *ख्र् का परिणाम) पा खिड्डा<क्रीडा (मिलाइये स खेल–); परवर्ती सस्कृत आखेटिक–<आक्रीडिन्+।

(उ) क्ष्–, खन–<क्षण–, खुद्द–<क्षुद्र–।

(ऊ) घ्, पा पलिख<परिघ–, मखादेव<मघादेव (?), यह विभाषीय विकार है।

(४) –क्ख्—;

(अ) –ख्य्–, अशो (का टो) मुख–<मुख्य–, प्रा सोक्ख–<सौख्य–।

(आ) –ःख्–, दुक्ख–<दुःख–।

(इ) –क्ष्–; अशो तखसिला<तक्षशिला, अशो (का धौ जौ) लुख, पा प्रा. रुक्ख<वृक्ष।

(ई) –क्ष्ण्–, –क्ष्म्–, पा तिक्ख–<तीक्ष्ण–, लक्खी<लक्ष्मी।

(उ) –र्क्–(विभाषीय विकार अथवा सादृश्य), अशो (धौ) अखखसे<अकर्कश'।

(ऊ) –ष्क्–, –स्क्–, निय निखल्<निष्कलय–; पा निक्ख (नेक्ख) <निष्क–, प्रा. सुक्ख–<शुष्क–, अशो (गिर) अगिखंधानि <अग्नि+स्कन्ध–।

(ए) –ष्क्–, अशो (गिर का.) विनिखमन<विनिष्क्रमण–; खरो. ध. निखमध<निष्क्रमथ।

(५) ग्—

(अ) ग्, अशो. पा गरु (=प्रा भा. आ गुरु–); गिहि– (गेहि–) <गृहिन्–।

(आ) –क्– (स्वरमध्यम), अशो (जौ) पल-लोग', हिद-लोग, हिद-लोगिक'–<+लोक, +लौकिक, (भा.) अधिगिच्य<अधिकृत्य; पा पटिगच्च<प्रतिकृत्य, एलामूग<एडमूक–, अर्धमा लोग–<लोक–।

(इ) घ, निय. गस<घास–, ग्रिद<घृत–, खरो ध. गु<घ+नु, यह विभाषीय विकार है।

(ई) –ङ्क्– (स्वरमध्यग), खरो. ध पगसन<पङ्कासन्न–, –सगप–< –सङ्कल्प–, यह विभाषीय विकार है।

(उ) ग्र् (पदादि), गाम<ग्राम–।

(६) –ग्ग—,

(अ) –ग्न्–; अशो अगि–, पा प्रा अग्गि<अग्नि–, पा प्रा. लग्ग–<लग्न–, प्रा उव्विग्ग<उद्विग्न–।

(आ) ग्म्–, प्रा जुग्ग–<युग्म–।

(इ) –ग्य्–, प्रा जोग्ग–<योग्य–।

(ई) –ग्र्–, अग्ग–<अग्र–, अशो निगोह–, पा. निग्गोह–<न्यग्रोध–।

(उ) –द्ग्–, पा. प्रा. मुग्ग–<मुद्ग, प्रा उग्गम<उद्गम।

(ऊ) –र्ग्–, मग्ग–<मार्ग–, वग्ग–<वर्ग–, निय. निगत–<निर्गत–।

(ए) –ल्ग्, प्रा फग्गुण–<फाल्गुन, वग्गा<वल्गा।

---

१ –क का घोषीकरण न होना (non-Vocalisation) यह प्रकट करता है कि यह प्रत्यय जीवित था और इसमें क् व्यंजन का स्पष्ट उच्चारण होता था (और इसलिये इसे का टो. तथा जोगीमारा गुहा-लेख में –क्य्– लिखा गया है, जैसे— लोकिक्य, देवदशिक्यि)।

(७) –ग्– (खरो. अभि. ग्)—

(अ) –ग्– (स्वरमध्यग), निय भग<भाग–, खरो. अभि. भगवतो <भगवत इत्यादि ।

(आ) –क्– (स्वरमध्यग), निय अनेग<अनेक–; खरो अभि नगरगस <नगरकस्य; यह विभाषीय विकार है ।

(८) घ् (ग् के स्थान मे भी)—

(अ) घ्; घोस– <घोष; घास– <घास–; संघ– <सङ्घ–; खरो घ गसेदि = घातयति ।

(आ) –क्ष्– <*क्ष्<*क्ष्; निय भिघु<भिक्षु–; अशो. (धौ जौ) चघथ, (टो) चघति<चक्ष्–; वौ. स. पघरति, पा पग्घरटि <प्रक्षरति; यह विभाषीय विकार है ।

(इ) घ्– (परवर्ती ह् के विपर्यय से), अप. घेणइ<गृह्णाति ।

(ई) –ङ्क्–, –ङ्ग्– (या –ङ्ख्–); खरो घ सघ<सङ्ग, सघइ <सङ्ख्याय, निय अघ<अङ्ग–, शिघवेर<शृङ्गवेर–, संघलिदवो <सङ्कलितव्य–, यह विभाषीय विकार है ।

(उ) –*स्क–; खरो घ सघर– <सस्कार, यह विभाषीय परिवर्तन है ।

(ऊ) –*ह–, निय सिंघ– <सिंह–; अप. संघार– <संहार– ।

(९) –ग्घ्–;

(अ) –घ्न्–, प्रा. विग्घ<विघ्न– ।

(आ) –घ्र्–, पा प्रा सिग्घ<शीघ्र–, प्रा. अग्घाण– <आघ्राण– ।

(इ) –द्घ्–; पा. उग्घात<उद्घात– ।

(ई) –र्घ्–; अशो दिघ–, पा दीघ–, प्रा. दिग्घ– <दीर्घ, प्रा अग्घ– <अर्घ– ।

(१०) च्—

(अ) च्, चिर– <चिर–; च<च इत्यादि ।

(आ) ज्; अशो (शा) व्रचंति, व्रचेयं<व्रज्–[1]; पा. पाचेति<प्राजयति, निय. चणति<जानाति, चिव<जीव–, विभाषीय विकार ।

---

१. परन्तु *व्रच् धातु भी हो सकती है ।

(इ) तु, अशो चु<तु (या च+तु), अशो (का, धौ, मा.) चिठितु, प्रा. चिट्ठदि–चिट्ठइ<तिष्ठ–, विभाषीय विकार।

(ई) श्, अशो. (धौ, जौ, सस, वै) चकिये<शक्य– (या *चक्य–); विभाषीय विकार।

(उ) क्ष्–; पा अर्धमा. चुल्ल<क्षुद्र–, विभाषीय विकार।

(ऊ) च्य्–, खरो व. चुति<च्युति–।

(११) –च्च्–,

(अ) –च्च्–, उच्चार– <उच्चार– 'मल-मूत्र'।

(आ) –च्छ्–, निय अगचति<आगच्छति, विभाषीय परिवर्तन।

(इ) –च्य्–, अशो खरो ध वुचति, पा वुच्चति<उच्यते।

(ई) –र्च–, अशो. वर्चम्हि, वचसि<वर्चस्–, पा अच्चि<अर्चिष्।

(उ) –र्छ्–, पा मुच्चति<मूर्छति।

(ऊ) –श्च्–, अशो (शा मा) पच<पश्चात्, पा, प्रा. निच्चल<निश्चल, विभाषीय विकार।

(ए) –ज्य्–, प्रा वच्चइ[1]<व्रज्यते।

(ऐ) –त्य्–, अशो (गिर) परिचजित्पा, पा चजति<त्यज्–, बेसनगर अभिलेख चाग<त्याग, सच्च<सत्य–, अशो (गिर) कच, खरो. ध, निय किच, पा, प्रा किच्च– <कृत्य; विभाषीय विकार।

(१२) छ्—

(अ) छ्, छन्द– <छन्दस्, छाया<छाया आदि।

(आ) क्ष्–, अशो (मा, गिर) छणति, (का) छनति<क्षणति आदि।

(इ) ष्–; पा, प्रा छ, छक्क– <षट्, षट्क–।

(ई) श्–, पा छाप–, अर्धमा छाव– <शाव–, विभाषीय विकार।

(उ) ज्–, निय. छल्पित<जल्पित–।

(ऊ) –ञ्च्–, अशो (धौ, जौ., का, मा) किछि-किंछि<किञ्चित्, विभाषीय विकार।

(ए) –ञ्ज्–, निय परिभुछनए<परिभुञ्जनाय[2]; विभाषीय विकार।

---

१. यह रूप *व्रच् धातु का भी हो सकता है।

२ या परि *भुक्षणाय।

(१३) –च्छ्–,

(अ) –च्छ्–; अशो. परिपुछा<परिपृच्छा, निय इछति, पा अच्छति–, प्रा अच्छदि–अच्छइ<*अच्छति आदि ।

(आ) –श्च्–, अशो पछा, खरो ध पछ, प्रा पच्छा<पश्चात्, पा, प्रा. अच्छेर– <आश्चर्य– ।

(इ) –क्ष्–, प्रा अच्छि (अक्खि भी) <अक्षि– आदि ।

(ई) –त्स् (या –त्स्य्–), अशो सवछर-संवछर<संवत्सर–, अशो. (गिर) चिकीछा<चिकित्सा, अशो. (टो) मछ, पा, प्रा मच्छ– <मत्स्य–, प्रा वच्छ– <वत्स– ।

(उ) –थ्य्–, खरो. ध मिछ–, पा., प्रा मिच्छा<मिथ्या, पा, प्रा रच्छा <रथ्या ।

(ऊ) –प्स्–, पा, प्रा अच्छरा<अप्सरा, प्रा जुगुच्छा<जुगुप्सा ।

(ए) –ष्व्–, नागार्जुन अभिलेख पितुछा, प्रा पिउच्छा<पितृष्वसा; विभाषीय विकार ।

(१४) ज्—

(अ) ज्, जन– <जन–, जीव– <जीव– ।

(आ) य्, अशो (शा, मा) मजुर, (का, जौ) मजूला<मयूरा, खरो. ध जदि, प्रा जाइ<याति ।

(इ) –च्–, अशो (जौ) अजला<अचला, अशो (टो आदि) सकुजमछे <सकुच-मत्स्य–, खरो ध इद ज<इदं च, पटिक का तक्षशिला ताम्रपत्र सज<सचा, निय सुजि<शुचि–, पा सुजा<स्रुचा, विभाषीय विकार ।

(ई) –ञ्–, खरो ध पज<पञ्च, सिज<सिञ्च, किजनेषु<किञ्चनेषु, मुजु<मुञ्चन्, विभाषीय विकार ।

(उ) ज्य्–, द्य्–, पा जोतति<द्योतते, अशो जोति<ज्योतिष्– ।

(ऊ) ध्य्–, खरो ध झइ<ध्यायी, निय जान<ध्यान– ।

(१५) –ज्ज्– (इसके स्थान मे –ज्य्– भी लिखा मिलता है)—

(अ) –ज्ज्–; पा, प्रा लज्जा, सज्जा आदि ।

(आ) –ज्य्–, निय रज, पा, प्रा रज्ज<राज्यम् आदि ।

(इ) –ज्व्–, –ज्ज्व्–, पा पज्जलति, प्रा. पज्जलदि–पज्जलइ<प्रज्वलति, उज्जल<उज्ज्वल– ।

(ई) –ञ्ज्– प्रा. पुञ्ज– <कुञ्ज– ।

(उ) –द्य्–, अशो, निय अज, पा, प्रा अज्ज<अद्य, अशो उयान, पा. उय्यान, प्रा उज्जाण<उद्यान– ।

(ऊ) –र्य्–, अशो (ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर) अयपुत–, पा अय्यपुत्त–, प्रा. अज्जउत्त– <आर्यपुत्र–, पा कय्य–, प्रा कज्ज– <कार्य– ।

(ए) –ल्य्–, अशो कयाण (गिर, शा) कलाण <कल्याण, अशो (टो आदि) –सयके< –शल्यक– ।

(ऐ) –य–, प्रा दिज्जदि–दिज्जइ<दीयते, करिज्जदि–करिज्जइ <*कर्यते=क्रियते ।

(ओ) –ज्र्–, –र्ज–, वज्ज– <वज्र–, अज्जन– <अर्जन–आदि ।

(१६) झ् (=खरो ध ज्)—

(अ) ध्य्–, पा, प्रा झाण<ध्यान–, खरो ध जयतु<ध्यायत ।

(आ) क्ष् (=भारत-ईरानी*ग्झ्–), अशो (टो आदि) झापेतविय <क्षापय्–, पा, प्रा झाम<क्षाम–, प्रा. झरइ<क्षरति, झीण (खीण भी) <क्षीण–, विभाषीय विकार ।

(इ) भारत-ईरानी *झ्, खरो ध जत्व=हत्वा ।

(१७) –ज्झ्– (इसके स्थान मे –व्ह्– भी लिखा मिलता है),—

(अ) –ध्य्–, मज्झ्<मध्य–, अशो (गिर) इथीझख– <स्त्री-अध्यक्ष, खरो ध. प्र–उजदि<प्रयुध्यते ।

(आ) –ह्य्–, पा मय्हं, प्रा मज्झ<मह्यम्, प्रा सज्झ– <सह्य– ।

(१८) ञ्—

(अ) ञ् (तालव्य-व्यञ्जन का पूर्ववर्ती); प्रा सञ्झा<सन्ध्या, विञ्झ <विन्ध्य– ।

(आ) ज्ञ्–, अशो (गिर, शा, मा) ञातिक<ज्ञातिक–, अशो (शा) ञनं, पा ञान<ज्ञानम्, खरो ध ञत्व<ज्ञात्वा ।

(इ) न्य्–, अशो (गिर) ञयासु<न्ययासु, पा ञाय<न्याय–, विभाषीय विकार ।

(१९) –ञ्ञ्– (इसके स्थान मे –ंञ्– भी लिखा गया है)—

(अ) –ञ्ज्–, अशो. (शा.) वञनतो<व्यञ्जनत., खरो ध कुञर <कुञ्जर, विभाषीय विकार ।

(ग्रा) -ञ्य्-, खरो ध सञम<संयम-, सञत<संयत-, भरञ् <भरं*युः, विभाषीय विकार।

(इ) -ज्ञ-; अशो. (गिर) राञो, पा रञ्ञो, रञो<राज्ञः; खरो ध. प्रञय<प्रज्ञया, अशो. (जौ) पटिञा<प्रतिज्ञा, निय यञ <यज्ञ-।

(ई) -ण्य्-, अशो. (शा, मा, गिर) खरो. ध, निय. पुञ-पुञ, पा. पुञ्ञ- <पुण्य-, पा पिञ्ञाक<पिण्याक।

(उ) -न्य्-, अशो. (शा. मा, टो) अञ-अञ<अन्य, निय. अञ, पा. अञ्ञ<अन्य-, खरो. ध. नञेष<न अन्येषाम्, अशो (शा) मञति, (गिर) मञते<मन्यते, खरो. ध. शुञगरि<शून्यागारे, विभाषीय विकार।

(ऊ) -न्ध्-, खरो ध. वञ (ण) <बन्ध (न), कञण<स्कन्धानाम्, गञ<गन्ध-, अञ<अन्ध, विभाषीय विकार।

(२०) -ञ्ह्-,

-श्न्-, पा पञ्ह- <प्रश्न-।

(२१) ट्-,

(अ) ट्, अशो. (शा., मा., गिर) अटवि 'जगल', अशो (गिर) रिस्टिक 'एक व्यक्ति का नाम', खरो. ध. दिष्टनि<दृष्टानि आदि।

(आ) त् (ऋ के अनुवर्ती), अशो. (शा, मा., का, धौ, टो.) कट-, (मा.) किट, (शा) किट-किट्र<कृत-, अशो. (शा, मा, गिर, धौ, जौ) उसटेन, (का.) उषटेन<उत्सृतेन आदि।

(इ) त् (र्, स् के अनुवर्ती अथवा अकारण), अशो. पटि- <प्रति-, (गिर) ध्रमानुसस्टि<+शास्ति, पा पटङ्ग<पतङ्ग, प्रा पडति-पडइ<पतति।

(ई) त् (प्राग्भारत-ईरानी श् के अनुवर्ती), अशो (गिर) सेस्टे <भारत-ईरानी* सइश्त- (=प्रा भा आ श्रेष्ठ-), -उस्टान <*उश्तान<भारत-ईरानी उत्स्तान=प्रा भा आ. उत्थान-, तिस्टतो<*तिश्तन्तस्=प्रा. भा आ तिष्ठन्त, तिस्टेय=प्रा. भा. आ. तिष्ठेत्।

(उ) ड्, निय तंट<दण्ड-; विभाषीय विकार।

(२२) –ट्ट्–,

(अ) –र्त्–, अशो (टो. आदि) केवट–, पा केवट्ट– <कैवर्त–, अशो (मा, का, धौ, जौ, टो) कटविय, (शा) कटव– <कर्तव्य, पा अट्ट– <आर्त–, पा वट्टति, प्रा वट्टवि–वट्टइ <वर्तते।

(आ) –त् (त्–)–(ऋ, र् के अनुवर्ती), प्रा. मट्टिआ<मृत्तिका, वट्टवि–वट्टइ<वर्तते ।

(इ) –ष्ट्–, निय अट (अठ भी) <अष्ट, उट<उष्ट्र, पा. मट्ट <मृष्ट–; विभाषीय विकार।

(२३) ठ्—

(अ) –ठ्–, पा, प्रा कण्ठ आदि।

(आ) –थ्–(ऋ अथवा –र् के अनुवर्ती), अशो (शा, मा, का., जौ., धौ) अठ्ठ– <अर्थ–, अशो. (धौ) सवपुठविय<सर्वपृथिव्याय्, पा पठवी<पृथिवी, सिठिल– <*शृथिर–=*श्रिथिर–।

(इ) –थ्– (र के अनुवर्ती), पठम– <प्रथम–; निय प्रठ<*प्रथम्।

(ई) –ष्ट्–, पा वेठति<वेष्टते।

(उ) स्त् या स्थ्–, पा ठाति<*स्ताति या स्थाति=तिष्ठति; प्रा. ठिद–ठिअ– <स्थित–, सादृश्यमूलक विकार।

(ऊ) –ष्ट्र्–; पा दाठा<दंष्ट्रा।

(ए) –ढ्–; निय त्रिठ<दृढ; विभाषीय विकार।

(२४) –ट्ठ्—,

(अ) –ष्ठ्–; अशो (शा, मा, का) स्रेठ–सेठ–, पा., प्रा सेट्ठ– <श्रेष्ठ–; अशो (गिर) वमाधिठानाए<+अधिष्ठानाय, (धौ, जौ) निठुलियेन<नैष्ठुर्येण।

(आ) –ष्ट्–; अशो (मा) अठ, पा, प्रा अट्ठ<अष्ट, अशो. (धौ, जौ) लठिक– <राष्ट्रिक–, पा, प्रा दिट्ठि– <दृष्टि–।

(इ) –त्– या –थ्– (प्राग्भारत-ईरानी श् के अनुवर्ती), अशो. (शा., मा, का, धौ, जौ.) उठन– (मिलाइये गिर उष्टान) <*उश्तान=प्रा भा आ उत्थान, पा कविट्ठ– <कपित्थ–।

(ई) –स्थ्–, अशो. (टो आदि) अनठिक<अनस्थिक–; पा., प्रा. अट्ठि– <अस्थि–।

(उ) –स्त्–; अशो. (का) –सठुत<सस्तुत–, (सुपारा) धम्मानुसठि <+शास्ति, (रुम्मनदेई) सिलाठुभे<शिलास्तूप– +स्तम्भ–।

(ऊ) –र्थ्–, पा अट्ठ– <अर्थ–।

(ए) –ष्ण्–, अप. (पूर्वी) विट्ठु– <विष्णु, अर्ध-तत्सम विकार।

(२५) ड्—

(अ) ड्–; अशो. (टो. आदि) एडक 'भेड', सडुवीसति<षड्विंशति।

(आ) द्, अशो (रुम्म, वै., सस) उडाला<उदारा, (मस्कि) उडारिक– (मिलाइये पा. उळार); अशो (टो आदि) पंनडस <पञ्चदश, अशो. (का, टो आदि) दुवाडस<द्वादश, पा डसति, डंस–, सडास– (अर्धमागधी मे भी) <दश्–, पा. डाह (अपभ्रंश मे भी), खरो ध डझमन– <दह्–, प्रा. आडहइ, आदत्त– <आदधाति, डोला<दोला।

(इ) –ल्–, अशो. (गिर) महिडायो<महिलाः, अशो (टो) वडि, (मथि, रधि, राम) दुडि, (कौशा.) दुडी=दुलि–, दुडि–; पा नड– <नल–; ल्, ड् का एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग प्रा भा आ मे भी मिलता है, जैसे— नल– नड–।

(ई) –ट्–, पा निघण्डु–निघण्टु–, प्रा कुडुम्ब<कुटुम्ब, खरो ध जडइ<जटया।

(उ) –त्– (–द्– मे परिवर्तित होते हुये), पडिरुव<प्रतिरूप।

(२६) –ड्ड्–,

(अ) –ड्य्–, पा., प्रा कुड्ड– <कुड्य–।

(आ) *र्द्–, पा निड्ड, अर्धमा नेड्ड<*निर्द्द (=प्रा भा आ नीड), पा, प्रा. कड्ड– <*कृद्द–=प्रा भा आ कृष्ट–।

(इ) –र्द्–, पा छड्डति, अप छड्डइ<छर्दयति।

(ई) –ड्र्–, प्रा वड्ड– <*वड्र–।

(२७) –ळ्– (–ड्–, –ड़्–),

(अ) –ड्–, पा. दमिळ– <द्रविड–।

(आ) –ट्–, वार्दक पात्र-अभिलेख पडिमशए<प्रत्यंशाय, निय किड <*किट<कृत–, पहुड<प्राभृत–।

(इ) –ट्– (स्वरमध्यग), निय कुकुड<कुक्कुट–, कोड़ि<कोटि–, पा खेळ– <खेट–, फळिक– <स्फटिक–, मा सअळ<शकट, महा. कक्कोळ<कर्कोट।

(ई) –ण्– (स्वरमध्यग), पा. वेळु– <वेणु–, मुळाल– <मृणाल–; विभाषीय विकार।

(उ) –त्य्,– निय पड़ेक<*प्रटचेक<प्रत्येक–।

(ऊ) –ल्– (स्वरमध्यग), निय. मधु-शड़<मधु-शाल–; विभाषीय विकार।

(२८) ढ्—

(अ) –ढ्–, अशो वाढ– 'अत्यधिक', अशो (शा., का) दिढ–, (गिर) दढ–, (शा , मा) द्रिढ–, खरो घ द्रिढ<दृढ–।

(आ) –ध्– (अकारण या स्वत.), अशो. (गिर) ओसुढ–, (शा) ओषुढ<औषध–।

(इ) –थ्–, खरो घ पढम<प्रथम, पढवि<पृथिवी, महा कढइ <क्वथति।

(ऊ) –ठ्–, प्रा पढण– <पठन–, पीढ– <पीठ–।

(ए) म भा आ ठ्; प्रा ढक्कइ<*ठक्कत्ति<स्थक्यते, वेढइ<पा वेठति<वेष्टते, अर्धमा चिमिढ<*चिपिठ<*चिपित+पिप्ट–, सादृश्यमूलक विकार।

(ऐ) द् (ह् के व्यत्यय द्वारा), प्रा डज्जदि–इ<दह्यते, प्रा आढत्त– <*आदत्त– =आहित–।

(ओ) –ड्ढ–, अप दाढ– <पा.दड्ढ– < भारत-ईरानी दग्घ =दग्घ–।

(२९) –ड्ढ्—,

(अ) –ढ्य्–, पा , प्रा अड्ढ– <आढ्य–।

(आ) –र्ध्–, अशो (मा , का) दियढ (रुम्म , मस्की , ब्रह्मगिरि, जति , सस) दियधिय– <द्वि–अर्ध–, द्वि–अधिक–, अशो. वढति, वढयति, पा वड्ढति–वड्ढेति, प्रा वड्ढेदि–इ<वर्धयति, अशो (शा , धौ.) वुढ–, पा , प्रा वुड्ढ– <वृद्ध–।

(इ) भारत-ईरानी –ग्ध्–, पा दड्ढ– <*दग्घ=दग्ध–।

(३०) –ळ्ह्– (इसके स्थान मे ढ् भी लिखा मिलता है)—विभाषीय,

(अ) –ढ्–, पा मीळ्ह– <मीढ–, वुळ्ह– <व्यूढ–;

(आ) –ठ्–; खरो अभि. पढ्वि<पृथिवी।

(इ) –ध्–, पा. द्वेळ्हक– <*द्वैधक–।

(३१) ण्—

(अ) –ण्–; अशो (गिर) कलाण, (शा, मा) कयण–कलण– <कल्याण– ।

(आ) न, प्रा. ण<न आदि ।

(इ) –ज्ञ्–; अशो (शा., मा) अणपित<आज्ञापित, आज्ञप्त–; पा. आणा<आज्ञा<भारत-ईरानी आज्ना ।

(३२) –ण्ण्—,

(अ) –ण्य्–; अशो. (मा) पुण, पा, प्रा. पुण्ण<पुण्यम् ।

(आ) –ण्व्–, पा किण्ण– <किण्व– ।

(इ) –न्य्–, अशो (मा) अण, प्रा अण्ण<अन्य–, अशो. (मा.) मणति<मन्यते ।

(ई) –ञ्च्–, पा पण्णास<पञ्चाशत्, पा, प्रा पण्णरस<पञ्चदश ।

(उ) –ज्ञ्–, प्रा अणहिण्ण<अनभिज्ञ– ।

(ऊ) –र्ण्–, पा, प्रा वण्ण– <वर्ण– ।

(ए) –ण्ड्–, खरो ध वण<दण्ड–, पणिदो<पण्डितः,–कुणलेषु <कुण्डल–; निय भण<भाण्ड, विभाषीय विकार ।

(३३) –ण्ह्—(न्ह्–),

(अ) –ह्न्–; पा अपरण्ह, प्रा अवरण्ह<अपराह्ण–, शौ गेण्हदि <गृह्णाति ।

(आ) –ह्न्–, पा प्रा चिण्ह<चिह्न ।

(इ) –ष्ण्– (–ष्र्ण्–, –क्ष्ण्–), पा, प्रा. कण्ह– <कृष्ण–, उण्ह <उष्ण–, पा., प्रा पण्हि– <पार्ष्णि, अभिण्ह<अभीक्ष्णम्, नागार्जुनकोण्डा सुंण्हान<*सुष्णा– <स्नुषा ।

(ई) –श्न्–, प्रा. पण्ह– <प्रश्न– ।

(उ) –स्न्– (–त्स्न्–), पा जुण्हा, प्रा जोण्हा<ज्योत्स्ना, प्रा. ण्हाण– <स्नान– ।

(ऊ) –र्ण्– (–र्न्–); प्रा. चतुण्ह (चतुण्णं भी) <चतुर्णाम् ।

(३४) त्—

(अ) त्; ति<इति आदि ।

(आ) –थ्–, पा कतिक– <कथिक–, निय शितिल– <शिथिल–, प्रतम<प्रथम–(या वैदिक प्रतम–), विभाषीय विकार ।

(इ) भारत-ईरानी*त् (श् का अनुवर्ती); अशो. (शा) अस्तवष– <*अस्तवर्ष = अष्ट–वर्ष, (शा, मा) निपिस्त<*निपिश्त = निपिष्ट–।

(ई) च्, खरो. ध चमत्रकेहि<धर्मचक्रेभिः; पा. तिकिच्छति <चिकित्सते, अर्धमा तिगिच्छा–तेइच्छा<चिकित्सा; सादृश्य-मूलक अथवा विषमीकरण का परिणाम।

(उ) द्; अशो. (जौ) पतिपातय– <प्रतिपादय–, पातु<प्रादुर्, कुसित<कुसीद, मुतिङ्ग– <मृदङ्ग–, खारवेल अभि चेति– <चेदि–, निय तित<*दित = दत्त–, तुइ<द्वे; विभाषीय विकार।

(ऊ) थ्, पेरमैयन शिलालेख (लका) तेर<थेर– <स्थविर–; विभाषीय विकार।

(ए) म् तथा किसी भिन्-ध्वनि के बीच श्रुति (glide) के रूप में (केवल खरो. ध. तथा निय में), खरो. ध अहित्सइ<अहिंसा, भवेत्सु<*भवेस्सु, सत्सन<संसन्न–, सत्सर<संसार–; निय. मंत्स<मांस।

(३५) –त्–;

(अ) –त्त्–; पा, प्रा उत्तिम– <उत्तम–।

(आ) –प्त्–; अशो (टो. आदि), खरो. ध. गोति; अशो. (कौशा.) गुति<गुप्ति–, खरो ध अप्रति<अप्राप्ते, पा., प्रा. खित्त– <क्षिप्त–।

(इ) –त्व्–, अशो. (का) चतालि<चत्वारि; अर्धमा चरित्ता <चरित्वा।

(ई) –त्र्–, अशो (टो. आदि), पा गोत्त– <गोत्र–, पुत्त<पुत्र–।

(उ) –स्त्–, सोहगौरा अभि. सवतियान<श्रावस्त्यानाम्, पा., प्रा दुत्तर– <दुस्तर–, पा. संतत्त– <संत्रस्त–।

(ऊ) –स्थ्– (या प्राग्भारतीय-आर्य –स्त्–), पा. मज्झत्थ– <मध्यस्थ–, इंदपत्त– (–पत्थ–भी) <इन्द्रप्रस्थ, विभाषीय विकार।

(ए) –र्त्–, अशो. (गिर) अनुवतरे, (शा, धौ, जौ.) अनुवतंतु– अनुवततु, पा वत्तति<वर्तते।

(ऐ) --द्ध्--, अशो (मा) भवशुति <भवशुद्धि--, निय वृतग <वृद्धक--, सादृश्यमूलक अथवा विभाषीय विकार।

(ओ) --क्त्--; अशो (गिर, धौ) वुत--, पा वुत्त-- <उक्त--, खरो. ध. सित--, पा सित्त-- <सिक्त--, भत्त-- <भक्त--।

(औ) --त्म्--, अत्ता <आत्मा।

(३६) थ्--

(अ) थ्, अशो, पा यथा, अथ, खरो ध युजथ <*युज्यथ।

(आ) स्त्, अशो (टो., सस, रुम्म) --थम्भ-- <स्तम्भ--, (नागा.) थुबे <स्तूप--, पा थनेति <स्तनयति, प्रा थन-- <स्तन--।

(इ) स्थ्, अशो (गिर) थइर--, पा थेर-- <स्थविर--, निय., धौ. थिद-- <स्थित--; पा थान-- <स्थान--, थूल-- <स्थूल--।

(ई) त्, पा थुस-- <तुष--, सादृश्यमूलक।

(उ) त्स्--; पा, प्रा थरु-- <त्सरु--।

(ऊ) ध्, निय थरिदवो <*धरितव्य, पा पिथीयति <*अपिधीयते--; बौ स पिथितुं (ललितविस्तर) <अपिधा--।

(ए) --द्--; निय. विवथ <विवाद--, विभाषीय विकार।

(३७) --त्थ्--;

(अ) --स्थ्--; अशो (शा., टो. आदि) चिरठितिक-- < --स्थितिक।

(आ) --स्त्-- (*--स्थ्-- मे परिवर्तित होते हुये), अशो (का., धौ, जौ) नथि <नास्ति, अशो (का, धौ) हथि--, पा., प्रा हत्थि-- <हस्तिन्, अशो (टो.) पविथलिसति <*प्रविस्तरिष्यन्ति, खारवेल पसथ-- <प्रशस्त--।

(इ) --र्थ्, अशो (गिर, का, धौ, जौ) अथ--, पा, प्रा अत्थ-- <अर्थ--; पा प्रा सत्थ-- <सार्थ--।

(ई) --त्र्-- (*थ् मे बदलते हुये), पा., प्रा. तत्थ <तत्र; पा सोत्थिय-- (सोत्तिय--भी) <श्रोत्रिय--, मिलाइये इत्थि <स्त्री।

(उ) --क्थ्--, पा सत्थि-- <सक्थि--।

(ऊ) --थ्न्--, पा अभिमत्थति <+मथ्नाति (या *मथ्यति)।

(ए) --द्द्-- (मिश्रण अथवा सादृश्य से); निय. उथिश <उद्दिश्य।

(३८) द्--

(अ) द्; अशो, पा दान--, प्रा दाम--; अशो., पा विवहामि <विवदामि, पा. दिज <द्विज--।

(आ) –त्– (स्वरमध्यग), अश्वघोष सुरद– <सुरत–, निय थरिदवो <*थरितव्य–, घृद– <घृत–, पा उदाहु<उताहो, निय्यादेति <निर्यातयति, शौ, माग भोदि–होदि<भवति, महा उडु– <ऋतु–, खरो घ रद<रत– ।

(इ) त्—, निय देन<तेन (मिलाइये शौ न दे<न ते), दनु<तनु–, दिंपुर<ताम्बूल; खरो. घ यो दु<य तु, विभाषीय विकार ।

(ई) –त्– (न् के अनुवर्ती), निय गन्दवो<गन्तव्य–, अगदुक <आगन्तुक– (मिलाइये पंद<पन्थ), पा हन्द<हन्त, खरो घ हृदि<हन्ति, शद<शान्त–, वदु<वान्त, शौ सउन्दला <शकुन्तला; विभाषीय विकार ।

(उ) –घ्–, अशो (गिर के सिवाय सर्वत्र) हिद–इद<*इध=इह; निय सद<*सध=सह, गोदुम<गोधूम, पा खुदा<क्षुधा, बुन्द<बुध्न–; महा दिहि<घृति–, विभाषीय विकार अथवा ह् के व्यत्यय से ।

(ऊ) ज् (य्, व्)–, पा दिगञ्छ– <जघन्य–; पा दिगुच्छा, अर्धमा दिगिंछा<जुगुप्सा; पा दछलति<जाज्वल्यते; पा दोसिन–, अर्धमा दोसिरण– <ज्योत्स्ना ।

(ए) श्रुति-मूलक (glidic), खारवेल पन्दरस<पञ्चदश ।

(ऐ) ड्, दिण्डिम<डिण्डिम, विषमीकरण ।

(ओ) ल् (या भारत-ईरानी द्), अशो. (शा, मा, का, धौ, जौ) देस<लेशम्, (शा, मा) दिपि<लिपि ।

(औ) –त्– (ऋ के पूर्ववर्ती), खरो घ. मुथ-मदिम्र<मृग–मातृक–, रदि<*रातृ– <रात्री– (मिलाइये पा धाति, अप धाइ <धातृ=धात्री) ।

(२९) –द्द्—;

(अ) –द्म्–, पा छद्द– <छद्म– ।

(आ) –द्र्–, अशो (मस्की) भदके<भद्रक, अशो खुद–, छुद–, पा, प्रा खुद्द– <क्षुद्र–, पा, प्रा उद्द<उद्र–, पा अद्दसा <*अद्रशात्=अद्राक्षीत् ।

(इ) द्–, अशो (रुम्म, सस, बैरा, ब्रह्म, सिद्ध, मस्की) जम्बुदीपसि <जम्बुद्वीप–, पा, प्रा अद्दय–अद्दम<अद्वय– ।

(ई) –र्द्–, प्रा. अद्द– <आर्द्र– ।

(उ) -र्द्-; अशो. (गिर, का., टो.) मादव, पा, प्रा. मद्दव- <मार्दव-।

(ऊ) -ध्र्-, पा. लोद्द- <लोध्र-।

(४०) द्,

(अ) -त्- (स्वरमध्यग) खरो. अभि. प्रतिठविद<प्रतिष्ठापित-, लिखिदे<लिखित-।

(४१) घ्—

(अ) ध्; धम्म- <धर्म-; अप., पा. अधि<अधि।

(आ) -ध्- (प्राग्भारतीय आर्य); अशो. (गिर), खरो. ध, पा., प्रा इध<*इध=इह, खरो ध. ग्रधति<*गृध् (या ग्रथ्-); निय. सध<*सध=सह या सार्धम्, पा. धीता, प्रा धूदा, धूआ <*धिभ्रता, धुभ्रता=दुहिता।

(इ) ध्र्-; धुव<ध्रुवम्।

(ई) ध्व्-, पा, प्रा. धनि<ध्वनि-।

(उ) -थ्- (स्वरमध्यग); खारवेल रध- <रथ-, पध- <पथ-, पधम- <प्रथम-, खरो ध यध<यथा, तध<तथा, भोध <भवथ, पा पवेधति<प्रव्यथते, शौ, माग कधेदि<कथयति।

(ऊ) -थ्- (न् के अनुवर्ती) वी. स गन्ध<ग्रन्थ-।

(ए) द्; निय. धन<दान-, धिवस<दिवस-; खरो. ध. कुसिधु <कुसीदः; विभाषीय विकार।

(ऐ) भारत-ईरानी*ज्द्- (*ध्द्- मे वदलते हुये), निय षोधम <*सश्तम=षष्ठ- (सभवत षोडश के प्रभाव से)।

(ओ) -त्-; खरो. ध. सग्रध<सख्यात-, विशेषध<विशेषत (या *विशेषथा)।

(४२) द्ध्—;

(अ) -द्ध्-, अशो. (गिर., का.) वधि<वृद्धि-, पा., प्रा. सुद्ध- <शुद्ध-।

(आ) -(र्) ध्र्-; अशो. (टो आदि) वधि-कुकुटे<वध्रि+; निय. वधि<वर्ध्री।

(इ) -र्ध् (ध्)—; अशो (गिर) वधयिसइ<वर्धयिष्यन्ति; पा, प्रा. अद्ध- <अर्ध-, उद्ध- (उब्भ भी) <ऊर्ध्व।

(४३) न्—

(अ) न्, -ण्-; अशो गणना; अशो (टो.) कपन<कृपण- ।

(आ) ञ्, अशो (का, धौ, जौ, टो आदि) ञाति (क)- <ज्ञाति (क)-; अशो (का, धौ, जौ) आनपयामि<आज्ञापयामि, अशो (कौशा) विनति- <विज्ञप्ति-, निय अनति<आज्ञप्ति-; अप नज्जइ<ज्ञायते ।

(इ) स्न्-, पा, प्रा नेह<स्नेह- ।

(ई) ल् (विषमीकरण से), पा नगल<लाङ्गल-, नलाट- <ललाट- ।

(४४) -न्न्—

(अ) -द्न्-, -न्न्-, अशो (टो आदि) दिन, दिन, पा, अर्धमा दिन्न-, प्रा दिण्ण- <*दिद्न=दत्त-, खरो ध सनधु <सन्नद्ध ।

(आ) -ञ्च्-, अशो (टो आदि) पनदस, पंनवीसति<पञ्च्+, अशो (शा) सपना (स)<षट्पञ्चाशत् ।

(इ) -न्द्-, खरो ध कन<क्रन्द-, छनु<छन्दस्, मनभणि <मन्दभाणिन्, विनदि<विन्दति, निय चिंनति<छिन्दति, विभाषीय विकार ।

(ई) -ण्य्-, अशो (का) पुंन<पुण्यम् ।

(उ) -न्ध्-, निय बंननए<बन्धनाय, विभाषीय विकार ।

(ऊ) -न्य्-, अशो (का, धौ, जौ) मनति<मन्यते ।

(ए) -न्व्-; पा समन्नेसेति<समन्वेषयति ।

(ऐ) -ज्ञ्-, अर्धमा अपडिन्न- <अप्रतिज्ञ- ।

(ओ) -प्न्- (-प्ण्-), खरो. ध प्रनोवि<प्राप्नोति, विभाषीय विकार ।

(औ) -म्न्-, पा निन्न- <निम्न- ।

(अ) -र्ण्-, अशो (टो आदि) पनससे<पर्णशशः, पा, प्रा. पण्ण <पर्ण- ।

(४५) प्—

(अ) प्, पर- 'दूसरा', पा, प्रा पि<अपि आदि ।

(आ) प्र्-, पाण (या प्राण) <प्राण, पिय (या प्रिय) <प्रिय- आदि ।

(इ) -फ्-; पा कपोणि- <कफोणि- ।

(ई) ब् (या भ्), ब्, अशो (शा) पढं<वाढम्, (रुपिया) पति-पोगं <+भोगम्, (रुम्म) पिपुले (विपुले भी) <विपुल-, निय. पल्पि- <वलि, पोग<भोग-, पा अलापु- <अलाबु-, छाप (क)- <शाव (क)-हुपेज्ज=भवेत्, तिपुर<ताम्बूल, विभाषीय विकार।

(उ) म् तथा व् (श्, स्, त् के अनुवर्ती), अशो (गिर) अत्प <आत्मन्-, अशो (शा, मा.) -स्पि (अधिकरण एक वचन का प्रत्यय) <-स्मिन्, स्पग्र<स्वर्गम्, खरो ध विश्प- <विश्व-, निय. अस्प- <अश्व-।

(४६) -प्-,

(अ) -प्ण्- (-प्न्-); अशो (टो आदि) पापोवा<प्राप्नुयात, (रुम्म, सिद्ध., ब्रह्म.) पापोतवे<*आप्नोतवै=प्राप्तुम्, पा. पप्पोति <पाप्णोति, सोप्प- <स्वप्न-।

(आ) -प्र्-, पा सुप्पिय- <सुप्रिय-।

(इ) -प्य्-, प्रा सिप्प- <सिप्य-।

(ई) -र्प्-, पा, प्रा सप्प- <सर्प-।

(उ) -ल्प्-, अप्प- <अल्प-, अशो (गिर) सवतकपा<+कल्पात्।

(ऊ) -ष्प्-, अशो. (टो आदि) बुपटिवेखे<बुष्प्रत्यवेक्ष्यः, -चतुपदेसु < -चतुष्पद-; पा बप्प- <बाष्प-, निप्पेसित<निष्पेषित-, विभाषीय विकार।

(ए) -ट्प्-; अशो. (सस) सपंना (स) <षट्पञ्चाशत्।

(ऐ) -व्र्-, पा. तिप्प- <तीव्र- (सभवतः खिप्प<क्षिप्र के प्रभाव से)।

(ओ) -म्- तथा-व्- (त् के अनुवर्ती, म भा आ. -त्प्- मे परिवर्तित होते हुये), पा, प्रा अप्प<*अत्प- <आत्मन्-, खरो अभि. -चपरिश, निय. चपरिश<चत्वारिंशत्।

(४७) प् (=फ्)—

(अ) -प्- (स् के अनुवर्ती), निय स्पस<स्पश-, परोस्पर <परस्पर-।

(आ) -व्- (स् के अनुवर्ती), निय. स्पर्न<स्वर्ण-, स्पेठ<स्वस्थ-।

(४८) फ्,

(अ) फ् , फल– <फल– आदि ।

(आ) प्र् (*फ्र्– मे वदलते हुये), अशो (भा.) फासु– विहालत, पा. फासु– <प्राशु ।

(इ) स्प् (या स्फ्)–, खरो घ फुषमु<स्पृशामः; पा फस्स, प्रा फस– <स्पर्श–, प्रा फुसइ<स्पृशति; प्रा. फडिह– <स्फटिक– ।

(ई) प्–; पा , प्रा फरुस– <परुष–, पा फरु– <परुष्, फल– <पल–, फलित<पलितम्; प्रा फणस<पनस–, फाडेइ <पाटयति ।

(उ) –स्म्– (–स्व– मे वदलते हुये), पैशाची (क्रमदीश्वर) अम्फ <अस्म– । देखिये नीचे (४९) (आ) ।

(४९) –प्फ्–,

(अ) –ष्प् (या –स्फ्)–, अशो (धौ) निफतिया<निष्पत्या; पा , प्रा पुप्फ– <पुष्प– आदि ।

(आ) –स्म्– (–ष्म्–) (–स्व् > –स्प्– से होते हुये), अशो (धौ., जौ) अफे<अस्मे, (धौ , जौ , सुपारा) तुफे (रुम्म तुपे) <*तुष्मे = युष्मे; अशो (टो आदि) कफट<*कस्मठ <कमठ– ।

(इ) –प्प्– (सादृश्य अथवा मिश्रण से) पा पिप्फल– <पिप्पल– ।

(५०) ब् (इसके स्थान मे कही-कही व् भी लिखा गया है)—

(अ) बहु 'अनेक' आदि ।

(आ) ब्र्–; बह्मण<ब्राह्मण– आदि ।

(इ) भ्; निय बुम<भूमि–, कुंब– <कुम्भ–, लका अभि बत– <भक्त–; विभाषीय विकार ।

(ई) भ् (ह् के व्यत्यय से), प्रा बहिणि<भगिनी, अप बूह <म भा आ भूअ– <भूत– ।

(उ) –प्–, अशो. (नागा) थुवे<स्तूपः; खरो घ –रुव<रूप–, दिवु <दीपः, वशद<उपशान्त , प्रा अवर– <अपर– ।

(ऊ) –म्प्–, खरो घ सवणो<सम्पन्न., सबशु<सम्पश्यन्, सबयणण <सम्प्रजानानाम्, एक– पणणुअविस<ः+अनुकम्पिष्य, विभाषीय विकार ।

(ए) श्रुति-मूलक (glidic), अशो. तंबपंनि<ताम्रपर्णी, पा., प्रा. अम्ब–<आम्र– ।

(ऐ) द्व्–>द्व्–, अशो (गिर) द्वादस, (शा.) बदय, निय बवश, पा. बारस, प्रा बारह<द्वादश, अप. बेण्णि<*द्वीनि, अर्धमा. बे<द्वे ।

(५१) ब्ब् (इसके स्थान पर ब्व् भी लिखा गया है),

(अ) –ल्व्–, पा. किब्बिस–<किल्बिष्– ।

(आ) –भ्र्–, पा बब्बु–<बभ्रु–, विभाषीय विकार ।

(इ) –र्व्–, सब्ब–<सर्व– ।

(ई) –व्र्–, अशो (गिर, का) तिव–, प्रा तिब्ब–<तीव्र– ।

(उ) –द्व्–, पा उब्बट्टेति, प्रा उब्बट्टेदि–इ<उद्वर्तयति, पा. उब्बिग्ग–<उद्विग्न– ।

(ऊ) –ड्व्–, पा, प्रा छब्बिस (ति)<षड्विंशति, पा छब्बण्ण–<षड्वर्ण– ।

(ए) –द्ब–, पा बुब्बुलक<*बुद्बुलक– ।

(५२) भ् (खरो. ध मे पदादि के अतिरिक्त अन्य स्थानो पर इसे व्ध भी लिखा गया है)—

(अ) भ्, अशो, प्रा भाता, प्रा भावाया भाआ<भ्राता ।

(आ) –ब्–, –व्–, निय भिज<बीज–, भिस–<बिस–, भस्त–<बस्त–; अर्धमा बीहण–<भीषण–, खरो ध मकम्ह<*मगभा<मघवा ।

(इ) –म्ह–, अशो (का) बभण–, (धौ, जौ, टो) बाभन–<ब्राह्मण– ।

(ई) –फ्–, प्रा. सेभालिआ<शेफालिका, सिभा<शिफा– ।

(उ) स्म्–, अप भरइ (हेमचन्द्र)<स्मरति, प्रा विम्भय, विम्हित<विस्मय–, विस्मित–, सम्भरइ<संस्मरति ।

(ऊ) –ंह्–, अप सम्भालइ<संहारयति ।

(ए) –य्– (मिश्रण से), खरो ध शेभ, शेम्ह<श्रेय. (शुभ से प्रभावित) ।

(५३) –ब्भ्–;

(अ) –भ्र्–, पा. सोब्भ–<श्वभ्र–, अब्भ–<अभ्र– ।

(आ) –भ्य्–, पा., प्रा लब्भ–<लभ्य– ।

(इ) –ह्व्–, प्रा विब्भल–<विह्वल–, अर्धमा जिब्भा<जिह्वा ।

(ई) –र्ध्व्–, पा, प्रा उब्भ–(उद्ध– भी)<ऊर्ध्व– ।

(उ) –द्भ्–, उब्भार–<उद्भार– ।

(५४) म्—

(अ) म्, अशो, पा माता, प्रा मादा–माआ आदि ।

(आ) म्र्–, म्ल्–, प्रा. मक्खण–<म्रक्षण–, मेच्छ–<म्लेच्छ– ।

(इ) –व्– (स्वरमध्यग), खरो ध नम<नावम्, भमनइ< भावनायाम्, सभमु<संभव–, एमं एव<एवम् एव, निय एम <एव (म्), गमेस्<गवेषय्– ।

(ई) म् (ल् या श् के अनुवर्ती), निय मघु, पा मस्सु, अर्धमा मंसु <श्मश्रु, पा, प्रा मसान–<श्मशान– ।

(उ) प्, निय सुमिन<*सुपिन–<स्वप्न–, अर्धमा चिमिढ–< चिपिट–, खरो ध प्रमुणि<*प्रापुणेत्<प्राप्नुयात् ।

(ऊ) श्रुति-मूलक (glidic), अशो (धौ, जौ) सुहु मेव, (धौ) हेदिसं मेव, (का) अज मनजा, अर्धमा गोण माई (<गोण– आदि–) ।

(ए) ब्र्–, अर्धमा माहण<ब्राह्मण– ।

(५५) –म्म्–,

(अ) *म्व् (–म्भ्)–, –म्प्–, खरो ध उदुमरेषु<उदुम्बरेषु, गमिरप्रज<गम्भीर–प्रज्ञम्, समजदि<सम्पद्यते, अप अम्म< अम्बा ।

(आ) –ह्म्–; अशो (शा, मा), खरो ध ब्रमन–<ब्राह्मण–; खरो ध ब्रमयियव<ब्रह्मचर्यवान्, रिटिगल अभि (लका) बमण <ब्राह्मण– ।

(इ) –म्य्–, अशो (शा) सम–, पा सम्म–<सम्यक्; पा, प्रा. रम्म–<रम्य– ।

(ई) –ल्म्–; पा कम्मास–<कल्माष–, प्रा गुम्म<गुल्म– ।

(उ) –न्म्–, पा. उम्मूलेति, प्रा उम्मूलेदि–इ<उन्मूलयति ।

(ऊ) –क्म्–; अशो (रुम्म) लुमिनि–गामे<रुक्मिणी–ग्रामे (?) ।

(ए) –र्म्–; अशो (शा, मा के अलावा सर्वत्र) धंम, पा, प्रा. धम्म– <धर्म– ।

(ऐ) –ड्म्–, प्रा. विम्मुह<दिङ्मुख– ।

(ओ) –ण्म्–; प्रा छम्मुह–<षण्मुख– ।

(औ) –प्न्–; खरो. ध अमोदि<आप्नोति ।

(अं) –स्म्–; निय अमहु<अस्मभ्यम्, निय –म्मि, महा. –म्मि<–स्मिन् (अधिकरण एकवचन का प्रत्यय) ।

(५६) म्ह्—

(अ) –स्म्–, अशो (गिर), पा, प्रा –म्हि<–स्मिन्, पा, प्रा अम्ह– <अस्म– ।

(आ) –ष्म्–, प्रा गिम्ह–<ग्रीष्म– ।

(इ) –श्म्–; प्रा कम्हीर–<काश्मीर– ।

(ई) –ह्म्–; बम्हन–<ब्राह्मण, बम्हा<ब्रह्मा ।

(५७) अनुस्वार (ं)—

(अ) –म्, तं<तम् ।

(आ) –न्, अशो (गिर.) कड, अर्धमा. कुव्वं<कुर्वन्, पा पस्सं<पश्यन् ।

(इ) –र्– (श्, ष्, स् के पूर्ववर्ती), अशो. (गिर) सुसुंसा <*सुसुर्सा <सुश्रूषा, प्रा दसन<दर्शन– ।

(५८) य् (प्राय =–ज, पदमध्य मे विभाषा मे=च्, क् भी),

(अ) य्–, यंति<यान्ति, मो<य' ।

(आ) –य् (य)–, अशो, पा खादियति, खादियदि–खाइअइ<खाद्यते ।

(इ) भारत-ईरानी *य्–, खरो. ध यठ<*यष्ट (मिलाइये अवे यश्त–)=इष्ट–, नानाघाट अभि यिठ<*यिष्ट=इष्ट– (संभवत यह *यष्ट तथा इष्ट– के मिश्रण से है) ।

(ई) अग्रागम द्वारा (Prothetic), अशो (धौ, जौ, मा., का., टो. आदि) येव, पा., प्रा. येव<एव, निय- यिम<इमे, यियो <इयम् ।

(उ) –श्– (स्वरमध्यग), अशो. (शा.) बदय (=*बदज)<द्वादश ।

(ऊ) –च्– तथा –ज्– (स्वरमध्यग); खरो. ध. गोयरि<गोचरे, शोयति<शोचते,–यि (जि भी) <चित्, सुयि <शुचि–, वय <वचस्–, वयति–व्रयति, पुयित<पूजित–, परयितु<पराजितः, निय., पा., प्रा. –निय– <निज–; खरो. ध. रय–, महरय–,

प्रा राय।राम्रा<राजा, खरो व श्रयर–, श्रर्वमा श्रायार–<श्राचार–[1]।

(ए) किसी स्वरमध्यग व्यञ्जन का लोप किये जाने पर उसके स्थानापन्न के रूप में य् का सन्निवेश (कभी-कभी यह य् लिखा नहीं गया है), खरो. ध. श्रनुसुश्र[2]<श्रनुत्सुकः, उजुश्रो<ऋजुक, एकपननुश्रविस<एक प्राणानुकम्पिष्य, पजषगधिश्रो<पञ्चसङ्गाधिकः, मुयमतिग्र<मृगमातृकः (?), शोइनो<शोकिन, निय विरय <विरग<वीरक–, संवत्सरए<संवत्सरक–, पा खायित–<खादित–, सायति<स्वादते, श्रर्धमा. गय–<गत–।

(ऐ) –व्–, निय वलदेयु<वलदेव–, पा दाय–<दाव–।

(५६) –य्– (प्राय =ज्ज्–),

(श्र) –द्य्–, श्रशो उयान–, पा उय्यान–<उद्यान–, श्रशो (का) उयाम–<उद्याम–, पा उय्युत्त–<उद्युक्त–।

(श्रा) –र्य्–, श्रशो (गिर) नियातु<निर्यातु, पा निय्याति, श्रशो (भा, मिद्ध) श्रयपुत–, पा, माग श्रय्यपुत्त–<श्रार्यपुत्र–; खरो ध कुय<कुर्यात्।

(इ) –ल्य्–, श्रशो (मा, का, धौ, टो श्रादि) कयान–<कल्याण–, (टो श्रादि) सयके, सेयके<शल्यक–।

(ई) –य–; खरो ध मियदि, पा मिय्यति<मृयते, मा धय्यादि< *दय्यहति<दह्यते।

(उ) –ह्य्–, खरो ध श्ररयु<**श्रारुह्यन्, विभाषीय विकार।

(६०) ह्—(प्राय =ज्झ्–),

ह्य्–, पा मय्ह, तुय्हं, प्रा मज्झं, तुज्झं<मह्यम्*, तुह्यम्।

(६१) र्—

(श्र) र्, राजा श्रादि।

(श्रा) ल्, किर<किल

(इ) –ह–, श्रशो (गिर) (ए) तारिस–<(ए) तादृश–, यारिस–<यादृश–, गो एदारिस–<एतादृश–।

---

1 खरो ध य्<च्, ज् एक सघोष ऊष्म ध्वनि (ज़्, झ़्) है, इसमें स्वरमध्यग अन्तःस्थ य् श्रलिफ द्वारा भी प्रकट किया जाता है।

2 खरो. ध में इसे सामान्यतः श्रलिफ द्वारा प्रकट किया गया है।

(ई) -द्- (स्वरमध्यग, -ड्- मे परिवर्तित होते हुये); खारवेल तेरस, पन्दरस, अर्धमा तेरस, पण्णरस, प्रा तेरह<त्रयोदश, पञ्चदश, पा एकारस, अर्धमा एक्कारस, महा. एआरह <एकादश।

(उ) सादृश्यमूलक, पा, प्रा सत्तरि<सप्तति, खरो. ध. द्रुशिलिम (=दुर्-)<दौ शील्य-।

(ऊ) -र्य्-, -र्व्, ह्र्-, खरो. ध धोरेकशील<; धैर्यैकशील, कुरति <कुर्वति, रस (पा रस्स-)<ह्रस्व-।

(ए) ऋ, अशो. (गा.) म्रुग-, (मा.) म्रिग- <मृग-, खरो. ध. रुक्ष<वृक्ष-, सम्रुतो<सवृत, द्रिढ<दृढम्, व्रिध<वृद्ध-, पा पारुत-<प्रावृत-।

(ऐ) श्रुतिमूलक (glide), पा धिरत्थु<धि (क्) अस्तु।

(६२) ल्—

(अ) ल्, लहु- <लघु- आदि।

(आ) र्, अशो (का.) चतालि<चत्वारि, अशो. (का, धौ., जौ., टो आदि), माग लाजा<राजा, पा, माग तलुण<तरुण-।

(इ) -न्- (विषमीकरण द्वारा), पा पिलन्धति<*अपिनन्धति, मिलिन्द- <'मनान्देर'।

(ई) -ड्- (स्वरमध्यग), प्रा. खेल- <क्रीड-।

(उ) -द्-, अप. पलित्त- <प्रदीप्तम्।

(६३) -ल्ल्-,

(अ) -ल्ल्-; मल्ल-, प्रा मल्लिआ<मल्लिका।

(आ) -ल्य्-, अशो (शा, मा, गिर.) कलाण- <कल्याण-, पा., प्रा कल्ल- <कल्य-, सल्ल- <शल्य-।

(इ) -ल्व्-, पा, प्रा बिल्ल- (बेल्ल-) <बिल्व-, प्रा गल्लक्क <गल्वर्क-, प्रा ओल्ल- <ओल्व-।

(ई) -ल्ल्-, पा सल्लपेति<सलपयति।

(उ) -र्ल्-; पा, प्रा दुल्लभ-दुल्लह<दुर्लभ-।

(ऊ) -र्य्- (*-ल्य्- मे बदलते हुये), पा, प्रा पल्लत्थ<पर्यस्त-, पल्लङ्क- <पर्यङ्क-।

(ए) -द्र्- (*द्ल्- मे परिवर्तित होते हुये); पा. चुल्ल<क्षुद्र-; अप. भल्ल- <भद्र-।

(६४) ल्य् (इसके स्थान मे ल्प् लिखा मिलता है),

(अ) इ के पूर्ववर्ती ल् के तालव्यीकरण का परिणाम, निय पल्पि <बलि–, लिपहिद<लिखित, व्यलिप्<व्याली, विभाषीय विकार।

(६५) व् (प्राय =ब्)—

(अ) व्, अशो वास–, खरो ध वष–, पा., प्रा वस्स<वर्ष– आदि।

(आ) व्य्–, अशो (शा) वञ्जनतो<व्यञ्जनतः, वसन<व्यसनम्, अशो (शा) वपट, (मा) वपुट–वपुत<व्यापृतः, पा वाळ <व्याल–।

(इ) व्र्–, पा वत– <व्रत–।

(ई) अग्रागम का परिणाम (Prothetic), अशो. (शा) निय वुत– <उप्त–, अशो (शा, मा) वुचति, (गिर) वुचते, खरो ध, निय वुचति, पा वुच्चति<उच्यते, अशो (गिर, धौ) निय. वुत–, पा वुत्त– <उक्त–, निय वुलसि<उल्लासः।

(उ) –व् (–भ्), खरो ध अवलव<अवलाबव, अभिवुयु<+भूय–, मथुरा प्रस्तर अभि गजवरेण<*गञ्जभरेण, निय अश्पवर <अश्वभार–, परिवनए<परिभाण्डक–, प्रा सवर<शबर–।

(ऊ) –प्– (स्वरमध्यग), अशो (शा) पावातवे<*प्रापातवै, खरो ध, प्रा रुव– <रूप–, खरो ध पवनि<पापानि, निय. वंति <उपान्ते, निय अवि, प्रा (अ) वि<अपि, निय दर्शवेति <*दर्शापयति, पा, प्रा अवङ्ग– <अपाङ्ग–।

(ए) स्वरमध्यग व्यञ्जन का लोप होने से उसके स्थानापन्न के रूप मे –व्–, अशो (टो आदि) चावुदस चावुदसाये<*चातुर्दश–, खारवेल चवुत्थे<चतुर्थे, पा सुव– <शुक–।

(ऐ) –य्–, अशो (टो आदि) अनुगहिनेवु<अनुगृहणीयु, अस्वसेवु <*आश्वसेयु, (रधिया आदि) उपदहेवु<+· दधेयु =दध्युः, पा आवुध– <आयुध–, कासाव– <काषाय–।

(ओ) प्–, खरो ध वतित<पतित–, निय वलग<पालक–, सभवत अव के साथ मिश्रण से।

(६६) –त्व्– (=–त्व्–),

(अ) –व्र्–, अशो (गिर) तीव–, (का) तिव– <तीव्र–।

(आ) –र्व्–, अशो सव–, खरो ध. सव– (सर्व– भी), प्रा सव्व– <सर्व– ।

(इ) –व्य्–, अशो (शा, मा.) दिवनि<दिव्यानि, (शा) कटव– <कर्तव्य,–, प्रा कव्व– <काव्य– ।

(६७) व्—

(अ) –व्– (व्यञ्जन के परवर्ती); निय तनुवग (मिलाइये तक्षशिला रौप्य-पत्र अभि तणुवए) <*तन्वक–, हेतुवएन<*हेत्वक– ।

(आ) स्वरमध्यग व्यञ्जन का स्थानापन्न, निय अगवुन<आगन्तुक– ।

(६८) श्[1]—

(अ) श्, अशो (शा, मा, का) खरो ध शत– 'सौ', (शा.) शको <शक्यः, निय. शिघवेर<शृङ्गवेर, माग. केश– ।

(आ) ष्, अशो (का) पाशड<पाषण्ड, माग केशेशु<केशेषु– ।

(इ) स्, अशो. (का.) शालवटि<सार+, अशो. (का), माग शे <स, खरो. ध बुधशशने<+शासने ।

(ई) –थ्–, –घ्– (स्वरमध्यग), खरो ध गशन<गाथानाम्, वनशेश <*वनथ्य–(?), खरो ध, निय शिशिल<शिथिल–; खरो अभि, निय. इश<इध = इह ।

(उ) च्, निय प्रशुर<प्रचुर–, वशिदेमि<वाचितोऽस्मि । वार्दाक पात्र-अभि –च् (=श) <च ।

(६९) श्श्[2]—

(अ) श्–, अशो (मा) अम–निशिते<+निश्रित· ।

(आ) –स्र्–, अशो (का) पाण-षत-षहश्र<+सहस्र– ।

(इ) –श्न्–, अशो (मा) अशातस, (गिर) अशमनस<अश्नतः, *अश्नमानस्य ।

(ई) –श्य्–, –ष्य्–, –स्य्–, अशो (शा, मा) लिखपिशमि, (का) लेखा पेशामि< –ष्यामि, अशो (का) तशा<तस्य, खरो. ध पशति<पश्यति, निय उदिश<उद्दिश्य, करिशति <करिष्यति ।

(उ) –श्व्–, खरो ध अवलश, भद्रशु<+अश्व– ।

---

१ कहीं-कहीं स् के स्थान मे भी श् लिखा गया है ।

२ कहीं-कहीं स्स् के स्थान पर भी श्श् लिखा गया है ।

(७०) ष् (प्राय = श्)—

(अ) ष्, खरो ष दोष<दोषम् आदि ।

(आ) श्, अशो (का) पुषुषा<शुश्रूषा, षुनेयु<*श्रुणेयुः, खरो ष. षेहो<श्रेयः, षधु<*श्रद्धः, निय षयति<श्रयति ।

(इ) स्, अशो (का) षव- <सर्व-, अशो (का.) षे, (शा, मा.) ष<स, अशो (का) वषति<वसति, खरो. ष. षकरु <संकुर्वन् ।

(ई) ईरानी श्, निय. शद<ईरानी शाद- ।

(७१) -ष्- (प्राय -श्-),

(अ) -ट्ष्-, अशो (शा, मा, का) षषु<षट्सु ।

(आ) -त्श्-, अशो (का) उषटेन<*उत् श्रितेन ।

(इ) -त्स्-, खरो ष बहोषुकेन<बहूत्सुकेन ।

(ई) -र्ष्-, अशो (शा., मा, का) खरो ष वष- <वर्ष- ।

(उ) -ष्प्-, खरो ष पुष- <पुष्प- ।

(ऊ) -स्य्-, अशो (का) तष (तशा, तसा भी) <तस्य ।

(७२) स्—

(अ) स्, सव्व-, सव्व- सर्व- ।

(आ) श् अशो (धौ, जौ) पलिकिलेस<परिक्लेश-, सुक- <शुक ।

(इ) ष्, अशो (गम) सपंना (स) <षट्पञ्चाशत् ।

(ई) श्र्-, श्ल्-, श्व्-, अशो (का, धौ, जौ) समन-, (गिर) समण- <श्रमण, अशो (का) ऐठ-, (गिर) सेस्ट<श्रेष्ठ-, पा सेम्ह- <श्लेष्मन्, अशो (शा, मा) स्पसुम (न्) <स्वसृ-, अशो (टो आदि) पा. सेत<श्वेत-, मथुरा सिंह अभि. विष्पतिश्र<विश्व-श्रियाः ।

(उ) स्य्-, स्नू-, पा, प्रा. सन्दन- <स्यन्दन-, नागा सुंन्हानं <स्नुषा- ।

(ऊ) भारत-ईरानी -श्-, अशो (शा) अस्तनष- <*अश्त- = अष्ट+, अशो (गिर) सेस्ट<*-श्रइश्त, तिस्टंतो <* स्तिश्तन्तस् ।

(ए) -ध्- (= -ध्-), अशो. (शा) समुमते<साधु+; खरो ष.

मधुर<मधुरम्, निय मधु<मधु, पा –महे (वर्तमान आत्मनेपद बहुवचन प्रत्यय) <भारत-ईरानी*मधे = महे ।

(ऐ) –त्– (या –थ्–), खरो ध ग्रसेदि<*गथयति<घातयति, सगस<संकाथ<संख्यात– ।

(७३) –स्स्–;

(अ) –श्य्–, –ष्य्–, –स्य्–, अशो (सुपारा, सिद्ध, कौशा) वुस–<वुष्य–, (गिर) पसति<पश्यति, (धौ., जौ) मुनिस–<मनुष्य, अशो (शा, मा, गिर, धौ, जौ) तस, (का) तसा <तस्य, पा, प्रा अवस्सं<अवश्यम् ।

(आ) –श्र्–, –स्र्–; अशो (का, धौ) धंमनिसिते<+निश्रित–, अशो (मा, गिर) परिसवे, (का, धौ) पलिसवे<परिस्रव–, अशो (का, धौ, जौ) –सहसानि <सहस्राणि, पा, प्रा मिस्स– <मिश्र ।

(इ) –र्श्–, –र्ष्–; अशो. (गिर., का., धौ, जौ.) दसन<दर्शन–; अशो (का, धौ, जौ) वस, (गिर) वास<वर्ष– ।

(ई) –श्व्–, –ष्व्–, पा, प्रा अस्स– <अश्व–, पा पलिस्सजति <परिष्वजति, प्रा पिउस्सिआ<पितृष्वसृका ।

(उ) –त्स्–, –त्श्– (त्थ्–), अशो (टो आदि) उसाह– <उत्साह, खारवेल ऊसव<उत्सव–, अशो (रूप) उसपापिते<*उत्श्रपापित, अशो (धौ, मा, शा) चिकिस, (जौ) चिकिशा, (का) चिकिसका<चिकित्सा–, पा उस्सग्न– <उत्सन्न– ।

(ऊ) –स्–, अशो (टो आदि) वुसपटिपादये<दु स+ ।

(ए) –श्म्–, –स्म्–, प्रा रस्सि– <रश्मि–, शौ –स्सिं< –स्मिन् ।

(ऐ) –स्प्–, खारवेल बहसतिमितं<बृहस्पति–मित्रम् ।

(७४) ज़्, झ् (इनके स्थान मे य्, ज्, च्, झ्, श्, स् भी लिखा मिलता है)—

(अ) –श्–, –स्– (स्वरमध्यग), अशो (शा) बदय– <द्वादश, खरो ध. प्रशजदि<प्रशसति, निय. अवगज<अवकाश–, दझ, दस<दास–, विभाषीय विकार ।

(आ) –च्–, –ज्– (स्वरमध्यग), निय यजितग<याचितक–, वजिदेसि <वाचितोऽसि, भिज<बीज–, खरो ध वयइ<वाचया = वाचा, वयदि<व्रजति ।

(इ) -घ्- (स्वरमध्यग), निय. असिमत्र<अविमात्रम्, निय मगु <मधु, विभाषीय विकार।

(७५) ह्—

(अ) ह्, हंस-, बहु- 'अनेक'।

(आ) भ्-, अशो, पा होति, प्रा होदि-होइ<भवति, पदादि मे केवल भू- धातु में ही यह विकार मिलता है।

(इ) -घ्- (स्वरमध्यग), लहु- <लघु-, खरो ओहु<ओघ-।

(ई) -घ्- (स्वरमध्यग), अशो (टो आदि) विदहामि<विदधामि, उपदहेवु<*उपदधेयु, पा दहाति<दधाति, निय गोहोमि <गोधूम-, पा, प्रा रुहिर- <रुधिर-।

(उ) -भ्- (स्वरमध्यग), अशो (गिर) अहुसु<अभूवन्, अशो (जौ) लहेयु, (धौ) लहेवु<*लभेयुः, खरो ध लहति<लभते, उहु<उभौ, निय, लहति<लभन्ते, निय पहुड, अप पाहुड- <प्राभृत-, पा, प्रा पहु<प्रभु-।

(ऊ) -ख्- (स्वरमध्यग), खरो ध सुह<सुख-[1], मुहेण<मुखेन।

(ए) -थ्- (स्वरमध्यग), निय, प्रा तह<तथा, प्रा कहा<कथा।

(ऐ) -फ्- (स्वरमध्यग), प्रा सेहालिआ<शेफालिका, सहर- <शफर-, अप पत्तहल- <पत्रफल-।

(ओ) -क्ष्- (स्वरमध्यग) (*ख्-> -> ह्- होते हुये), खरो ध अवेह<अपेक्षा, अणवेहिणो<अनपेक्षिणः अर्धमा पेहा<प्रेक्षा या अपेक्षा, अप दाहिण<*दक्खिण- (मिलाइये अवे दशिन) = दक्षिण-।

(औ) -क्- (स्वरमध्यग, *ख् मे परिवर्तित होते हुये), खरो ध धमिहो<धार्मिक-[2], निय समहो (समओ भी) <*समक- (?) = समन्, अप सुणह<शुनक-, प्रा फलिह<स्फटिक-।

(अं) -त्- (स्वरमध्यग अथवा अनुनासिक के अनुवर्ती, -थ् मे परिवर्तित होते हुये या सादृश्यमूलक), निय महुलि<मातुलि, अर्धमा विहत्थि- <*विहस्त+विहस्ति-; महा, अप भरह

---

१ खरो ध दुह (<दुख) पर सुह<सुख- का प्रभाव है।

२ सभवत प्रत्यय -क<*-ख, मिलाइये प्रा फा. अमाखन् और अवे अहमाकम्।

<भरत, अप वसहो<*वसन्थि<वसन्ति (मिलाइये खरो व पज<पञ्च।

(अ) -ग्- (स्वरमध्यग, *ग् मे बदलते हुये), खरो ध भोह <भोग-।

(क) -श्- (स्वरमध्यग), लका अभि असनहल<अशनशाला।

(ख) -श् (य्), -स् (य्)- (स्वरमध्यग, *ज् (य्), *झ् (य्)- मे बदलते हुये), अशो (टो आदि) अर्धमा वाहति<वास्यन्ति, महा दाहृ<दास्यामि, अशो (टो) होहति<*भोष्यन्ति, पा होहिति, महा होहिइ<*भोझिअति<भोष्यति=भविष्यति, अर्धमा बीहण-[1] <भीषण-।

(ग) -ह्व्-, प्रा जीहा<जिह्वा।

(घ) अग्रागम से (Piothetic) या वर्ण-व्यत्यय से (Metatheuc), अशो (गिर को छोड सर्वत्र) हिद<इध=इह, अशो (का, धौ, जौ, सुपा, कौशा) हेत<*एत्र=अत्र, अशो (शा) हेदिश, (का) हेदिष-, (धौ, जौ, सुपारा) हेदिस-<*एद्दश=, ईदृश, निय हृछति<*अच्छति=अस्ति हुवेहि (अवेहि भी) <*अथेभि, हेड़ि<एड-, अशो (शा) ह्रहति<अर्हति।

(ङ) श्रुतिमूलक (glidic), निय सहस्रहनि<*सहस्रअनि<सहस्राणि, प्रिहितोस्मि<*प्रिइतोस्मि<प्रीतोऽस्मि।

§ ५० व्यञ्जन-गुच्छो के सरलीकरण के छुटपुट उदाहरण म भा आ भाषा के प्रारम्भिक काल से ही मिलते हैं। ये व्यञ्जन-गुच्छ अधिकाश मे ष् अथवा स् से युक्त हैं। यह विकास नीचे दिखाया जा रहा है।

(अ) -क्ष्- (भारत-ईरानी *-क्श्-) >*-ग्झ्- > -घ्-, अशो (टो आदि, धौ) चघति-चघति<चक्ष्- (मिलाइये अवे चशन्-), अशो (टो आदि) लघंति<रक्ष्- (मिलाइये अवे रशह्-); खरो ध सघर <संस्कार-, निय भिछु<भिक्षु- (मिलाइये पा अनीघ=अनीक-)।

(आ) -क्ष्- (भारत-ईरानी *-ग्श्->*झ्-> -ह्-, खरो ध अवेह, अवेहिणो (ऊपर देखिये, परन्तु इनकी व्युत्पत्ति इह- <भारत-ईरानी *इझ्- से भी हो सकती है), अप दाहिण<दक्षिण (मिलाइये अवे दशिन-)।

---

१ यहाँ भ् का अल्पप्राणीकरण अनुलक्षणीय है।

(इ) भारत-यूरोपीय *–स्के–, –स्खे– > भारत-ईरानी *श्श– (>प्रा भा आ –च्छ–) >*झ्– (स्वरमध्यग) > –ह– (अशोकी)। अशो (टो) होहंति<भू–, (टो आदि) दाहंति<दा–, (धौ) एहथ<इ– जैसे रूप न प्रा भा आ के –स्य– भविष्यत् के रूप हैं और न –स– लृङ् के रूप हैं, अपितु –च्छ– (भारत-यूरोपीय –*स्के–, अथवा –स्खे–) विकरण युक्त वर्तमान के रूप हैं, यह निष्कर्ष अशो. (का, धौ, जौ, टो आदि) कच्छति रूप से स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि कछंति की व्युत्पत्ति प्रा भा आ *कृच्छन्ति (वर्तमान का रूप) से ही दी जा सकती है। –च्छ– विकरण-युक्त वर्तमान के रूपो मे भविष्यत् का अर्थ निय हच्छ्ति मे सुरक्षित है। निय के –श्– भविष्यत् के रूप (जैसे अनिशति, वेशति) सभवत मूलरूप से –च्छ– वर्तमान के ही रूप है।

(ई) –स्य–, –ष्य–>*–क्षिय–> –हि–, पा होहिति, महा होहिइ <*भोक्षिति<*भोक्ष्यति = भविष्यति।

(उ) निय वेड, शौ वेढदि<भारत-ईरानी*वृज्ज या *वृव्ध, और पा वेठति मे इस धातु का अनूष्मीकृत (devocalised) रूप मिलता है।

(ऊ) प्रा दीह– की व्युत्पत्ति तालव्यीकृत (Palatalised) धातु *द्रझ्– से मानना अधिक ठीक होगा (जैसा कि अवे द्राजिश्त = प्रा भा आ द्राघिष्ठ– से विदित होता है), पा दीघ– <दीह– + दिग्घ।

अभिलेखो मे मिलने वाले रूप –अढ– <अष्ट (खरोष्ठी) तथा हथि <हस्तिन् (नागार्जुनी) निश्चित् ही अशुद्ध रूप हैं, मिलाइये एक ही अभिलेख मे प्राप्त दो रूप वासिठीपुत तथा वासिढीपुत।

(ए) म भा आ के दूसरे स्तर मे नासिक्य का अनुवर्ती अघोष व्यञ्जन सघोष हो गया (उत्तर-पश्चिमी वर्ग मे तो कही-कही इसका महाप्राणीकरण भी हो गया)। ऐसे उदाहरणो मे नासिक्य-ध्वनि बहुत निर्बल थी और सभवत अपने पूर्ववर्ती स्वर का सानुनासिकत्व (nasalisation) प्रकट करती थी, खरो ध –अद<अन्त, पज<पञ्च–, अंबिस<*कम्पिष्य, सगप<संकल्प, निय उपशंधिदवो<उपशंकितव्य–, गंधवो<गन्तव्य–, साहित्यिक प्राकृतो मे –न्त्– के सघोषीकरण के छुटपुट उदाहरण मिलते हैं, जैसे –हन्द<हन्त आदि।

(ऐ) –त्र्–> –त् (*–तृ– मे बदलते हुये) के उदाहरण हैं—खरो ध रदि, प्रा राई<*रातृ–, मिलाइये पा धाति<धात्री। अर्धमा गाय– की व्युत्पत्ति *गात– से होगी न कि गात्र से, जैसे कि बँगला दा की व्युत्पत्ति दाति– (पतञ्जलि) से है न कि दात्र– से।

(ओ) सरलीकरण के अन्य उदाहरण ये है (याकोबी द्वारा सम्पादित भविसयत्तकहा से), गाव<गर्व–, गाविय<गर्वित–, सहास<सहस्र–, तावेला <तद्वेला, किलीण<किलिण्ण<क्लिन्न–, भवीस<भविष्य–, सरसई <सरस्वती।

§ ५१ किन्ही प्रा भा आ के व्यञ्जन-सयोगो के म भा आ मे दो-दो तीन-तीन प्रकार के विकार मिलते हैं। सुविधा के लिये नीचे अधिक महत्त्व के व्यञ्जन-सयोगो के विकारो को एकत्र किया गया है।

(१) क्ष्, (i) –क्ख्– (*–क्श्– के माध्यम से) § ४९ (४) (इ), (ii) –च्छ्– (–श्च्– मे बदलते हुये, –श्च्– परिवर्तन मागधी मे मिलता है) § ४९ (१३) (ड), (iii) –ह्– (*भ्– के माध्यम से) § ४९ (७५) (ओ), (iv) –झ् (*–झ्– मे बदलते हुये) § ४९ (१६) (आ)।

(२) –क्र्–, (i) –क्क– (२) (ड), (ii) –ंक्–, जैसे—प्रा वंक– <वक्र–।

(३) –त्म्–, 'त्व्–, (i) –प्प्– § ४९ (४६) (ओ), (ii) –त्त्– § ४९ (३५) (इ) (औ)।

(४) –र्थ्–, (i) –त्थ्– (*–थ्– के माध्यम से) § ४९ (२७) (ई), (ii) –त्त्– § ४९ (३५) (ई)।

(५) –त्स् (य्)–, (i) –च्छ्– § ४९ (१३) (ई), (ii) –श्च्–, जैसे—मागधी मश्चली<मत्स्य+, (iii) –स्स्– § ४९ (७३) (उ)।

(६) (र्) ध्व्–, (i) –द्ध्– § ४९ (४२) (इ), (ii) –ब्भ्– (*–द्भ्– के माध्यम से) § ४९ (५३) (ई)।

(७) –प्त्–, (i) –त्त्– § ४९ (३५) (आ), (ii) –श्च्– मागधी आणश्च<आज्ञप्त–।

(८) –र्क्–, (i) –क्ख्– § ४९ (४) (उ), (ii) –क्क्– § ४९ (२) (औ)।

(९) –त्य्–, (i) –ल्ल्– § ४९ (६३) (आ), (ii) –ट्य्– (ज्ज्–) § ४९ (५९) (ड)।

(१०) –स्व्–, –ष्व्–; (i) –स्स्– § ४९ (७३) (ई), (ii) –प्फ्– (*–स्प्– और *–स्फ्– के माध्यम से) § ४९ (४९) आ)।

(११) –ष्क् (र्)–, (i) –क्ख्– (*–ख्– के माध्यम : ४९ (४) (ऊ) (ए), (ii) –क्क्– § ४९ (२) (क)।

(१२) -ष्प्-, (i) -प्फ्- § ४९ (४९) (अ), (ii) -स्स्- § ४९ (७३) (ई)।

(१३) -(ष्) ष्व्-, (i) -स्स्- § ४९ (७३) (ई), (ii) -च्छ्- § ४९ (१३) (ए)।

(१४) -स्म्- (-ष्म्-), (i) -म्ह्-> -म्म्- § ४९ (५५) (अ), (५६) (अ) (आ) (इ), (ii) -प्फ्- § ४९ (४९) (आ), (iii) -स्-, जैसे—अर्धमा अंसि<अस्मिन्।

§ ५२ समीकरण (Assimilation) के बाद तालव्य या मूर्धन्य व्यञ्जन-सयोग के पहले व्यञ्जन *अपने वर्गीय नासिक्य-व्यञ्जन मे बदल जाने के उदाहरण भी मिलते हैं (विशेषत अपभ्रंश मे), जैसे—प्रा सुण्ठ- <सुट्ठ- <*शुष्ट- = शुष्क-, अप अंठि<अट्ठि<अस्थि, अप सञ्च- <सच्च- <सत्य-।

चार | संज्ञा-शब्दों की रूप-प्रक्रिया

१. विभक्ति-प्रत्यय

§ ५३ प्रा भा आ भाषा मे सज्ञा-पदो मे विविध रूपो का जो बाहुल्य था, वह म भा आ भाषा मे बहुत कम हो गया। म. भा. आ मे पदान्त व्यञ्जनो के लोप से व्यञ्जनान्त-प्रातिपदिक-रूप-प्रणाली प्राय पूर्णतया समाप्त हो गयी, परन्तु व्यञ्जनान्त प्रातिपदिको को स्वरान्त बनाने की प्रवृत्ति म भा आ भाषा-काल से बहुत पहले वैदिक काल तक मे स्पष्टतया लक्षित होती है, जैसे—वाचा–<वाक्–, निशा–<निश्–, नक्त–<नक्त्–, आस्य–<आसन्–, नावा– (ऋ. १ ६७ ८) <नौ–, जग– (कौषीतकी उपनिषद्) <जगत्–।

प्रा. भा. आ. के विविध स्वरान्त प्रातिपदिको मे से भी केवल पाँच ही बच रहे, –अ, –आ, –इ, –ई तथा –उ। इनमे भी अकारान्त प्रातिपदिको की रूप-प्रक्रिया का प्रभाव बढता गया था और स्वय अकारान्त-प्रातिपदिक-रूप-प्रणाली भी सर्वनाम-रूप-प्रणाली से प्रभावित थी। इकारान्त तथा उकारान्त प्रातिपदिको मे अकारान्त या आकारान्त प्रातिपदिक मे बदल जाने की प्रवृत्ति भी दिखायी देती है। बौद्ध सस्कृत मे बाहु– के स्थान पर कही-कही बाहा– मिलता है, जो सभवत शाखा का प्रभाव प्रकट करता है।

प्रा भा आ भाषा से गृहीत प्रातिपदिको के म भा. आ. मे परिवर्तित रूपो का सामान्यत वही लिङ्ग है, जो उसके मूल प्रा. भा आ रूप का था, जैसे—अशो परिसा–<परिषत्–, अशो, पा. दिसा–<दिश्–, पटिपदा <प्रतिपद्–, खरो ध. त्वय, अर्धमा तया–<त्वच्–, पा वाचा–, मा. वाआ–<वाच्–, पा आपा–<अप्–, आपदा<आपद्– आदि।

§ ५४ म. भा. आ मे तीनो लिङ्गो मे रूप मिलते हैं, परन्तु पुलिङ्ग तथा नपुसकलिङ्ग अधिक समीप आ गये हैं तथा नपुसकलिङ्ग एक वचन मे पुलिङ्ग एक वचन के प्रत्यय तथा पुलिङ्ग एक वचन मे नपुसकलिङ्ग एकवचन

के प्रत्यय का योग अक्सर मिलता है। नपुसकलिङ्ग तथा पुलिङ्ग के रूपो मे केवल प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति मे ही भेद होता है। स्त्रीलिङ्ग के रूपो का पुलिङ्ग से भेद केवल तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी के एक वचन मे ही रह गया है और इन पाँचो विभक्तियो के लिये भी स्त्रीलिङ्ग मे केवल तीन (कही-कही दो या केवल एक ही) रूप मिलते हैं[1]। म. भा आ. भाषा के प्रथम पर्व के बाद स्त्री-प्रत्यय के रूप मे –आ का प्रयोग (भाववाचक सज्ञा पदो के सिवाय अन्यत्र) बहुत घट गया और यह केवल प्रा भा आ. से गृहीत प्रातिपदिको मे ही अवशिष्ट रह गया। म भा आ. मे विशेषण-पदो मे –ई तथा सज्ञा-पदो मे –(इ) नी प्रत्यय के योग से स्त्रीलिङ्गी रूप बनाने की प्रवृत्ति बढी। इस प्रकार— अशो दिन्ना, परन्तु अप दिण्णी<*दिन्न–(=दत्त–) 'दिया हुआ', अशो (का) पल-लोकिक्या परन्तु जोगीमारा देवदशिक्यी (अशोकी प्राकृत मे –आ प्रत्यय के प्रति विशेष आग्रह दिखायी देता है, जैसे— धौ, जौ, सुपारा हेदिसा=ईदृशी, टो आदि सुदिवसा, पनडसा, चावुदसा, परन्तु चातुम्मासी–सुकली), निय अनिति=आनीता, दिति=दत्ता, अप (विक्रमोर्वशीय) कन्ती=कान्ता, दिट्ठी=दृष्टा, परपुट्ठी=परपुष्टा, तणुसरीरी=+शरीरा इत्यादि। –(इ) नी प्रत्यय के उदाहरण—अशो गभिनी<गर्भिणी, अशो भिखुनी<भिक्षुणी, लखनऊ अजायबघर मे हुविष्क की मूर्ति का अभिलेख शिशिनिय=शिष्याया.।

§ ५५ द्विवचन, जो प्रा भा आ मे यदि पूर्णतः कृत्रिम रूप नही था तो आर्ष-प्रयोग जैसा तो था ही, म भा आ मे पूर्णत लुप्त हो गया है और इसका स्थान बहुवचन के रूप ने ले लिया है। इसके एकमात्र अवशेष 'द्वि' शब्द के रूप (अशो द्वो, प्रा वो<द्वौ, अशो दुवे, पा द्वे, दुवे, प्रा बे, दुवे <द्वे) तथा सार्वनामिक विशेषण 'उभ' के रूप (खरो ध. उहु, पा उभो <उभौ) है। अपभ्रश मे सख्यावाचक शब्दो के भी बहुवचन मे रूप होते हैं (जैसा कि विभाषीय ग्रीक मे भी), बेण्णि<*द्वेनि। निय पदेभ्य <पादाभ्याम् और पतेयो, पादेयो, पदयो (=पादयो.) जैसे रूप सस्कृत का प्रभाव प्रकट करते हैं[2]।

§ ५६ प्रा भा आ भाषा की (सम्बोधन को छोड बाकी) सात

---

१ जैसे—परिसाए (तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी ए व), परिशाय (तृतीया-सप्तमी ए व), परिसाय (सप्तमी ए. व)।

२ बरो (Burrow) §६६

विभक्तियों में से चतुर्थी का प्रयोग समाप्त होता चला और म भा आ के प्रथम पर्व के समाप्त होते-होते इसका स्थान षष्ठी विभक्ति ने पूर्णत अपना लिया है। तृतीया विभक्ति का प्राय. पञ्चमी और सप्तमी के स्थान मे प्रयोग होने लगा है। अवहट्ठ मे तो तृतीया, पञ्चमी तथा सप्तमी के लिए एक ही रूप का प्रयोग होने लगा है।

§ ५७ म भा आ विभक्ति-प्रत्ययो का उद्गम निम्नलिखित स्रोतो से हुआ है—(अ) प्रा भा आ भाषा से परम्परया गृहीत अथवा प्रा भा आ विभक्ति-प्रत्ययो का सादृश्यमूलक अस्थान प्रयोग, (आ) भारत-ईरानी की परम्परा से प्राप्त, परन्तु प्रा भा आ के माध्यम से नही, (इ) भारत-यूरोपीय से परम्परया प्राप्त, परन्तु भारत-ईरानी के माध्यम से नही (ई) क्रियाविशेषण प्रत्ययो का विभक्ति-प्रत्ययो के रूप मे प्रयोग, (उ) व्यञ्जनान्त प्रातिपदको के रूपो के अशुद्ध विश्लेषण द्वारा नये विभक्ति-प्रत्ययो की कल्पना। प्रा भा आ से परम्परा प्राप्त निम्नलिखित विभक्ति-प्रत्यय हैं—प्र, ए व –स् अथवा कुछ नही; प्र व व –अस्, –स्, अथवा –इ (न लि), प्र (न लि), द्वि, ए व. –म्, द्वि, व व –न् तथा –स्, तृ, ए व –एन, –एनं (जैसा ऋग्वसंहिता मे घनेनम् एकम्), –ना तथा –आ, तृ, व व –भिस्, च, ए व –आय, –ऐ और –अये (?), प, ए व –अत् और –अस्, ष, ए व –स्य और –(अ) स्, प, व व –नाम्, स, ए व –इ, स, व., व –सु। प्रा भा आ मे एक प्रकार के प्रातिपदिको मे लगने वाले जो विभक्ति-प्रत्यय म भा आ मे अन्य प्रकार के भी प्रातिपदिको मे प्रयुक्त हुये हैं वे ये हैं— सकेतवाचक (demonstrative) सर्वनाम से प, ए व. स्मात्, ष, व व –साम् तथा स, ए, व. –स्मिन्, पुरुषवाचक सर्वनाम से च प, ए व –च व –भ्यम्। भारत-ईरानी से प्राप्त विभक्ति-प्रत्यय है— द्वि, व व. –ए (सभवत प्राचीन ईरानी मे इस प्रत्यय का सकेतवाचक सर्वनाम के प्र, व व से द्वि, व व मे विस्तार किया गया जैसे— प्रा फा दइय्, अवइय्' अवे अवे, इमे, अएते), और स, ए व –या (?)। भारत-यूरोपीय के विभक्ति-प्रत्ययो का म भा. आ मे एक अवशेष जो प्रा भा आ मे नही मिलता प, ए व प्रत्यय –स (भारत-यूरोपीय *सो, मिलाइये ग्रीक तेओ, गौथिक थिस्, प्रा फा अउरमज्दाहा) है। म भा आ मे एक भारत-यूरोपीय अवशेष जो प्रा भा आ अथवा प्राचीन ईरानी मे नही मिलता च, – प, –स, व व *–भिस् (मिलाइये ग्रीक –फिन्) है। क्रियाविशेषण-प्रत्ययो से उत्पन्न म. भा आ. के विभक्ति-प्रत्यय ये हैं— तृ., ए. व. (स्त्रीलिङ्ग)

—या, <प, ए व —त और प. —स, ए व —हि (भारत-यूरोपीय *—धि; मिलाइये ग्रीक इथि, इलिओथि, प्रा फा.·यदिय्, म भा आ यहि, प्रा. भा. आ. उत्तराहि) तथा प. —ह (म्) (भारत-यूरोपीय *—थे (म्) या *—घे (म्); मिलाइये ग्रीक आइकोथेन्) । *भिम् भी मूलत क्रिया-विशेषण प्रत्यय ही था। प्रा भा आ के —अन् (—इन्) तथा —अस् मे अन्त होने वाले प्रातिपदिको से जिन विभक्ति-प्रत्ययो का म भा आ मे अन्य प्रातिपदिको मे प्रयोग किया गया वे हैं—प्र, व व —नस्, प —प, ए व. —नस् और —सस्, तृ, ए व. —सा तथा स, ए व. —सि। वर्ण-विकारो की समानता लाने वाली प्रवृत्ति के कारण म भा आ मे अनेक विभक्ति-रूप समान हो गये और एक ही रूप का अनेक विभक्तियो मे प्रयोग होने लगा। इससे उत्पन्न अस्पष्टता को दूर करने के लिये कुछ परसर्गों अथवा सहायक शब्दो का प्रयोग प्रचलित हुआ।

§ ५८. प्र, ए व; म भा. आ. मे विभक्ति-प्रत्यय रहित प्र, ए. व. के रूप प्रा. भा आ के अनुरूप हैं—पजा<प्रजा, अक्खि<अक्षि, वहु, राजा आदि। —अ के अलावा अन्य स्वरो के वाद —स् का लोप हो जाता है—वड्ढि <वृद्धिः, भिक्खु<भिक्षुः आदि। —अ के वाद —स् मे तीन प्रकार के विकार होते है— (१) इसका लोप हो जाता है, जैसे— पा जन<जनः, चाग<त्यागः आदि, (२) वाह्य (external) सधि के नियमो के अनुसार यह —अ से मिलकर —ओ हो जाता है, जैसे— (अवे. मे भी) जनो<जन, पुत्तो<पुत्रः आदि, और (३) आन्तरिक (internal) सन्धि मे यह अ के साथ मिलकर ए हो जाता है (जैसे—स एधि<*अस्धि मे, एक उदाहरण मे वाह्य-सन्धि मे भी —ए हुआ है —सूरे दुहिता); जने, पुत्ते आदि। —म् प्रा. भा आ. मे अकारान्त न. लि, प्रत्यय है, जो म. भा. आ. मे अन्य प्रातिपदिको तक भी विस्तृत कर दिया गया है, वानं, बहुं आदि।

द्वि., ए व, —म् (पु लि और स्त्रीलिङ्ग मे तथा न लि., प्र एव द्वि मे) का म भा आ की किन्ही विभाषाओ मे लोप हो गया, वोष (या वोषं), पुजा (या पुज) आदि। अवहट्ठ मे यह —उ हो गया और किन्ही पुलिङ्ग शब्दो के प्र, ए. व के —ओ का —उ हो जाने से भी इस परिवर्तन को वल मिला, इस प्रकार फलम्>फलु, जनम्>जणु।

तृ, ए व; (१) —एन (पुलिङ्ग-नपु लिङ्ग अकारान्त शब्दो से वाद मे अन्य प्रातिपदिको मे भी विस्तारित), पियेन<प्रियेण, निय पल्पियेन<वलि—

आदि, (२) –एनं प्रत्यय साहित्यिक प्राकृतो तथा अपभ्रंश मे मिलता है, जैसे— प्रा कालेणं; अप कालें<कालेनम् आदि, (३) –ना (इकारान्त-उकारान्त प्रातिपदिको मे, परम्परया प्राप्त), अग्गिना, भतुन = भ्रात्रा, धितुन = दुहित्रा, पितिना = पित्रा आदि, (४) –आ (स्त्रीलिङ्ग –इ, –ई, –उ, –ऊ मे अन्त होने वाले प्रातिपदिको मे) —वड्ढिया<वृद्ध्या, जच्चा<जात्या आदि। अकारान्त प्रातिपदिको मे पा पादा और सहत्था जैसे रूप या तो तृतीया के (जैसे वैदिक पादा, स्वहस्ता) है अथवा पञ्चमी के है (पादात्, स्वहस्तात्); (५) –या (क्रियावि, स्त्रीलिङ्ग, मिलाइये वै मिथुया, साधुया आदि, यह प्रत्यय वैदिक क्रियाजात-सज्ञा (gerundial) प्रत्यय –या जैसा है, जैसे—ऋक्सहिता आच्या आदि मे)—पञ्ञ = प्रज्ञया, आदि, (६) –य (यह प्रत्यय प्रा भा. आ क्रियाजात-सज्ञा (gerundial) प्रत्यय –य जैसा है, जैसे—आदाय आदि) –पूजाय, अग्गाय = अग्रया आदि, यह प्रत्यय पञ्चमी-षष्ठी और सप्तमी के प्रत्यय –याम् मे मिल गया; (७)–यै (यह मूलत चतुर्थी का प्रत्यय था, जो परवर्ती अवेस्ता तथा वैदिक गद्य मे पञ्चमी-षष्ठी तक विस्तृत कर दिया गया और म भा आ मे तृतीया-सप्तमी मे भी प्रयुक्त हुआ)—पूजाए <पूजा–, वड्ढिये<वृद्धि– आदि, (८) –सा (मनसा, तेजसा आदि के सादृश्य पर)—पा बलसा, धम्मसा आदि।

च, ए. व; (१) –आय (अकारान्त मे; केवल प्रारम्भिक म. भा. आ. मे ही) —अत्थाय<अर्थ–, कम्माय<कर्म– आदि, (२) —यै (स्त्रीलिङ्ग मे, अकारान्त मे भी इसका विस्तार; मिलाइये वै. असमापिक (Infinitive) एतवै) –अत्थाये<*अर्थायै = अर्थाय आदि, म भा. आ. मे सामान्यत· षष्ठी का ही चतुर्थी के लिये भी प्रयोग होता है।

पं., ए. व, (१) –आत् (अकारान्त मे, मुख्यत प्रारम्भिक म. भा. आ. मे) धम्मा = धर्मात् आदि[1], (२) –तः (क्रिया वि.) मुखते = मुखत, वञ्जनतो<व्यञ्जनतः आदि। साहित्यिक प्राकृतो मे –त प्रत्यय परम्परागत पञ्चमी के रूप मे जोडा जाता है, जैसे—पुत्तादो–पुत्ताओ<पुत्रात्+त. आदि, (३)–स्मात् (तस्मात् आदि के वजन पर)—पा धम्मम्हा, अग्गिम्हा<अग्नि–

---

१. परन्तु ये रूप तृतीया के भी हो सकते हैं, जिनका पचमी मे प्रयोग किया गया।

आदि; (४) –अ. (मनसः आदि के सादृश्य पर)—अत रुक्खहु[1], रुक्खहे <*वृक्षतः आदि, (५) *–धि (सप्तमी से लेकर पञ्चमी में प्रयुक्त), –शौ. च. *–चवधि = चापात् ।

प, ए व., (१) –स्स (सभी पुंलिङ्ग-नपुंसकलिङ्ग प्रातिपदिकों में प्रयुक्त तथा स्त्रीलिङ्गी प्रातिपदिकों के अकारान्त बना लिये जाने पर उनके साथ भी प्रयुक्त)—जनस्स, अग्गिस्स आदि, (२) *–स– आगत अभि. कुलगोत्रस, निय. देवपुत्रस, लंका अभि. तिशह 'तिष्य का' महरजह, मा. कामाह, आवन्ती जुअइह<युवति–, (३) –अन् (मिलाइये ऋक्संहिता अव्य.[2]), जिसमें म् का लोप हो गया या अधिक संभव है कि यह तृतीया-सप्तमी का विस्तार है—पा कञ्ञाय<कन्या–, प्रा मालाय–मालाअ, (४) –यं (देखिये च) पुत्तये, देखिये, (५) –सः (देखिये पं) रुक्खहे ।

स, ए. व; (१) –इ –धम्मे आदि; (२) –स्मिन् (अस्मिन् आदि के सादृश्य पर) के तीन विभाषीय रूप मिलते हैं—(अ) –म्हि (पश्चिमी विभाषा में, >म्मि जिसे कहीं-कहीं –म्सि भी लिखा गया है), (आ) –स्पि (उत्तर-पश्चिमी विभाषा में), (इ) –स्सि या –स्सिं –अम्सि (पूर्वी विभाषा में) —धम्मम्हि, धम्मम्सि, उयनस्पि<उद्यान–, कालम्सि<काल– आदि, प. –स्सिं संस्कृत का प्रभाव प्रदर्शित करता है तथा प्रा –म्मि के –म्हि का सरलीकरण हुआ है, (३) लंका अभि. तथा अप –हि कुछ तो किसी वि प्रत्यय *–धि से और कुछ *–सि (मनसि आदि के सादृश्य विश्लेषण के साथ) से व्युत्पन्न हुआ है—लंका अभि विहरहि<*विहारधि या *विहारसि, घेरहि 'घेरे में'; अप. घरहि<*घरधि या *घरसि, संभवतः अशो जिंजतस्पि में भी यही प्रत्यय है ।

सम्बो, ए व; (१) प्रातिपदिक मात्र —पुत्त, अय्य<आर्य–, कन्ती = कान्ता, पियअम<प्रियतम–, (२) प्रातिपदिक के अन्तिम स्वर को दीर्घ कर –पुत्ता; (३) प्र, ए. व. का ही रूप –पुत्तो महिहर<महीधरः, (४) संस्कृत-रूप –कन्ने<कन्ये ।

प्र, ब. व; (१) –अ. –पुत्ता, नदीओ<*नदियः (मिलाइये धियः) = नद्य, (२) –ए (देखिये द्वि.)—निय. प्रयमिठे<प्रयमिष्ट–, (३)

---

१ –हु को सामान्यतः षष्ठ्यन्त प्रत्यय –हुं का विस्तार समझा जाता है ।

२. निल्स डौलिङ्ग, सिनाटवे, वाकरनागेल III§97a ।

—न. (वलिन: आदि के वजन पर)—प्रा. अग्गिणो; (४) —असः (वैदिक प्रत्यय)—पा. धम्मासे<*धर्मासः; (५) —आनि (अकारान्त नपुंसकलिङ्ग में, भी विस्तार)—अशो. लुखानि=वृक्षाः।

प्र. —द्वि, व. व., नपुंसकलिङ्ग; (१) —नि (प्रातिपदिक के अन्तिम स्वर को दीर्घ कर यह प्रत्यय जोड़ा जाता है) —मूलानि, कम्मानि, बहूनि; (२) वैदिक के समान केवल प्रातिपदिक का अन्तिम स्वर दीर्घ कर दिया जाता है—पाणा, अक्खी, महू; (३) —ईम् (सार्वनामिक अव्यय जिसका ऋक्संहिता में द्वितीया में सभी वचनों तथा लिङ्गों में प्रयोग किया गया है; प्र. —द्वि. नपुंसकलिङ्ग में विभक्ति-प्रत्यय के रूप में इसका प्रयोग केवल साहित्यिक प्राकृतों तथा अपभ्रंश में हुआ है; ऋक्संहिता के —'या ईं भवन्ति आजय.' 'जो भी युद्ध हों' (७.३२. १७.) जैसे प्रयोगों से इसके विभक्ति-प्रत्यय वाले प्रयोग की प्रेरणा मिली होगी)—प्रा. याइं, फलाइं; अप. फलई<फला+ईम्, दहीइं, दहिइ <दधी+ईम्।

द्वि, ब. व.; (१) —आन् (केवल अकारान्त में; मुख्यतः प्रारम्भिक म. भा. आ में तथा साहित्यिक प्राकृतों में संस्कृत के प्रभाव के रूप में) —खरो. ध. रुछ, प्रा. रुक्खा<वृक्षान् आदि; (२) —ए (देखिये प्र.; केवल द्वि. में प्रारम्भिक म. भा. आ. में, बाद में प्र. में भी प्रयुक्त) —अत्थे<अर्थान्, अमच्चे<अमात्य-, आदि; (३) —नि (नपुंसकलिङ्ग से अन्य लिङ्गों में विस्तारित, केवल प्रारम्भिक म. भा. आ. में प्रयुक्त —घरस्तानि, गहथानि=गृहस्थान्, हथीनि=हस्तिनः; (४) —अः (प्र. से द्वि. में विस्तारित; केवल स्त्रीलिङ्ग में) —पकतियो =प्रकृतीः, दुगतिओ=दुर्गती।

तृ. —पं. —स, व. व.; (१) —भिः —धम्मेहि<धर्मेभि. (वैदिक), ञतिहि <ज्ञातिभिः, (२) *—भिम् (प्रारम्भिक म भा. आ. में नहीं मिलता)—प्रा. पुत्तेहिं, अप. पत्तही<*पुत्रेभिन्, अग्गीहिं—अग्गिही।

पं., ब. व. (केवल साहित्यिक प्राकृतों और अपभ्रंश में); (१) *—भिम् +तस् —पुत्तेहितो, (२) *—सुन् (स.)+तस् (मिलाइये ऋ. नं. पत्सुत.) —पुत्तेसुंतो; (३) —ह (भारत-यूरोपीय *—घे जैसा अव (ऋ. सं.), इह (म. भा. आ इव) कुह, विश्वह, समह में; या. प्रा. भा. आ —थ जैसा अथ में)—अप. रुक्खह<*वृक्षव या *वृक्षथ; यह विभक्ति प्रत्यय षष्ठी के —प> —ह के सदृश भी है; (४) *—धम् (मिलाइये ग्रीक —थेन्) जैसा कि इत्थम् और कथम् में—अप. रुक्खह; (५) —सु (म्) (देखिये स.) अप. रुक्खहु, रुक्खहूं।

ष., ब. व.; (१) –नाम्—पानानं<प्राण–, नदीणं–नईणं<नदी–; (२) *–सिम् (सर्वनाम से लिया हुआ प्रत्यय; मिलाइये ग्रीक द्विवचन-प्रत्यय –इन् तथा गौथिक षष्ठी ब. व. प्रत्यय –एम्) —सगोतेसि<सगोत्र–; (३) –साम् (सर्वनाम से गृहीत)—अप. रुक्खहाँ<वृक्षनाम्. (४) –सु (सु); देखिये पं. ।

स., ब. व.; –सु– (१) –सु– मग्गेसु<मार्ग–, चातुम्मासिसु<चातुर्मासी, (२) *–सुम् (केवल साहित्यिक प्राकृतों में)—वणेसुं; मिलाइये ग्रीक –सिन् ।

२. अकारान्त

§ ५६ अकारान्त-रूप-प्रक्रिया म. भा. आ. भाषा में सर्व-प्रमुख हो गयी और इसने समस्त पुंलिङ्ग रूप-प्रक्रिया को प्रभावित किया तथा अन्ततः म. भा. आ. भाषा काल के अन्तिम चरण में तो यही एकमात्र आदर्श रूप-प्रक्रिया रह गयी । म. भा. आ. में प्रारम्भ से ही पुंलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग के प्रातिपदिकों तथा रूपों में गड़बड़ होती रही है, जैसे—अशो (गि., शौ., धौ.) जीवं=जीव; अशो. (मा., का.) फले=फलम्, अशो. (टो.) निगोहानि =न्यग्रोधा., अशो. (गि., का., शा., मा.) पवजितानि अशो. (का., धौ.) हथीनि=हस्तिन ।

प्र., ए. व.; (१) कोई प्रत्यय नहीं (<–स्, पुंलिङ्ग): —प्राच्य-भारतीय-आर्य-भाषा में यह स्थिति विभाषीय रूप से प्रकट हुयी (मिलाइये प्रा. फ़ा. पार्स<*पार्सस्), परन्तु यह स्थिति किसी एक क्षेत्र तक सीमित न थी, अभिलेखीय म. भा. आ. में तथा अप. में यह प्रवृत्ति अधिक मिलती है, जैसे—अशो. (शा.) जन, अश-घोष, अशो. (शा., मा., क.) सयम<संयम, (स्व.) यावतक<यावत्क, बेसनगर अभि. दम, चाग<त्याग, अप्रमाद; खरो. ध. सिह<सिंह, रयरथ<राजरथ. : निय. महरयपुत्र. मनुश, अर्धमा. बुद्धपुत्त, माग. णल<नर; अप हंस, परहुअ<परभृत; शौ. द्र. सुत<सुत; (२) –ओ> –उ (<–स्, पुंलिङ्ग), वाह्य-सन्धि को निर्धारित रूप बना लेने से (जैसे अवे. अस्पो<–*अश्वस्), यह विभक्ति-प्रत्यय पूर्वी विभाषाओं को छोड़ अन्य सभी विभाषाओं में मुख्य रूप से प्रयुक्त हुआ है, जैसे—अशो. (शा., गिर.) पा, प्र जनो; खरो. ध. धमधरो<धर्मधर:, मुर्खो<मूर्ख:, अप्रमदु <अप्रमाद:; नानाघाट अश्वो<अश्व:; निय. पुत्रो: अप. जणु; (३) –ए> –इ (<–स्, पुंलिङ्ग); यह आन्तरिक सन्धि का रूप है (<भारत-ईरानी *–अज्) जो मुख्यतः पूर्वी विभाषाओं में तथा छुटपुट रूप से उत्तर-पश्चिमी विभाषा में

मिलता है, जैसे—अशो (धौ, जौ, का, टो., मा, शा.), पा., प्रा. जने; अशो. (शा.) भगि अंजि<भाग अन्य, स्रेस्तमति<श्रेष्ठमत, लका अभि. पुते, पुति<पुत्र, महरजि<महाराज, निय. किटए<कृतकः, परिक्रेये <परिक्रेयः।

पुंलिङ्ग (प्रथमा) का रूप कही-कही नपुसकलिङ्ग (प्र., द्वि.) मे भी प्रयुक्त हुआ है, जैसे—अशो. (शा., मा, धौ, जौ, का, टो, गिर) दाने=दानम्, अशो (शा.) कटवो<कर्तव्यम् शको=शक्यम्, अनुदिवसो <अनुदिवसम्, खरो. ध सुहु=सुखम्, मधुरु=मधुरम्, अप घणु=घनम्, फलु=फलम्।

द्वि., ए. व (नपुसकलिङ्ग प्र., ए व. भी); (१) –ं (<–म्) अशो., पा. जनं, प्रा. जण, अप. जन>जना, अशो, पा दानं, प्रा दाणं, अप सलिल, सलिअआ<*सलिलकम्=सलीलम्, (२) प्रत्यय-रहित रूप (<–म्); पदान्त नासिक्य का शिथिल उच्चारण और परिणामत लोप (जैसा कि ष, ब, व. –नाम् मे भी) अभिलेखीय म भा आ और अप की एक विशेषता है, जैसे— अशो. (शा) अठ, (मा) अथ, अशो (मा) दोषा, (का) दोसा, अशो. (का) +पषड<+पाषण्डम्, अशो. (शा, मा, टो) बहुक, अशो (शा, मा, टो) बहुक; अशो (शा, मा) दन<दानम्, खरो. ध दोष, विशेष, एतदिश<एतादृशम्, भषित<भाषितम्, आन्ध्र अभि वाटक<वाटकम्, निय. मंनुश<मानुष्यम्, दित=दत्तम्, अप जाणिअ=ज्ञातम्, सच्छन्द<स्वच्छन्दम्।

प्र. का भी कही-कही द्वि. के स्थान पर प्रयोग मिलता है, जैसे—अशो. (शा., मा., का, टो. आदि) जीवे=जीवम्, (गिर, धौ, जौ जीवं); खरो. ध. दिवु=दीपम्, कमु=कर्म; निय. तोषु=दोषम्; अप हत्थु=हस्तम्, गुरु-वुत्तउ=गुरु-उक्तम्, परन्तु –उ वाले रूप वस्तुत द्वि के भी रूप हो सकते है, जैसा कि गान्धारी और अप. (आवन्ती) मे –अम्> –उम्।

तृ., ए. व, (१) –एन— अशो पियेन-प्रियेन, (का.) पियेना, (टो.) भयेना; खरो ध सञमेन<सयमेन, मनेन=मनसा, अधंमा. बलेन, अप. पुत्तेन आदि, (२) *–इना (सार्वनामिक) या म भा आ –इना <–एन– खरो ध रतिदिवसिन<+*दिवासिन या+दिवसेन, सहस्रिन <*सहस्रिण या सहस्रेण, निय. परिह्रषिन=परिहासेन, अप. पुत्तिण; (३) *–एनम् (जैसा ऋ. स. घनेनम् एकम् मे), केवल साहित्यिक प्राकृतो मे, जैसे—प्रा. कालेण; (४) विभाषीय –एं (<*–एन (म्) ?)—

च., ए. व., (१) विभापीय – आय—अशो. (गिर.) अयाय<अर्थाय, कंमाय <कर्मणे, अपरिगोधाय; खरो. ध. सुहइ<सुखाय (या* सुखाये), निय. अर्थय; महा. वनाअ<वनाय (निश्चित ही सस्कृत के प्रभाव से), अर्धमा सागपागाए <शाकपाकाय, (२)–आयै (आकारान्त स्त्रीलिङ्ग से विस्तारित)—अशो. (गिर. के अतिरिक्त सर्वत्र) अठाये, अथ्राये–अयाये<*अर्थायै=अर्थाय, खरो. ध. सुहइ<*सुखायै या सुखाय); अर्धमा. अत्याये, अट्ठाये ।

प., ए. व.; (१) विभापीय – आत्—अशो. (गिर.) संवटकपा<संवृत्तकल्पात्, अथा<अर्थात् (या अर्थाय के स्थान मे गल्ती से), खरो. ध. दुह<दुःखात्, अप्रमद<अप्रमादात्, सधर्म<स्वधर्मात्, आन्ध्र. अभि. कांचीपुरा<काञ्चीपुरात्; पा. धम्मा.[1] प्रा. गुणा [1]; (२) –तः (क्रियावि. प्रत्यय) –अशो. (शा., गिर.) सुखतो, (का., धौ., जौ.) सुखते, (मा.) सुखति; महास्थान अभि. पुडनगलते 'पुडनगर से'; खरो. ध. सुहतु<सुखतः, पत्तनतो, निय. नगरदे< नगरतः, (३) परम्परागत तृ. या पं. के रूप मे–तः जोड कर (मिलाइये अथर्ववेद मत्तः. वैदिक आरात्तात्, उत्तरात्तात्, पश्चातात्), केवल साहित्यिक प्राकृतो मे—पुत्तादो–पुत्ताओ<पुत्रा (त्) तः, सीसाउ<*शीर्षा (त्) त.; (४) विभापीय – स्मात् (अस्मात् आदि के वजन पर)–धम्मस्मा, धम्मम्हा, (६) विभाषीय – भ्यस् (च., प., व. व. प्रत्यय) या–सु (स., व. व.)–अप. खणहुं<*क्षणभ्यस्, खणेसु=क्षणात्, अप. वच्छहे, वच्छहु, 'वृक्ष से', (६) *–धि (क्रियावि. प्रत्यय) खरो. ध चवधि<*चापधि=चापात् ।

ष., ए. व., (१)–स्य—अशो. जनस, पा. जनस्स, प्रा. जणस्स<जनस्य; बेसनगर अभि. पुतस<पुत्रस्य, लका अभि. सगस<संघस्य, खरो. ध सञतस< संयतस्य, सुयिकमस=सुचिकर्मणः, आन्ध्र अभि. सासणस्स, (२) विभापीय– *म–आन्ध्र अभि. कुलगोत्तस<*गोत्रस (गोत्रस्य के वदले), लका अभि. महरजह<महाराजस्य, नदह<नन्दस्य, निय भंनुशस, वेवपुत्रस, मा. कामाह <*कानस, चालुदत्ताह[2] =चारुदत्तस्य, अप. कव्वह=काव्यस्य, (३) विभापीय—स्सु<–स्य+–अः (दुहरा प्रत्यय)—अप. जणस्सु; (५) विभापीय – हो,–हे<*–सः (मनसः के वजन पर)—अप साअरहो=सागरस्य ।

स., ए. व., (१)–ए—अशो (शा., गिर.) विजिते, (शा., मा.) ध्रमे< धर्मे, खरो. ध. मसि<मासे, सुञकरे<शून्यागारे, गोयरि<गोचरे, निय.

---

१. यह–आ प्रत्यय-युक्त तृतीया का रूप भी हो सकता है ।

२. दीर्घ-स्वर ताह=तस्य के वजन पर है ।

मसे<मासे, हस्ते; पा. धम्मे, प्रा. भारहे<*भारथे; अप. काणणए<*काननके, मूलि<मूले, विणट्ठइ<*विनष्टके; (३) विभाषीय–स्मिन् (अस्मिन् आदि के सादृश्य पर)—इस प्रत्यय के निम्नलिखित विभाषीय रूप मिलते हैं; (अ)–म्हि (मध्यदेशीय विभाषा), (आ)–स्पि (उत्तर-पश्चिमी विभाषा), (इ)–(स्) सि (पूर्वी विभाषा), (ई)–म्मि (परवर्ती मध्यदेशीय विभाषा) या–म्नि (जैसा कि–स्मि अथवा–म्हि के स्थान मे वर्दक पात्र-अभि. मे लिखा गया है, जैसे–थुवम्नि<*स्तूपस्मिन्, खवदम्नि 'खवदम मे' और (उ)–°सि (परवर्ती पूर्वी विभाषा), इन सबके उदाहरण—अशो. (गिर.) विनितम्हि, (शा., मा.) विनितस्पि, (का., धौ., जौ.) विनीतसि,<*विनीतस्मिन् (या* विनीतसि), पा. धम्मम्हि, धम्मस्मिं (संस्कृत प्रभाव); निय. थनमि=स्थाने; निय. फलमि, प्रा. कालमि=काले; अर्धमा. लोगंसि=लोके; (३)—तः (प. के समान)—प्रा. अटविते (संस्कृत प्रभाव), (४) विभाषीय–*भिन् (मिलाइये ग्रीक–फिन्)—माग. पवहणाहिं=प्रवहणे; अप. चित्तहि=चित्ते; (५)—*धि या *सि लका अभि. विहरहि=विहारे, चेतहि=चैत्ये।

सम्बो., ए. व., (१) प्रत्यय-रहित रूप—पा. अय्य, अय्या<आर्य, प्रा. पुत्त, पुत्ता<पुत्र आदि, (२) प्र., ए. व. का ही रूप–पा. भेसिके 'हे भेसिक !', अर्धमा. पुत्तो=पुत्र !; माग. चेडे=चेट !; अप महिहरु=महीधर !

प्र., ब. व., (१)–अः–अशो. पुता, पा., प्रा. पुत्ता, अप. पुत्ता<पुत्रा, खरो. ध. (सवि) सघर<(सर्वे) सस्काराः, (चउरि) पद<(चत्वारि) पादाः, अनत्म=अनात्मानः; नानाघाट असा<अश्वाः, निय. पोटग<पोटकाः, (२) विभाषीय–असस् (भारत-ईरानी दुहरा व. व. प्रत्यय)—पा. धम्मासे<धर्मासः (सभवतः कृत्रिम प्राचीन रूप), (३)–*ए (सर्वनाम से, विभाषीय रूप से द्वि., व. व. से गृहीत)—निय. अवशिष्टे=अवशिष्टाः या अवशिष्टान्; (४)–आनि (नपुंसकलिङ्ग; किन्ही विभाषाओ मे पुंलिङ्ग मे भी प्रयुक्त[1])—अशो., पा. फलानि, खरो. ध. दिस्टनि; अर्धमा. फलाणि; निय. कर्यनि; अशो. (का., धौ., जौ.) लुखानि<*वृक्षाणि=वृक्षाः; अप. हरिणाइ=हरिणाः; (५) विभाषीय–आ (नपुंसकलिङ्ग प्र., द्वि. वैदिक)—पा. रूपा(रूपानि भी), अर्धमा. ठाणा=स्थानानि;

---

१. आनि प्रत्यय वाले रूपो का पुंलिङ्ग प्र., द्वि. व. व. मे प्रयोग संभवतः इन विभक्तियो में पुंलिङ्ग शब्द के रूप के ध्वनि-परिवर्तनो के कारण एक रूप हो जाने पर (जैसे—नराः>नरा, नरान्>नरा) सदिग्धता दूर करने के लिये हुआ होगा।

शौ. जाणवत्ता=यानपात्राणि; माग. अक्खरा=अक्षराणि, (६) विभाषीय–*आइम् (अभिलेखीय म. भा. आ. मे नही मिलता)—प्रा. वणाइ, अप. वणइ=वनानि।

द्वि, ब. व., (१) विभाषीय–आन् (विरल, उपलब्ध उदाहरण प्रायः संस्कृत से प्रभावित हैं)—खरो. ध. रछ, प्रा. रुक्खा, अप. रुक्खा<वृक्षान्; खरो. ध. मणुप<मनुष्यान्, (२) –*ए (सर्वनाम से गृहीत, मिलाइये प्रा. फा –वइय्=सं. तान्) यह विभक्ति-प्रत्यय प्रारम्भ मे विभाषीय था, परन्तु बाद मे इसका समग्र म. भा. आ. मे प्रचार हो गया—अशो. (गिर.) अथे, पा., प्रा. अत्थे=अर्थान्, आन्ध्र अभि. अमच्चे=अमात्यान्, (३)–आनि (नपुंसकलिङ्ग, परन्तु पुंलिङ्ग–स्त्री–लिङ्ग मे भी विस्तारित[1])—अशो. (शा., मा., गिर.) रूपानि, (का., धौ., जौ.) लूपानि, अशो. गहृथानि–ग्रहृथानि, (गिर.) घरस्तानि=गृहस्थान्, अशो. (टो. आदि) पुलिसानि=पुरुषान्, खरो. ध पवनि कमनि=पापानि कर्माणि।

तृ., ब. व. (१)–एभि. (वैदिक)–अशो. शतेहि–सतेहि<शतेभि., खरो. ध. अभित्रेहि, धमत्रकेहि<धर्म-चक्रेभि', आन्ध्र अभि. परिहारेहि, निय. पुत्रधिदरेहि<पुत्रदुहितृभिः. पा. धम्मेहि, प्रा. सब्भावेहि<सद्भावेभि., अप. पुत्तेहि आदि, (२) विभाषीय–*भिम् (मिलाइये ग्रीक–फिन्) प्रा. पुत्तेहि. अप. पुत्तेहि–पुत्तहि।

च., ब. व., (१)–एभिः (तृ. के समान)—अशो. (नागा., मा.) आजीविकेहि 'आजीविको के लिये', अशो. (धौ, जौ.) वभनसमनेहि अशो. (मा) महमत्रेहि, (का., धौ., जौ.) महामातेहि (परन्तु गिर. मे–स. तथा शा. मे षष्ठी है)।

प., ब ब., (१)–एभिः (तृ. के समान)–पा. कम्मेहि पापकेहि 'पापकर्मो से'; निय. तगस्तेहि[2], (२) विभाषीय*–भिम्+त –अर्धमा. तिलेहितो=तिलेभ्य'; (३) विभाषीय तथा प्राचीन वैयाकरणो के अनुसार*–सुम्+तः, (४) विभाषीय–सु,–*सुम् (स., ब. व.) या–*भस्,–*भम्[3]—अप. रुक्खहु (–हुँ), रुक्खहु (–हुँ)<रुच्छहे, रुच्छह (–हं)<वृक्ष–।

---

१. अशोकी मे तो यही एकमात्र द्वि. ब. व. प्रत्यय है।

२. देखिये Burrow § 63।

३. –भ–<–ह–परिवर्तन से प्रकट होता है कि मूलतः ये स्वतंत्र अव्यय थे, जैसा कि ग्रीक फि (न्)। परन्तु नीचे देखिये प., ब. व।

ष., ब. व., (१)-आनाम्-अशो. प्राणान, पानान<प्राणानाम्, वर्दक पात्र-अभि. रोहण<रोहाणाम्; खरो. ध. अरिअन<आर्याणाम्, फलन पकन< फलानां पक्वानाम्; निय. मनुशन<मनुष्याणाम्; पा. धम्मानं; प्रा. पुत्ताण-पुत्ताण, अप. पुत्ताणा, खवणाणा<क्षपणकानाम्; (२) विभाषीय-*एसिम् (मिलाइये ग्रीक द्विवचन प्रत्यय-इन्<*सिम्)-वासिम ताम्र-पत्र अभि.-सगोत्तेसि<*सगोत्रेषिम्; (३) विभाषीय-साम् (सर्वनाम से गृहीत)-अप. रुक्खहं<*वृक्षासाम् ।

स., ब. व.; (१)-एसु-अशो. (का., धौ., जौ., टो.) मगेसु, (मा.) मगेषु, पा., प्रा. मग्गेसु<मार्गेषु; अशो. (गिर.) पन्थेसु<पथिषु; खरो. ध. इद्रिएषु< इन्द्रिय-, सुतेषु; निय. नगरेषु, गोठेषु<गोष्ठ-, (२) विभाषीय*-सुम् (मलाइये ग्रीक-सिन्) प्रा. वणेसुं; (३) विभाषीय*-एभिम् (तृ., प. से विस्तारित) अर्धमा. भूएहिं<भूत-, अप. मग्गहिं<मार्गे ।

सम्बो., ब. व.; (१) प्र., ब. व. का ही रूप—बौ. स. भिक्षूः, पा. भिक्खवे; (२)-हो (सम्बोधन का अव्यय)—बौ. सं. अमात्याहो, अप. जणहो ।

३. आकारान्त

§ ६०. आकारान्त स्त्रीलिङ्ग रूप-प्रक्रिया मे निम्नलिखित विशेषताये मिलती हैं—(१) अधिकांश विभाषाओ मे तृ., च., (पं.) ष.-और स., ए. व. मे एक ही रूप है तथा अन्य विभाषाओ मे केवल दो रूप मिलते है, (२) म. भा. आ. के प्रारम्भ से ही अधिकाश विभाषाओ मे स, ए. व. के विभक्ति-प्रत्यय मे नासिक्य का लोप हो गया है, (३) प्र., ब. व.का विभाषीय रूप भारत-यूरोपीय सन्ध्यक्षरीय (dipthongal) रूप प्रक्रिया के अनुसार है, और (४) पुलिङ्ग अकारान्त-रूप-प्रक्रिया के सादृश्य पर रूप ढालने की प्रवृत्ति बढती चली गयी है, जो निय प्राकृत तथा परवर्ती अपभ्रंश मे पूर्णतः प्रतिष्ठित हो गयी ।

प्र., ए. व.; प्रत्यय-रहित केवल प्रतिपादिक रूप—अशो , पा., प्रा. पजा< प्रजा (अवैदिक) अथवा प्रजाः (वैदिक), खरो. ध. दिश<दिशा, प्रञ<प्रज्ञा; नानाघाट दखिना, नागार्जुन भरिया, भया; निय. भर्य<भार्या; अप. पिअअम< प्रियतम ।

द्वि., ए. व.; -म् (प्रायः लुप्त)—अशो. (गिर.) पूजां, (मा.) पुज (पुजं), (का., शा.) पुजा; अशो. (गिर.) विहार-यात्रां; (का , धौ.) -यातं<-यात्राम्, खरो. ध. सेन<सेनाम्, कल<कलाम्, जर<जराम्, निय भर्य<भार्याम्, पा., प्रा. पूजं; अप. पूजं, पूजा, पूज ।

तृ., ए. व.;(१)—या (मिलाइये उत्तर-वैदिक आशिर्दाया, विश्वपूस्नि)[1] —अशो. (टो., कौशाम्बी) पूजाया, सुसुसाया=शुश्रूषया, अशो (टो.) अगाया <अग्र्या- आदि, (२) -*य (मिलाइये -य प्रत्ययान्त प्रा भा. आ. आदाय आदि)—अशो. (गिर, रधिया, मथिया, रूपनाथ), पा. पूजाय, महा. पूजाअ <*पूजाय, अशो (टो. रधिया, मथिया, कौशाम्बी) अगाय<अग्र्या-; अशो. (गिर, टो. आदि) विविधाय, नागार्जुन (एहुवुल) भय्याय, सुन्हाय, खरो. ध. प्रजय, प्रजए<प्रज्ञा-, वयइ<वाचा (इन रूपो को -या,-यै,-याम् प्रत्ययान्त तृ.-च.-स के भी रूप समझा जा सकता है); (३) -यै (च., ए. व. प्रत्यय तृ मे विस्तारित) अशो. (का., शा.) पूजाये, पूजये, प्रा. पूजाए, पूजाइ<पूजायै; अशो. (का., शा., मा) विविधाये, विविधये, अशो (धौ., जौ., का.) माधुलियाये, (शा., मा.) मधुरियये<* माधुर्यायै, अशो. (गिर.) मधुरताये, निय. अजेषंनए<अध्येषणायै या -षणाय, (४) -आ (मिलाइये वैदिक मनीषा) —पा. -रथिया<रथ्या, (५) -एन (अकारान्त से गृहीत)—अप. तिण्हिने<*तृष्णेन =तृष्णया, भज्जे सहिउ=भार्यया सहितः।

च., ए. व , -यै—अशो (टो. आदि) विहिसाये<विहिंसा-, अशो. (टो.) अविहिसाये<अविहिंसा-, निय. दुतियए<*दूतियै=दौत्याय; अर्धमा. करणयाए<-करणता-।

प., ए. व., (१)-तः—अशो. (धौ.) तखसिलाते<तक्षशिलातः, निय. पुर्वदिशदे<पूर्वदिशा-, नियादे 'निया से', प्राः मालादो, मालाओ<मालातः; (२) -य (तृ. से प. मे विस्तारित)-निय पच्छिमदिशय<पश्चिमदिशा-, पा. कञ्ञाय<कन्या-।

ष., ए. व.; (१)-यै (च. से प. में विस्तारित, जैसा कि वैदिक गद्य तथा उत्तरकालीन अवेस्तीय मे भी)-अशो. (कौशाम्बी) दुतियाये<द्वितीया-; निय. भर्यये<भार्या-, प्रा. सुद्धाए<सुग्धा-;अप. पुच्छिअइ<*पृच्छितायै; (२) -य (तृतीया से विस्तारित)—पा. मालाय, महा. माला<माला-, (३) -स्य या-स (अकारान्त से गृहीत)—निय. देवतस<*देवतास्य, चतरोयएस 'चतरोया का', अप. तिस्हृ<*तृष्णास, तृष्णास्य=तृष्णायाः, अमिअआह<* अमृतास्य, (४) -याः (षष्ठी अथवा तृतीया-*-य)—लका अभि. तिशय= तिष्यायाः, चितय=चितायाः; नागा. सोदराय महामातुकाय।

---

१. Wackernagel, III 259 B. -या प्रत्ययान्त तृ, ए. व. का रूप केवल प्रारम्भिक म. भा. आ. मे ही मिलता है।

स., ए. व.; (१) विभाषीय–याम्–अशो. (गिर.) गणनायं<गणना–, परिसायं=परिषदि, (जौ.) समापायं 'समापा में'; पा. कञ्ञायं<कन्या–; (२) –य (–याम् से अथवा तृतीया से विस्तारित)—अशो. (शा., मा.) परिसाय =परिषदि, अशो. (गिर.) अथ-संतीरणाय, (धौ., जौ.) अथ-सतीलनाय<–संतीरणा–, खरो. ध. अहिंसइ<*अहिंसाय, अहिंसायाम् या अहिंसायै, भमनइ<भावना–; निय. वेल-वेलय=वेला-वेलायाम्, पा. कञ्ञय; महा. मालाअ<माला–, (३) –यै (चतुर्थी से विस्तारित)—अशो. (का.) पलिसाये. =परिषदि, अशो. (धौ, जौ.) पजाये<प्रजायै; निय. भर्यए; प्रा. मालाए, महा., अप. मालाइ<मालायै; (४)–स्मिन् (सर्वनाम अकारान्त से गृहीत)—अशो. (शा., मा.) गणनसि, (का, धौ.) गननसि (परन्तु गिर. गणनाय)<*गणनस्मिन्; निय. वेलंमि=वेलायाम्, सिगतंमि<*सिकतास्मिन्; अर्धमा. गिरिगुहसि< गिरिगुहा–; (५) विभाषीय*–भिम्—अप. दिवसणिसहि=दिवस-निशायाम्।

सम्बो., ए. व. (१) प्रा. भा. आ का ही रूप—पा. कञ्ञे<कन्ये; शौ. लदे<लते; (२) प्रातिपदिक रूप (अथवा प्र., ए. व.)—अर्धमा. पुत्ता<पुत्रि: अप. पिअअम=प्रियतमे।

प्र. ब. व.; (१) –स्—अशो. (जौ.) चिकिसा, (का.) चिकिसका<चिकित्साः, चिकित्सकाः[1]; अशो. (टो.) लोपापिता=रोपिताः; अशो. (गिर.) कता= कृताः; पा. कञ्ञा; प्रा. माला, (२) –यः (–अय् एव–इय् अन्त वाले प्रातिपादिकों के सादृश्य पर, जैसे सखायः, वृक्यः)—अशो. (गिर.) महिडायो; महा. महिलाओ, महिलाउ=महिला., नानाघाट दखिनायो, पा. कञ्ञायो, अर्धमा. देवयाओ, शौ. देवदाओ=देवताः, महा., अप. धण्णाउ=धन्याः।

द्वि, ब. व., प्र., ब. व. के समान, अशोकी में इसका कोई उदाहरण नहीं मिलता।

तृ., ब. व.; (१) –भिस्—नागा. वातिसिरिणिकाहि (आदरार्थक ब. व.) कालावान ताम्रपत्र ञ्नुषएहि=स्नुषाभिः, पा. कञ्ञाहि; प्रा. मालाहि; अप. वाअहि<वाचाभिः; (२) –*भिम्—प्रा. मालाहिं; अप. मिच्छेहिं<मिथ्येभिम् =मिथ्याभिः।

पं., ब. व.; (१) –भिस् (तृ. से विस्तारित)—पा. कञ्ञाहि

---

१. धौ. चिकिस, गिर. चिकीछ में पदान्त स्वर ह्रस्व है, शा., मा. चिकिस में पदान्त-स्वर अनिश्चित है।

विभापीय-भ्यस्[1]—अप. मालाहु, (३) विभापीय-*भिम्+तस्—प्रा. माला-हिंतो; (४) विभापीय (प्राचीन वैयाकरणो के अनुसार) -*सुम्+तस्—प्रा. मालासुतो।

ष., ब. व., (१) -नाम्—नागा. सुंन्हानं, खरो. ध. गधन, गशन=गाथा-नाम्; पा. कञ्ञानं; प्रा. मालाण (मालाण); (२) -साम् (सार्वनामिक) या -भ्यस् अथवा भ्यसु (पं. से विस्तारित)—अप. मालाहु<मालाभ्यः, मालाहुं <*मालाभ्यम्।

स., व. व.; (१) -सु—अशो. (टो.) दिसासु<दिशासु; पा. मालासु; (२) *-सुम्—प्रा. मालसु, (३) *-भिम् (तृ. से गृहीत)—अप. दह-दिहहं<-दिशा-।

सम्बो., व. व.-अप. मालहो।

४. इकारान्त (पुलिङ्ग-नपुंसकलिङ्ग)

§ ६१. इकारान्त (पुलिङ्ग-नपुंसकलिङ्ग) प्रातिपदिक बहुत पहले से-इन् मे अन्त होने वाले प्रातिपदिको से प्रभावित होने लगे थे, जैसा कि संस्कृत के निम्नलिखित नपुंसकलिङ्गी रूपो से प्रकट होता है-वारिणे, वारिणः, वारिणि। म. भा. आ. भाषा मे प्रारम्भ से ही इकारान्त प्रातिपदिको के कुछ रूप-इन मे अन्त होने वाले प्रातिपदिको के सादृश्य पर बनने लगे। म. भा. आ. के प्रथम पर्व के बाद इकारान्त प्रातिपदिको पर अकारान्त प्रातिपदिको का प्रभाव बढने लगा। इकारान्त-रूप-रचना-प्रणाली का विस्तृत परिचय नीचे दिया जा रहा है।

प्र., ए. व. (पुलिङ्ग), (१) -स्—अशो. (टो. आदि) विधि, अशो. (रुम्मनदेई) सक्यमुनि <शाक्यमुनिः,[2] निय. पलिय<वलिः, पा., प्र., अप. अग्गि<अग्निः, (२) -इन अन्त प्रातिपदिको के सादृश्य पर अग्गी।

द्वि., ए. व. (पुलिङ्ग) तथा प्र. और द्वि., ए. व. (नपुंसकलिङ्ग); (१) -म् (पु.)—खरो. ध. समधि<समाधिम्, अगि<अग्निम्, निय. पलिय; पा., प्रा. अग्गिं, अप. अग्गि, अग्गिं; (२) प्रत्यय-रहित (नपु.)—अशो. (का., धौ.) असमति<असमाधि, पा., प्रा., अप. अक्खि<अक्षि; (३) -न् (नपुं.), अकारान्त

१. या प. बहुव. प्रत्यय-साम् (सार्वनामिक) से।

२. पाठ 'सक्यमुनाति' है। यदि-नी-मे दीर्घ ई सन्धि का परिणाम नही है तो सक्यमुनी रूप का गुणी के सादृश्य पर बना हुआ समझना चाहिये।

के सादृश्य पर—पा., प्रा. अक्खि, (४) –ई (नपु.), स्त्रीलिङ्गी एकारान्त प्रातिपदिको के सादृश्य पर—प्रा. दही[1] <दधि।

तृ., ए. व.; (१) –ना—अशो. (का., धौ., जौ.) पितिना, भातिना < पिति–, भाति– < पितृ–, भ्रातृ–, पा. अग्गिना, अप. अग्गिण < अग्निना आदि; (२) –एन (अकारान्त के सादृश्य पर)—निय. पल्पियेन, अप. अग्गी < * अग्गिए < *अग्गि-एन।

च., ए. व., (१) –स्य (षष्ठी से विस्तारित)—पा. अग्गिस्स, (२) –नः (षष्ठी से विस्तारित)—अग्गिनो।

पं., ए. व., (१)–तः—अशो. (ब्रह्म., सिद्ध.) सुवनगिरितो < सुवर्णगिरि–; प्रा. अग्गिदो–अग्गिओ; महा., अप. अग्गीउ < अग्नितः, (२) विभाषीय –स्मात् (सार्वनामिक)—पा. अग्गिस्मा–अग्गिम्हा, (३) विभाषीय –ना (तृ. से विस्तारित)—पा. अग्गिना, (४) विभाषीय –भ्यस्—अप. अग्गिहु।

ष., ए व., (१) विभाषीय –नः (गुणिनः या वारिणः के सादृश्य पर)—प्रा. अग्गिणो < *अग्निनः; (२) –स्य (अकारान्त के सादृश्य पर) निय. पल्पि (य) स < *बलिस्य; पा. अग्गिस्स, (३) –भ्यस् (प. से विस्तारित) अथवा –सः (–अस् अन्त वाले प्रातिपदिको से विस्तारित) अप. अग्गि हे।

स., ए. व.; (१) –स्मिन् (सार्वनामिक)—पा. अग्गिस्मि., अग्गिम्हि, प्रा. अग्गिम्मि, अर्धमा. अग्गिसि < *अग्निस्मिन्; (२) विभाषीय –*भिस्—अप. अग्गिही।

प्र. ब. व. (पु.), (१) ब. व. के लिये ए. व. का प्रयोग—अशो. (धौ., जौ.) नति, (धौ.) पनति < (प्र) नप्तृ–, निय. क्षिधि, (२) –अस्—पा. अग्गयो, प्रा. अग्गओ–अग्गउ < अग्नयः; (३) –नः (–इन् अन्त वाले प्रातिपदिको से)—प्रा. अग्गिणो < *अग्निनः; (४) संमिश्रण—प्रा. अग्गीओ < अग्गी + अग्गयो, रिसीयो; (५) –सः (–अस् अन्त वाले प्रातिपदिको से)—अप. अग्गिहो (केवल सम्बो. मे)[2]।

---

१. इसे गुणी के सादृश्य पर बना रूप समझना चाहिये या यह ब. व. का रूप है, जिसका ए. व. मे प्रयोग किया गया है। परन्तु इस तथ्य को सामने रखते हुये कि दही रूप आधुनिक पंजाबी और सिन्धी मे स्त्रीलिङ्ग है और केवल हिन्दी मे ही पुलिंग है, यह अधिक ठीक लगता है कि म. भा. आ. दही रूप प्रा. भा. आ. नदी के वजन पर बना होगा।

२. –हो सम्बोधन-वाची अव्यय-पद भी हो सकता है। देखिये § ५६।

द्वि., ब. व. (पु.), (१) द्वि. के लिये प्र. का प्रयोग—निय. खियि; पा. अग्गयो, प्रा. अग्गओ, (२) –ईन्—पा. अग्गी<अग्नीन् ।

प्र.–द्वि., ब. व. (नपु.)—(१) –ईनि—खरो. ध. अस्थिनि<अस्थीनि; पा. अक्खीनि<अक्षीणि, प्रा. दहीणि<दधीनि, (२) –ई (वै.)—पा. अक्खी, प्रा. दही; (३) विभाषीय (केवल साहित्यिक प्राकृतो में) –ई+–ईम्—प्रा. दहीइ, महा., अप. दहीइँ ।

तृ., ब. व ; (१) –भिस् (–*भिम्)—अशो० (टो.) लाजीहि<*राजिभिः–राजभिः, खरो. ध. ञतिहि, पा. ञातिभि–ञातिभिः, पा. अग्गीहि,, प्रा. अग्गीहिं–अग्गीहि, अप. अग्गिहि–अग्गिहिं<अग्निभिः, *अग्निभिम् ।

प., व. व.; (१) प. के लिये तृ. का प्रयोग—पा. अग्गीहि, (२) –*भिस् +–तः—प्रा. अग्गीहितो, (३) –*सुम् +–त. (प्राचीन वैयाकरणो के अनुसार)—अग्गीसुतो, (४) –*सुम् (स., व. व.) या –*भ्यम्—अप. अग्गिहुं ।

ष., ब. व., (१) –नाम्—अशो. (शा., मा.) ञातिन–ञातिन, (गि.) ञातिनं, (का.) नातिनम्, पा. ञातीनम्<ज्ञातीनाम्, प्रा. अग्गिणं–अग्गिण, (२) विभाषीय –साम् (सार्वनामिक)—अप. अग्गिहं<*अग्निषाम्, (३) विभाषीय –स. (व. व. के लिये)—अप. अग्गीहु<अग्गिस ।

स., व. व. (१) –सु—अशो. (गि) ञातीसु, (का., धौ., जौ., टो. आदि) नातीसु[1], पा., प्रा. अग्गीसु; पाली मे सखि (पुलिंग) शब्द के रूप सर्वनामस्थानो (प्र., ए. व., ब. व. तथा द्वि. ए. व.) मे –ऋ मे अन्त होने वाले प्रातिपदिको (मातृ, पितृ आदि) के सादृश्य पर बनते हैं—सखा [प्र., ए. व.], सखार [द्वि. ए. व.], सखारो [प्र. व. व] प्र., ब. व. मे प्रातिपदिक का रूप सखार– प., ए. व. सखारस्मा मे भी है । अन्य विभक्तियो के रूप –इन अन्त वाले प्रातिपदिको के सादृश्य पर हैं—सखिना [तृ. ए. व.], सखिनो [प. ए. व.], प्रा. सही [प्र. ए. व.] स्त्रीलिंग सही<सखी से विस्तारित रूप है ।

५. इ [ई] कारान्त [स्त्रीलिंग]

§ ६२ स्त्रीलिंग इ तथा ईकारान्त प्रातिपदिको के रूप निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुसरण करते है ।

प्र., ए. व.; (१) –स्—अशो. (शा.) वढि, (मा.) वध्रि (=वर्धि), (गि.,

---

१. इस रूप मे दीर्घ-स्वर संभवतः –इन् अन्त वाले प्रतिपदिको के प्र., ए. व. के रूप का प्रभाव है ।

का.) वधि<वृद्धिः; अशो. (का., धौ., जौ.) असपटिपति, (गि.) असंप्रतिपति <पत्तिः; खरो. ध. सतुठि<संतुष्टिः, हिरि<ह्रीः; पा. जाति, प्रा. जाद्दि-जाइ<जातिः; (२) प्रत्यय-रहित (इकारान्त के ईकारान्त मे परिवर्तन सहित) —अशो. (टो. आदि) धाति<धात्री, (गि.) वधी <*वृद्धी; नागार्जुन महादान-पतिनि; निय उटि<*उष्ट्री, खरो. ध. नदि, पा. नदी, प्रा. णदी-णई, अप. णई<नदी।

द्वि., ए. व.; (१) -म् (इस प्रत्यय का विभाषीय लोप)—अशो. (गि.) छांति, (शा.) छति, (का.) खंति<क्षान्तिम्, अशो. (मा.) किटि, (धौ., जौ.) किटी<कीर्तिम्, *कीर्तीम्, अशो. (धौ.) वधी<वृद्धिम्; निय. उटि<*उष्ट्रीम्; खरो. ध. रति<रात्रीम्; पा. जातिं, प्रा. जादिं-जाइं, अप. मिअ-लोअणि< मृगलोचनीम्।

तृ., ए. व., (१) -आ—अशो. (गि.) धम्मानुशस्टि, (धौ., जौ.) -अनुसथिया, (शा.) -अनुशस्तिय<-अनुशास्त्या; अशो. (टो.) वढिया, (का.) -वधिय[1]<वृद्धया, अशो. (धौ.) अनावूतिय[1]<अनावृत्या, अशो. (गि., का., शा., मा.) भतिया<भक्त्या, नागार्जुन, नतिय<नत्या, पा. इत्थीआ< स्त्रिया, जच्चा-जातिया<जात्या, प्रा. बुद्धीआ, बुद्धिअ[1] अप. बुद्धिअ, बुद्धी <बुद्धया; (२) -एन (अकारान्त से गृहीत, मिलाइये ऋ. सं. धासिना, नाभिना, वा. सं., श. ब्रा. प्रेतिना)—निय. प्रितियेन=प्रीत्या, अप. विसअ-विसुद्धें=-विशुद्धया; (३) -यै (चतुर्थी का तृ. के लिये प्रयोग) -अशो. (जौ.) अनावुतिये=अनावृत्या, निय. उटिअए=*उष्ट्र्यै=उष्ट्र्या, प्रा. बुद्धीए, बुद्धीइ<बुद्ध्यै।

च., ए. व., (१) -यै—अशो. (धौ.) धंमानुसथिये (शा., मा.) -शस्तिये <धर्मानुशास्त्यै; अशो. (टो.) धातिये<धात्र्यै; अशो. (धौ., शा.) धमानुवधिये <-वृद्ध्यै, (२) -अस् (ष. से विस्तारित, मिलाइये ऋ. सं. अव्यः, श्रियः[2]) —अशो. (गि.) धमानुसस्टिय<*-शास्त्यः, अशो. (मा.) ध्रमवध्रिय<* -वृद्ध्यः (या *वृद्ध्याः); (३) -आस् (ष. से विस्तारित)—अशो. (का) धंमानुसथिया<-शास्त्याः, अशो. (मा.) ध्रम-वध्रिय<वृद्ध्याः या *वृद्ध्यः; (४) -अये—खरो. ध. परिहणए<परिहानये।

---

१. पदान्त ह्रस्व अ विभाषीय हो सकता है अथवा आगत्य के समान यह विभक्ति-प्रत्यय है या यह लखने की गल्ती से हो सकता है।

२. नित्य स्त्रीलिङ्ग; वाकरनागेल iii § 75।

प., ए. व., (१) -तः—अशो. (धौ.) उजेनिते 'उज्जयनी से', धौ. उज्जयिणीदो, अर्धमा. नयरीउ, (२) -आ,-अस् (प. से विस्तारित)—अशो. (का.) निवुतिय[1]<निर्वृत्याः,-अत्यः, अशो. (धौ.) निफतिया<निष्पत्त्याः, लखनऊ संग्रहालय में हुविष्क का जैन-मूर्ति-अभिलेख शिशिनिय<*शिष्यिनी-, पा. जतिया[2]<जात्याः, (३) -यै (प. से विस्तारित)—प्रा. वुड्ढिए, वुड्ढीइ< वृद्ध्यै, (४) -सस् (-अस् अन्त वाले प्रातिपदिकों से विस्तारित)—गोरिहे =गौर्याः।

ष., ए. व., (१) -यै (च. से विस्तारित)—अशो. (कौ., शा) कालुवाकिये 'कालुवादी का' देवियो<देव्यै, नागा. भगिनिय महादेवीय, निय. उटिअए<* उष्ट्र्यै, प्रा वुड्ढीए, वुड्ढीइ<वृद्ध्यै, (२) -यस् (अथवा *य तृ. से)—खरो. ध. विशोधिअ<विशुद्ध्याः, नानाघाट अभि. पठविय=पृथिव्याः, पा. जातिय= जात्याः, प्रा. वुड्ढिआ, वुड्ढीआ, (३) -सस् (-अस् अन्त वाले प्रातिपदिकों से विस्तारित)—अप. गोरिहे=गौर्याः।

स., ए. व.; (१) -याम् (-म् के लोप सहित अथवा लोप के बिना) -अशो. (शा., मा.) अयतिय<आयत्याम्, अशो. (कौशा.) कोसंबिय 'कौशाम्बी में', अशो. (मथिया) तिसिय[3], (रधिया, रामपुरवा) तिस्य<. तिष्याम् = तिष्यायाम्, (टो., दिल्ली) तिसाय, अशो. (धौ.) तोसलियं 'तोसलि में', अशो. (धौ., जौ.) तितिय<नीति-, अशो. (टो. आदि) पुनमासिय<पूर्णमास्याम्, पा. जातिय, (२) -यै (च., प. से विस्तारित)—अशो. (का., धौ., जौ.) आयतिये=आयत्याम्, अशो. (टो. आदि) चातुमासिये<चातुर्मासी-, निय. उटिअए, प्रा. वुड्ढीए, वुड्ढीइ, (३) -या (तृ. से विस्तारित) अथवा-यास् (पं., प. से विस्तारित)—पा. जातिय, प्रा. वुड्ढीअ, (४) प्रत्यय-रहित (संस्कृत तत्सम अथवा तद्भव) —प्रा. राओ<रात्रौ, (५) -स्मिन् (अकारान्त से गृहीत) -निय, रत्रंमि 'रात में'।

प्र., ब. व., (१)-अस्—अशो. (गि.) अटवियो<अटवी-, अशो (का.) अवकजनियो>अर्भकजनी, अशो. (भा.) भिखुनिये<*भिक्षुण्यः, नानाघाट

---

१. निवुतिय आदि को च., ष. का रूप माना जा सकता है।

२. इसे तृतीया से विस्तारित भी माना जा सकता है।

३. इन्हें अकारान्त के द्वि. का रूप मानकर इकारान्त मानने से प्रकट होने वाली नियम-विरुद्धता का परिहार किया जा सकता है, मिलाइये-धौ. जौ. तिसेन।

कुभियो रूपामयियो, पा. जातियो, प्रा. णदीओ–णईओ, अप. नईउ<नद्यः; अर्धमा. इत्थिओ<स्त्री–, अप. वुत्तउ>उक्तयः, (२) –स् (प्र. जैसे वैदिक देवीः अथवा द्वि. से विस्तारित जैसे नदीः) —अशो' (शा., मा.) अटवि<* अटवी', अशो. (धौ.) इत्थी<स्त्रीः, निय. उटि, पा. जाती, रत्ती<रात्री– महा. असई<असती–, (३) –आनि (अकारान्त नपुसकलिङ्ग से गृहीत)— निय. वडवियनि=वडवाः ।

द्वि., ब. व., (१) –स्—पा., प्रा., अप. मे प्र. के समान, (२) देखिये प्र., ब. व., (३) –अस् (प्र. अथवा द्वि. से विस्तारित जैसे वैदिक वृक्यः) —खरो. ध. सव–दुगतियो<–दुर्गतयः, चुतिउ=चतुतीः, पा., प्रा., अप. मे प्र. व. व. (१) के समान ।

तृ.–प., ब. व., (१) –भिस—नागा. महातलवरिहि, पा. जातीहि, प्रा. दिट्ठीहि, (२) –*भिम् प्रा. दिट्ठीहिं, (३) –एभिस् (अकारान्त से गृहीत)— अप. घरिणिएहि<*घरिणी–।

ष., ब. व.,–नाम्=अशो. देविन<देवी–, नानाघाट गावीन, खरो. ध. नरेथिन<नरस्त्रीणाम्, निय. स्त्रियन=स्त्रीणाम्, प्रा. सहीण–सहीण<सखी– ।

स., ब. व., (१) –सु—अशो. चातुमासीसु, निय उटिएषु<उष्ट्री–, पा. जातीसु, प्रा णदीसु–णइसु, (२) *–सुम्—प्रा. णदीसुं–णईसुं, (३) *– भिस्—अप. दिट्ठीहि ।

सम्बो., ब. व., धौ. स. देवीहो ।

६. उ (ऊ) कारान्त

§ ६३. प्रा. भा आ भाषा की तरह म. भा. आ. भाषा मे भी उ (ऊ) कारान्त रूप-प्रक्रिया इ (ई) कारान्त रूप-प्रक्रिया का अनुसरण करती है ।

ए. व., प्र. (क) पुलिङ्ग, –स्—अशो. साधू, भिखु, खरो. ध. भिखु, बहो[1]<बहुः, निय भिछु, पा भिक्खु, अभिभू<*अभिभूः, प्रा. वाउ<वायुः; (ख) स्त्रीलिङ्ग–स् (या प्रत्यय-रहित)—पा. धेनु, सस्सू<श्वश्रूः, प्रा वहू<वधूः, प्र –द्वि., नपुसकलिङ्ग, (१) प्रत्यय-रहित—अशो. बहु, वस्तु, पा. बहु, खरो. ध. वहो, हेतु, निय. मसु<मधु, तनु<तनूः, प्रा. महु, (२) –म् (सादृश्य के आधार पर) पा. बहुं, प्रा. महुं, द्वि., पुलिङ्ग (स्त्रीलिङ्ग); (१) –म्—भिक्खु प्रा. वाउ, अप. बाहु–बाहु; (२) –नम् (सादृश्य से)—पा. भिक्खुन, तृ.,

१. द्र. शिलो हि बहो जनो । परन्तु बहोजनो समस्त-पद भी हो सकता है, मिलाइये बहोजगरु, बहोसुकेन ।

पु.—नपु.; (१) –ना—खरो. ध. प्रभगुन<*प्रभगुना, पा. भिक्खुना, प्रा. वाउणा, (२) –एन (म्) (सादृश्य से)—निय. मसुवेन<मधु+एन, हेतुवेन, अप. वाउँ, तृ.—च.—प.—प—स., स्त्रीलिङ्ग, (१) –या (तृ.)—पा. धेनुया, प्रा. वहूआ<वध्वा (:), (२) –यस्,–यास्—प्रा वहूआ, (३) –यै—वहूए, अप. वहूइ, प, नपु., (१)–तस्—अशो हेतुतो, हेतुते, प्रा. वाऊओ, वाऊए, (२) –स्मात् (सादृश्य से)—पा. भिक्खुस्मा (–म्हा), (३) –सस्—अप. वाउहे, ष., पु.—नपु., (१) –नस् (सादृश्य से)—खरो. ध. भिक्षुनो, नचुनो<मृत्यु–, पा. भिक्खुनो, प्रा. वाउणो, (२) –स्य—निय. भिक्षुस्य, पशुस, मसुस, (मतुस्य भी), पा. भिक्खुस्स, प्रा. वाउस्स, स., पु.—नपु.; (१)–स्मिन्—निय. मसुश्मि<मधु+स्मिन्, पा. भिक्खुस्मिं (–म्हि), अवंमा. वाउसि, प्रा. वाउम्मि, (२)–नस् (पं, ष. से विस्तारित)—अशो. (टो. आदि) पुनावसुने< पुनर्वसु–, अशो. (टो) बहुने (जनसि)<बहु–, स., स्त्रीलिङ्ग,–याम्— पा. धेनुय<धेनु– ।

ब. व., प्र –द्वि., पुलिङ्ग (स्त्रीलिङ्ग), (१) –अस—खरो. ध. भिक्षवि (सम्बो.),<भिक्षव., निय बहुवे, बहुवि, पशव (संस्कृत का प्रभाव), भिक्खवो, भिक्खवे (सम्बो.) प्रा. वाअवो–वाअओ, अप. वाअउ, (२) –नस् (सादृश्य से)—निय. पशुन, पा. भिक्खुनो, प्रा. वाउणो, (३) –ऊन् (द्वि. से विस्तारित)—निय. पशु[1]<पशून्, वहु, पा. भिक्खू, प्रा. पसू, प्र.—द्वि., नपुसकलिङ्ग, (१) –ऊ (वैदिक)—पा. अस्सू<अश्रु–, प्रा. महू, लेणू<रेणु, साहू<साधु (नपु. का पु. मे भी प्रयोग), (२) –ऊनि—अशो. वहूनि, खरो. ध. प्रभगुनि<: प्रभगूनि, पा. अस्सूनि, प्रा. महूणि, (३) –ऊ+ईम्—प्रा. महूइ, अप. महूइं, प्र.—द्वि., स्त्रीलिङ्ग, (१) –अस् (मूलत केवल प्र. का प्रत्यय)—पा. धेनुयो, प्रा. वहूओ, अप. वहूउ, (२) –उस् (मूलतः केवल द्वि. का प्रत्यय)—पा. धेनू, तृ., (१) भिस्—अशो. बहूहि, पा. भिक्खूहि, प्रा. वाऊहि, (२) –*भिम्—प्रा. वाऊहिं, प., (१) –भिस्—पा. भिक्खूहि, प्रा. वाऊहि, (२) –*भिम्—प्रा वाऊहिं, (३) –*भिम्+तस्—प्रा. वाऊहितो, (४) –*सुम्—अप. वाउहुँ, ष., (१)–नाम्—अशो. (गि.) गुरूणा, (धा, मा) गुरुणा–गुरुण, (का.) गुलुना[2], (धौ., जौ) गुलूनं, पा. भिक्खून, प्रा. वाऊण–वाऊणं, वाऊणा[2], (२) –आनाम्, (अकारान्त से गृहीत)—निय.

---

१. इसे ब. व. के लिये ए. व. का प्रयोग भी माना जा सकता है ।

२. ये रूप यदि संस्कृत से प्रभावित नही हैं तो आ के ह्रस्वीकरण से पहले म् का लोप प्रदर्शित करते हैं ।

पशुवन, वसुवन<वसु+आनाम्, (३) –साम्—अप. वाउहं, (४) –सुम्—वाउहुँ, स., (१) –सु—अशो. (धौ, जौ., टो. आदि) बहूसु, (टो.) गुलुसु<गुरु–, पा. भिक्खूसु, प्रा. वाऊसु, (२) –एषु (अकारान्त से गृहीत)—निय. पशुवेषु, (३) –*सुम्—प्रा. वाऊसु, (४) *–भिम्—अप. वाउहिं ।

७. ऋकारान्त

§ ६४. म. भा. आ. भाषा मे ऋकारान्त प्रातिपदिको के अन्तर्गत केवल सम्बन्धवाची शब्द हैं—पितृ–, मातृ–, भ्रातृ–, दुहितृ–, स्वसृ–, नप्तृ–, जामातृ–और भर्तृ– (जो प्रा. भा. आ. मे मूलतः सम्बन्धवाची नही था, परन्तु बाद में 'पति' 'स्वामी' के अर्थ मे स्थिर हो गया) । प्रारम्भिक म. भा. आ. मे–तृ अन्त वाले कर्तावाची सज्ञापद भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं, जैसे—अशो. (टो.) निझपयिता(<निध्यापयिता) और पा. सत्था (र)–(<शास्तृ–) ।

म. भा. आ. भाषा मे ऋकारान्त रूप-प्रक्रिया, जिसमे नपुसकलिङ्ग का अभाव है, विविध प्रकार के रूपो से युक्त है, जिन्हे निम्नलिखित पाँच वर्गो मे बाँटा जा सकता है—(क) प्रा. भा. आ. भाषा से परम्परया प्राप्त रूप, (ख) –उकारान्त प्रातिपदिक वाले रूप (प., ए. व. पितुः, मातुः आदि से गृहीत प्रातिपदिक), (ग)–इकारान्त प्रातिपदिक वाले रूप (पितृष्वसा आदि सामासिक पदो के पहले पद पर आधारित प्रातिपदिक) [1], (घ) –अकारान्त प्रातिपदिक वाले रूप (द्वि., ए. व. पितरम्, मातरम् आदि से गृहीत अकारान्त रूप), (ङ) आकारान्त प्रातिपदिक वाले रूप (प्र., ए. व. पिता, माता आदि पर आधारित), और भारत-ईरानी के अवशेष जो प्रा. भा. आ. मे नही मिलते । वर्गानुसार इनका नीचे विवरण दिया गया है ।

ए. व., प्र. (क) अशो. पा. पिता, माता, भ्राता–भाता, निय. पित, भ्रत, पा. धीता=दुहिता, जमाता, प्रा. पिदा–पिआ, मादा–माआ, भादा–भाया, धीदा–धीआ, और धूदा-धूआ, जामादा–जामाआ, शौ. दुहिदा (संस्कृत-प्रभाव), अर्धमा. ससा<स्वसा, पा. प्रा. सत्था<शास्ता, प्रा. भत्ता, भट्टा<भर्ता, अशो. (टो.) अपहटा, अपहता<अप्रहर्ता, अशो. (टो.) निझपयिता <निध्यापयिता, (ख) निय. पितु, भ्रतु, भटु; (ग) अप. माई<मातृ या मातृका; (घ) निय. भटर, जामातो<जमाता– (अकारान्त बनाकर), प्रा. पिअरो, भत्तारो, भट्टारो; द्वि.—(क) पितरं, मातरं, धीतरं, सत्थारं, प्रा. पिदरं–पिअरं, पितरं (मृच्छकटिक), मादरं–

---

१. बौद्ध संस्कृत मे पितरि– भी प्रातिपदिक के रूप में मिलता है ।

माअरं, भत्तारं-भट्टारं, शौ. दुहिदरं (संस्कृत-प्रभाव), अर्धमा. धीयरं: (ख) निय. पितु, मदु, भ्रतु, पा. पितुं आदि; (घ) निय. भटरे (ङ) निय.[1] पित, भ्रत, प्रा धूअ=दुहितरम्; महा. मारं<*मातम्. तृ.– (क) अशो. (गि.) पिता<पित्रा, भत्रा–भता, (ख) अशो. (शा, मा) पितिन. भ्रतुन, कालावन ताम्रपत्र भ्रतुणा, नासिक गुहालेख मातुय, पा. धीतुय, सत्थुना, प्रा. पिदुणा–पिउणा. जामादुणा, भत्तू (तृ. के लिये प.), कालावन ताम्रपत्र दितुण= दुहित्रा, खारवेल (मंच्पुरी) धु (तु) ना: (ग) अशो. (का., धौ . जौ) पितिना, भतिना, प्रा भट्टिणा, (घ) पा. पितरा, मातरा[2], प्रा. पिअरेण: (ङ) मादाए–माआए, धूआए. धूअई: पं.—(क) अथवा [घ] पा. पितरा, मातरा (देखिये तृ.); (ख) मातुया (ङ) प्रा. मादाए–माआए, धूआए, धूआइ आदि; प.– (क) (अशो. कोशा) तीवल–मातु 'तीवल की माता का' (ष. के लिये प्रयुक्त), निय. पितु, ष्वसु, तस्त–ए–दाहि मदु–पितु, तक्षशिला रौप्य-पत्र मतिपितु, नासिक गुहा दीहितु=दुहितः; पा. पितु, मातु, दुहितु, प्रा. भत्तू; [ख] निय पितुस्य, मदुए, मदुअए, प्रियष्पसुअए<*-प्रियस्वसृ+–ऐ. पितुए, नागार्जुनी पितुनो, मतुनो, जामातुकस (<जामातु+–क–), भतुनो, मातुय, धूतुय, धुतुय, भट्टिप्रोलु मंजूषा पितुणो, नासिक गुहा मातुय. पा. पितुनो, पितुस्स, मातुया, प्रा. पिदुणो–पिउणो. पिउस्स, माऊए, भत्तुणो. जामादुणो, (ग) प्रा. भट्टिणो; (घ) अर्धमा. पियरस्स. प्रा. भट्टारस्स. अप. पियरह <* पितरस (ङ.) पा. माताय, धीताय, प्रा. मादाए–माआए, धूआए, धूआइ: (च) वर्दक कांस्यपात्र मदपितर<*–पित्र: (मिलाइये प्रा. फा. पित्स), भ्रदर <* भ्रात्र: (मिलाइये अवे. ब्रथो), निय. प्रियभ्रत्रे; स.–(क) अशो. (गि.) पितरि. मातरि, पा. पितरि, मातरि, भातरि, शौ. भत्तरि (संस्कृति प्रभाव). (ख) पा. मातुया, भतुय, प्रा. माऊए (घ) प्रा. भत्तारे।

ब. व. प्र –(क) अशो , (शा.) नतरो. (मा) नतरे, (का.) नताले< नप्तारः, निय. पितर, भतर, भ्रतरे. पा. पितरो, मातरो, प्रा. पिदरो-पिअरो, माअरो, भायरो, भत्तारो. (ख) पा. भातुनो. प्रा. पिउणो, भत्तू (प्र. के लिये

---

१ ये रूप द्वि. के भी हो सकते हैं,<*पिताम् या फिर इन्हे प्र. का ही रूप माना जा सकता है जिनका द्वि. के लिये प्रयोग किया गया है।

२. ये अ के स्वरागम-सहित परम्परया प्राप्त रूप भी हो सकते हैं; मिलाइये नासिक गुहालेख–जामत्रा, जामातरा।

द्वि का रूप)[१] (धौ) नति-पनति (प्र. के लिये द्वि)[१] <नप्तृ-प्रणप्तृ-, अर्धमा पिई (प्र के लिये द्वि)[१], (घ) प्रा भायरा, निय भटरे[२], (ङ) पा धीता, भट्टा, अर्धमा भत्ता, धूयाओ, द्वि— (क) पा पितरे, प्रा पिदरे-पिअरे (घ) निय भटरे, (ङ) पा भाते, प्र से विस्तारित—(क) पा. पितरो, नत्तरो, प्रा पिदरो-पिअरो, (ख) पा मातापितू, प्रा. पिउणो, भत्तू; तृ — (ख) पा. पितूहि, मातूहि, सत्थूहि, प्रा पिऊहि; (ग) सारनाथ मे कनिष्क की प्रतिमा का अभि मातापितिहि, प्रा पिइहि, माईहि, (घ) निय. पुत्र-धीदरेहि, पा नत्तारेहि, सत्थारेहि, प्रा पिअरेहिं, भत्तारेहिं, अर्धमा धूयरेहिं, (ङ) पा धीताहि[३], अर्धमा मायाहि, धूआहि; ष — (ख) अशो (शा) भ्रतुनं, (शा., या) स्पसुनं-स्पसुन=स्वसृ-, नागार्जुनी भातुनं, निय. भ्रतुभ्रनु पा पितून, मातून, सत्थूर, प्रा पितूण, (ग) अशो (का) भातिन, अर्धमा पिईण, माईण-माईण; (घ) निय भ्रतरन, भ्रतरण (सस्कृत-प्रभाव), आरा शिला लेख मतर-पितरण पा पितरान, सत्थारान, (ङ) अशो (मा) भतन, पा धीतान, प्रा धूदाण-धूआण, स — (ख) अशो (शा मा) मतपितुषु, पा पितूसु, मातूसु, सत्थुसु, प्रा पिऊसुं, (ग) अशो (का, धौ, टो. ब्रह्म, जतिगा-रामेश्वर) माता-पितिसु, (घ) पितरेसु, सत्थारेसु, प्रा. भत्तारेसु; (ङ) पा धीतरासु।[४]

८ सन्ध्यक्षरान्त (dipthongal)

§ ६५ (क) गो-प्रातिपदिक के (१) कुछ प्रा भा आ से परम्परागत रूप सुरक्षित हैं, परन्तु सामान्यत इसके रूप निम्नलिखित विस्तारित प्रातिपदिको से मिलते है—(२) गव –(पु), गावी –(स्त्री), और (३) गोण– (पुं), गोणी[५] –(स्त्री)। निम्नलिखित रूप मिलते हैं।

ए व.; प्र —(१) निय. गो, पा गो, अर्धमा गो<गौ; (२) अर्धमा गवे<*गवः, प्रा गावी –गाई; (३) अशो. (टो. आदि) गोने, पा गोनो, प्रा.

---

१ या व व के लिये ए. व।

२ ए व *भर्तारः अथवा ब व भर्तारः से।

३ बहुत बाद के समय का रूप।

४ बहुत बाद का रूप।

५ पतञ्जलि ने गो शब्द के अपभ्रंश रूपो मे गोणी का उल्लेख किया है। गुण– जिसका मूलत अर्थ 'गोचर्म से बनी डोरी' था, गोणी का ह्रस्वीकृत रूप है।

गोणो<*गोणः, प्रा. गोणी, द्वि —(३) पा. गोनं; प —(१) या (२) पा. गवा<*गवा (तृ से गृहीत) या *गवात्, ष —(२)पा गवस्स, (३) अशो. (टो. आदि) गोनस, गोनसा; स —पा गवे ।

ब व ; प्र —(१) नानाघाट, पा गावो, अर्धमा. गाओ<गाव.; (२) अर्धमा गवा, द्वि —(१) प्र , ब व से गृहीत पा गावो, अर्धमा गाओ; (२) निय गवि<*गावीः या प्र –द्वि , ए व *गावी (मू); (३) पा. गोने, प्रा गोणाई, तृ —(१) गोहि, अर्धमा गोहिं<गोभिः, ष —(१) पा. गव, अर्धमा. गव<गवाम्; पा गोनं (>गुन्नं)<गोनाम्, (३) पा गोनानं <*गोनानाम्, (२) नानाघाट गावीनं ।

(ख) नौ– प्रातिपदिक के कोई भी प्रा भा आ से परम्परयाप्राप्त रूप सुरक्षित नही हैं[1], जितने भी रूप मिलते है वे सब विस्तारित प्रातिपदिक रूप नावा– से बने हैं ।

ए व; प्र –प्रा नावा, द्वि नावं,[1] तृ – च – पं – प –स –पा. नावाय, पा नावाए<*नावाया और / या *नावायः और / या *नावायम्, *नावायै, मिलाइये ऋ स , नावया (१.९७ ८) ।

ब व प्र – पा नावायो, तृ.– अर्धमा नावाहि, स – पा नावासु ।

६ व्यञ्जनान्त-प्रातिपदिक

§ ६६ म भा. आ भाषा मे –च्, –द्, –श् मे अन्त होने वाले धातु-रूप (radical) प्रातिपदिक तथा –अत्, –इत्, –उत्, –अस्, –मस्, –यस्, –वस्, –इस् तथा –उस् मे अन्त होने वाले धातुज प्रातिपदिक या तो पदान्त मे –अ (अथवा स्त्रीलिङ्ग मे आ) के योग से अथवा पदान्त व्यञ्जन का लोप कर देने से पूर्णत स्वरान्त प्रातिपदिक बना दिये गये है । प्रा. भा आ से परम्परया प्राप्त रूप यत्र-तत्र संस्कृत-प्रभाव (sanskritism) के रूप मे कुछ थोडे से बच रहे हैं ।

(क) वाच् –, पा वाचा–, प्रा वाआ–, अर्धमा. वाई–(<*वाची–), अप वाआ–, वाअ–, जैसे—खरो. ध वयइ (<वाचया=वाचा), अप. वाअहि=वाग्भि । परम्परया प्राप्त रूप—पा वाचा, प्रा वाचाइ, पा तचा–, अर्धमा तया–(<त्वच्–), मिलाइये प्रा छाई<छाया ।

(ख) परिषद्–, अशो परिसा–(पलिसा, परिषा–), पा परिसा, सम्पद्–, प्रा सम्पआ–, अप सम्पई–, शरद्–, निय शरत– (जैसे—

---

१ खरो ध नम मूल नावम् अथवा *नावाम् की ओर सकेत करता है ।

शरतस्मि = शरदि) । परम्परया प्राप्त रूप—पा पदा (तृ , ए. व <पद्–), द्विपदं (प. व व) सरदो (द्वि , व व), सरित (प व व.) ।

(ग) दिश्–, अशो (का) दिषा–, पा दिसा–, प्रा दिसा–, दिशि–परम्परया प्राप्त रूप—खरो घ दिशो– दिश (प , ए व या द्वि व व), पा. दिसो (प , ए व). प्रा दिसि (स , ए. व) ।

(घ) जगत–[1] प्रा जग–[2], जग्र[3], बौ. सं जगि (स , ए. व) ।

(ङ) सरित्– पा सरिता, प्रा सरिआ–, अप सरि– (जैसे—सरिहिं = सरिद्भि) ।

(च) मरुत्– प्रा. मरु– ।

(छ) शरद्– प्रा सरअ, जैसा कि सरअस्स (प , ए. व.) मे ।

(ज) –अस् अन्त वाले प्रातिपदिको के (१) परम्परया प्राप्त तथा (२) तद्भव रूप नीचे दिये जाते हैं ।

ए व ; प्र –द्वि , नपुं.—(१) अशो (गि., का , धौ., जौ) यसो, (शा , मा) यशो, पा मनो, सिरो, प्रा मणो, अप मणु, तवु –तउ (<तप), (२) पा. सिरं, प्रा. मणं । प्र., पुं—(१) अर्धमा दुम्मणा, शौ दुव्वासा <दुर्वासस्, (२) खरो. ध. सुमेधसु<–मेधस्–, पा दुम्मनो –चेतसो, अर्धमा, विमणो = विमना , उग्गतवे = उग्रतपा । द्वि., पुं.—(२)प्रा दुम्मण । तृ —(१)खरो. ध तेयस<तेजसा, पा मनसा, अर्धमा मणसा, शौ तवसा, (२)खरो. ध मनेन, निय शिरस, पा तपेन, महा मणेण, अर्धमा सिरेण । प —(२) अर्धमा तमओ, तमाओ, महा सिराहि । ष —(१) पा मनसो, (२) पा मनस्स, प्रा जसस्स, अप जसहु[3] । स —(१) पा मनसि, पा , अर्धमा उरसि, माग. शिलशि; (२) निय. मनसंमि, पा मने, उरस्मि, पा , प्रा उरे, अर्धमा उरंसि, महा उरम्मि, अप मणि ।

ब व , प्र –द्वि , नपुं — (२) पा. सोता (नि)[4], सोते[5] = स्रोतांसि, अर्धमा सरा (णि), सरांसि । प्र , पुं —(२) पा अत्तमना[6], अत्तमनसा = आत्तमनस , अर्धमा अहोसिरा[6] = अध शिरस , अप आसत्तम । द्वि , पुं.

१. मूलत. वर्तमान कालिक कृदन्त ।

२. मिलाइये कौषीतकि उपनिषद् जगानि = जगन्ति ।

३ या परम्परया प्राप्त <यद्यसः ।

४. केवल प्रथमा ।

५. केवल द्वितीया ।

६. या ब. व. के लिये ए व. ।

(२) पा मुदितमने । तृ —(२) पा सोतेहि, सिरेहि, प्रा सिरेहिं –सिरेहि । ष —(२) पा सोतान, महा सराण सरसाम् । स —(२) अर्धमा सरेसु = सर सु ।

(झ)—मस्, –यस् तथा –वस् मे अन्त होने वाले प्रातिपदिको के निम्न-लिखित रूप मिलते हैं ।

ए व , प्र –द्वि , नपुं—(१) अशो (शा , मा , का , धौ , टो) भुये, (गि) भुय, पा भिय्यो<भूय–, खरो ध सेहो, सेह, पा सेय्यो<श्रेय , (२) पा सेय्यं, शौ वलिय = बलीय । प्र , पु —(१) पा चन्दिमा , अविद्वा< अविद्वान्, भय–दस्सिवा<*दर्शिवस्–[1] (मिलाइये महाभारत प्रत्यक्ष–दर्शिवान्), खरो ध भय–दस्सिम<*दर्शिमस्–[1], अर्धमा. सेयंसे<श्रेयास (ए व के लिये ब व) (२) खरो ध चन्द्रिमु = चन्द्रमा , पा अविद्धसु< *अविद्वसु–, महा विउसो । द्वि पुं —(२) पा सेय्यं । तृ —(१) अर्धमा. विउसा । च —(१) अशो (भा , सिद्ध , जतिंगा-रामेश्वर) दीहयायुसे[2] । ष —(२) पा अविद्दसुनो ।

ब व , प्र पुं —(१) पा सेय्यासे<*श्रेयास , सेय्या<*श्रेय–; (२) पा अविद्दसू, अविद्दसुनो । प्र , नपुं —(३) सेय्यानि ।

(ञ)–इस् तथा –उस् अन्त वाले प्रातिपदिक (१) प्रा भा श्रा से परम्परा प्राप्त छुटपुट रूपो के अतिरिक्त अधिकाश मे (२) इकारान्त अथवा उकारान्त बना दिये गये हैं तथा अत्यल्प स्थलो मे (३) अकारान्त बनाये गये हैं ।

ए व , प्र –द्वि ,नपुं —(१)या(२)खरो ध अयो, अयु = आयु , पा आयु, सप्पि, प्रा चक्खु, (२) पा सप्पि, आयु, प्रा धणु, चक्खुं, हविं, अर्धमा जोइ, जोई, आउ, (३) महा धणुह<*धनुष– । प्र पुं —(३) शौ दीहाउसो< *दीर्घायुष– । द्वि , पु —(२) प्रा दीहाउ<*दीर्घायु– । तृ —(१) अर्धमा चक्खुसा, (२) पा सप्पिना, अच्चिया (स्त्री = अर्चिषा), चक्खुना, अर्धमा जोइया = ज्योतिषा, अच्चीए (स्त्री) प्रा दीहाउणा, (३) निय धनुएन । प —(२) पा सप्पिम्हा । ष —(१) शौ आउसो, महा धनुहो, (२) पा सप्पिस्स, आयुस्स, चक्खुनो, अर्धमा आउस्स, चक्खुस्स । स —(२) पा. चक्खुम्हि, चक्खुस्मि, महा आउम्मि, चक्खुम्मि, (३) महा धणहे ।

---

१. या <*दर्शिवन्त्*दर्शिमन्त् ।

२ दिग्घायुसे भी; यह –आयुष्– का स , ए व भी हो सकता है ।

ब. व, प्र द्वि., नपुं,—(२) पा. (परवर्ती) चक्खूनि, अर्धमा चक्खू, प्रा चक्खूइ। प्र. पुं.—(२) अर्धमा. अणाऊ<अनायुष। तृ.—(२) पा. चक्खूहि, प्रा. चक्खूहिं। ष—(१) अर्धमा. जोइस<ज्योतिषाम्।

(ट) म. भा आ में पुमस्- (पुं) का पुम- हो गया है। इसके (१) परम्परा-प्राप्त तथा (२) नये बनाये रूप निम्नलिखित मिलते हैं।

प्र, ए व—(१) पुमा, अर्धमा. पुमं<पुमान्, (२) पा पुमो, अर्धमा. पुमे<*पुमः। द्वि, ए व— (२) अर्धमा. पुमं। प्र, ब. व—(२) पा. पुमा<ब. व. के लिये ए व अथवा <*पुम-)।

§ ६७ राजन् तथा आत्मन् को छोड शेप सब —अन् अन्त वाले प्रातिपदिक अकारान्त बनाये गये हैं। इस प्रकार—

ए व., प्र, द्वि., नपुं—(१) अशो. नाम, नामा, पा, प्रा. कम्म, नाम, निय. शिर्ष, भुम, (२) अशो (शा) क्रमं, (का. धौ., जौ) कमं, (गि, का, धौ, जौ) कंमे, पा, प्रा. कम्मं, प्रा नामं, कम्मे, महा कम्मनं<*कर्मण-। प्र. पुं—(१)पा. सा<श्वा, युवा, प्रा. जुवा -जुआ, मुद्धा, अद्धा, उच्छा<उक्षा, (२) निय. शुने<*शुन-, पल्लव अभि सिवखन्धवमो <शिवस्कन्दवर्मन्, अर्धमा. अकम्मो=अकर्मा, महा बम्भो, अर्धमा बम्भे। द्वि, पुं.—खरो. ध द्रिघमध्वन<दीर्घन् अध्वानम्, पा अद्धान, ब्रह्माणं, अर्धमा मुद्धाणं, (२) निय शुने (देखिये प्र), पा मुद्धं, बम्हं, माग. बम्हं, महा बम्भ, महिम=महिमानं, अद्धं (स्त्रीलिङ्ग भी अर्धमा)। तृ - अशो (धौ, जौ) कमना, पा कम्मना, कम्मुना, (१) ब्रह्मना, अद्धुना, मुद्धना, अर्धमा. कम्मणा, (२) निय नमेन, पा. कम्मेन, सुणे न<*शुन-, अर्धमा. कम्मेण, मुद्धेन मुद्धाणेनं, च—(१) अशो (धौ, जौ) कम्मने, (मा) क्रम्मने; (२) अशो (गि) कंमाय, (का) कंमाये,[1] (शा) क्रमये, निय. कमय। पं—(२) अर्धमा. कम्मुणाउ। ष.—(१) पा कम्मुनो, ब्रह्मनो, अद्धुनो अर्धमा. कम्मुणो, कम्मणो, (२) अशो (धौ, जौ.) कम्मस, निय. शिर्षअस, भुमस, पल्लव अभि भट्टिसम्मस 'भट्टिशर्मन् का', शौ. लद्धणामस्स =लब्धनाम्नः, अर्धमा बम्भस्स, मा कम्माह, प्रा कम्मस्स। स.—(१) पा. मुद्धनि, ब्रह्मनि, कम्मनि, शौ. कम्मणि, प्रा मुद्धि<मूर्ध्नि; (२) निय. भुमंमि<भूमन्-, अर्धमा मुद्धाणंसि<*मूर्धान-, कम्मसि, प्रा कम्मम्मि, कम्मे। सम्बो—(२) पा बम्हे=ब्रह्मन्।

---

१. स्त्रीलिङ्गी प्रत्यय सहित।

ब. व ; प्र –द्वि , नपुं—(१) अशो (टो आदि) कंमानि, खरो. व. कमनि, पा. कम्मानि, शौ कम्माणि, अर्धमा. कम्माइं, (२) अर्धमा. कम्मा। प्र , पुं —(२) पा सुवाना<*श्वान–, अर्धमा सुवाना, बम्भा । तृ—(२) पा कम्मेहि, सुवानेहि, अर्धमा. कम्मेहिं । ष —(१) अर्धमा कम्मुण; (२) अर्धमा कम्माणं—कम्माण, अप. कम्माहा । स.—(१) अर्धमा. कम्मसु; (२) पा , प्रा कम्मेसु ।

§ ६८ पन्थन्– प्रातिपदिक के म भा. आ मे निम्नलिखित रूप मिलते हैं, जिनमे (१) परम्परया प्राप्त थोडे से रूपो के अलावा शेष रूपो मे (२) पन्था– तथा (३) पथ– प्रातिपदिक है ।

ए व , प्र —(२) प्रा पन्थो, (३) पा. पथो, प्रा पहो । द्वि – पा., प्रा पन्थं<पन्थाम् (ऋ. म) या *पन्थम्, (३) प्रा पहं । तृ —(३) प्रा. पहेण –पहेण । पं —(२) प्रा पन्थाओ, पा पथा । ष —(३) पा. पथस्स । स —(१) खरो व महपथि, (२) पा पन्थस्मि, प्रा. पन्थे, अप पथि; (३) पा. पथे, महा पहम्मि ।

ब व , प्र —(१) अर्धमा पन्था<पन्थाः (ऋ. स), महा. पन्थानो । ष —(२) अर्धमा पन्थानं । स —(२) अशो (गि.) अर्धमा. पथेसु ।

§ ६९ राजन्– प्रातिपदिक के रूपो में (१) अनेक परम्परया प्राप्त रूप सुरक्षित हैं, तथा इनके अलावा विशिष्ट म. भा. आ. रूप तीन स्वरान्त प्रातिपदिको पर आधारित हैं—(२) राज–, (३) राजि– और (४) राजु–। अन्तिम दो प्रातिपदिक रूप वैकल्पिक (heteroclitic) प्रातिपदिक *राजर्– (मिलाइये अहन्–, अहर्–, ऊधन्–, ऊधर्– आदि) से बने होंगे अथवा ये पिति–, पितु– के सादृश्य पर बनाये गये होंगे ।

ए व , प्र —(१) अशो (गि) राजा, (शा , मा.) राज, (शा) रय; (का , धौ , जौ आदि) लाजा, (गि) योन–राजा, (शा., मा) –रज,(का., धौ , जौ) –लाजा=यवनराज –, पा राजा, प्रा राआ, पैशा. राचा; (२) निय. महरय, प्रा राओ । द्वि —(१) पा. राजानं, (२) प्रा. राअं । तृ —(१) अशो (गि) राजा, (शा) राञा, पा. रञ्ञा (प भी), प्रा रण्णा, पैशा रञ्ञा; (२) प्रा. राएण, (३) अशो (मा.) राजिन,[1] (का धौ., जौ) लाजिना, पा राजिना, प्रा राइणा, पैशा राचिना । ष —(१) अशो. (गि) राञो, (शा) रञो, पा , पैशा. रञ्ञो, प्रा रण्णो, (२) अर्धमा.

1 लाजिन भी (कम्म , नागार्जुन गुहा) ।

रायस्स, (३) अशो (का, धौ, जौ) लाजिने, (सुपारा) राजिन, पा. राजिनो, प्रा. राइणो, पैशा राचिञो। स —(२) प्रा. राए, (३) पा लाजिनि, नासिक गुहा राजिनो, प्रा राइम्मि।

व व. प्र —(१) अशो (गि.) राजानो, (शा) रजनो, रजनि, (मा) रजने, (का) लाजानो, (धौ, जौ, टो) लाजाने, पा. राजानो, प्रा. राआणो, (२) प्रा. राआ। द्वि —(१) पा राजानो, (२) प्रा. राआ,[1] राए। तृ –(२) प्रा. राएहिं, (३) अशो (टो) लाजीहि, प्रा राईहिं, (४) राजूहि। ष —(१) रञ्ञं, (२) प्रा राआण, (३) प्रा राईण, (४) पा राजूनं। स —(२) प्रा राएसुं, (३) प्रा राईसुं; (४) पा. राजूसु।

§ ७० आत्मन्–[2] प्रातिपदिक के रूप (१) परम्परया प्राप्त रूपो के अतिरिक्त निम्नलिखित विस्तारित प्रातिपदिको पर आधारित हैं—(२) *आत्म–, (३) *आत्मक–, (४) *आत्मम–, (५) *आत्मनक–, (६) *आत्मान–, (७) *आत्मानक–, (८) *आता– (स्त्री) और (९) *आताल–। नागार्जुन मे एक ही स्थल पर अतनो तथा अपनो (ष, पू व) रूप मिलते हैं।

ए व; प्र.—(१) अशो (मा, सिद्ध) महात्पा, पा, प्रा अत्ता, प्रा अप्पा; (२) निय. महत्व, प्रा अप्पो; (३) अप अप्पउ, (४) प्रा अप्पणो, (६) अप्पाणो, अत्ताणो, (८) जैन शौ. आदा, अर्धमा आया, (९) अर्धमा आयाणे। द्वि —(१) अशो (धौ, जौ) अतानं, खरो ष अत्मन, पा अत्तानं, आतुमानं, प्रा. अत्ताणं, अप्पाण, (२) पा अत्तं, अर्धमा अप्प, (३) अर्धमा अप्पय, अप अप्पउ, (४) अप अप्पण, (७) प्रा अत्ताणअ, अप्पाणअ, अप. अप्पणउ, (९) अर्धमा आयाण। तृ —(१) अशो (टो. आदि) अतना, (बैराट) महतनेव (=महतना+एव), पा अत्तना, प्रा अप्पणा, (२) अशो (सिद्ध) महत्पेनेव (=महत्पेन+एव), महा अप्पेणं–अप्पेण, (४) अप्पणेण, अप अप्पणे, (६) अर्धमा अप्पाणेण; (८) अर्धमा आयाए (स्त्री.)। पं —(१) पा. अत्तना (देखिये तृ); (८) अर्धमा आयाओ<*आतात। ष —(१) अशो. (धौ, जौ.) अतने, खरो ध अत्मनो, पा. अत्तनो, प्रा अत्तणो, अप्पणो, (२) निय. महत्वस, अप अप्पहो, (४)

---

१ द्वि के लिये प्र।

२. –त्म्–> –त्त्– (प्राच्य-मध्य), –प्प्–(सामान्यत पश्चिमी) तथा –त्– (जैन प्रा मे –त्त्– तथा –त्व् के समिश्रण से)।

शौ अत्तन-केरक,[1] मा. +केलक,[1] (६) प्रा अप्पाणस्स, (७) प्रा. अप्पाणअस्स, मा. अत्ताणअस्स । स —(२) अर्धमा. अप्पे, (६) महा. अप्पाणे ।

ब व ; प्र.—(१) पा अत्तानो, प्रा अप्पनो, (२) खरो. ध. अनत्म<*अनात्माः=अनात्मनः, महा अप्पा, (६) प्रा. अप्पाणा, (९) अर्धमा. आयाणा ।

§ ७१ –इन् (–विन्, –मिन्) अन्त वाले प्रातिपदिकों की रूप-प्रक्रिया को म भा आ. भाषा की एकमात्र जीवित व्यञ्जनान्त रूप-प्रक्रिया कहा जा सकता है। इकारान्त के साथ इन रूपों का घालमेल होना अवश्यभावी था, परन्तु प्रारम्भिक म भा आ. में ऐसे रूप नगण्य हैं। अकारान्त का प्रभाव बहुत पहले से पडने लगा था और यह सबसे पहले उत्तर-पश्चिमी विभाषीय वर्ग में ।

ए. व , प्र , पुं —अशो पियदसी, पियदसि<प्रियदर्शी, खरो ध. जइ <ध्यायी, शेथि<श्रेष्ठी, जितवि<*-जितावी=जितवान्, मेधवि, मेधावि, धमयरि<धर्मचारी, निय. सछि<साक्षी, अवरधि<अपराधी, पा हत्थि, प्रा. हत्थी । द्वि , पुं.—(१) पा हत्थिनं, (२) निय सछि, प्रा , पा हत्थि । तृ —अशो पियदसिना, –दसिणा, (ब्रह्म., जतिंगा-रामेश्वर) अन्ते–वासिना, पा. हत्थिना (प. भी) । च – अशो (का , धौ., जौ) पियदसिने, (मा) प्रियद्रशिने, अशो (जतिंगा-रामेश्वर) अन्तेवासिने[2], पं —(१) पा. हत्थिना (देखिये तृ), (२) पा हत्थिम्हा । ष —(१) अशो. (गि)प्रियदसिनो, खरो. ध. धमजिविनो, व्रिधवयरिनो<वृद्धोपचारिणः, रतिविवसिन<रात्रिविवासिनः, पा , प्रा. हत्थिनो; (२) अशो. (शा , मा) प्रियद्रशिस–प्रिअद्रशिस, (का.) पियदसिसा, नागार्जुन गंधहथिस (–हथिस), खरो. ध. एकपननुप्रविस =एकप्राणानुकम्पिन[3], पा प्रा. हत्थिस्स; (४) ष. के लिये प्रातिपदिक-रूप का प्रयोग (एक शिथिल समास के रूप में)—खरो. ध. गेहि[4]=गृहिणः, अप.

---

१. परसर्ग ।

२. तृ के लिये प्रयुक्त ।

३ अहिववनशिलिस सभवत. अहिंवदनशिलस के लिये गलती से लिखा गया है ।

४ यस एदविश यण गिहि पवइदस वा=यस्य एतादृशं यानं गृही प्रव्रजितस्य वा ।

अत्थि[1] = अर्थिनः (च -प)। स.—(१) पा हत्थिनि; (२) पा हत्थिम्हि, हत्थिस्मि, महा सिहरिम्मि = शिखरिणि।

ब व; प्र., पुं—(१) खरो ध अनवेहिनो <अनपेक्षिणः, द्रुमेघिनो <*दुर्मेधिन, पा, प्रा, हत्थिनो; (२) नानाघाट हथी, निय सखि, पा, प्रा. हत्थी, प्रा. सामी (ओ)। प्र, नपुं.—अशो (टो आदि) आसीनवगामीनि। द्वि., पुं. (द्वि के लिये प्र)—(१) अशो. (शा.) हस्तिनो, (मा) हस्तिने, (का, धौ) हथीनि, खरो. ध. सोइनो<शोकिनः, पा., प्रा हत्थिनो; (२) ऊपर दिये प्र. रूपो के समान। तृ—पा. हत्थीहि, अर्धमा पक्खीहिं। ष—पा. हत्थीन, अर्धमा. पक्खीणं–पक्खीण। स—पा, प्रा हत्थीसु।

§ ७२. म भा आ भाषा मे -अन्त् (-अत्) अन्त वाले वर्तमानकालिक कृदन्त (Present Participle) प्रातिपदिको को द्वि, ए. व. अथवा प्र., ब. व. के रूप के आधार पर अकारान्त बना दिया गया है। प्रारम्भिक म. भा आ. की कुछ विभाषाओ मे परम्परया प्राप्त प्र, ए. व. का रूप (अधिकाश मे -अत् अन्त वाले प्रातिपदिको का, विभक्ति-प्रत्यय को सुरक्षित रखते हुये -त् के लोप सहित) यत्र-तत्र मिल जाता है। ष, ए व को छोड़ अन्य परम्परागत रूप सस्कृत-प्रभाव द्योतित करते है।

ए व, प्र, पुं—(१) अशो. (गि) करं-करु(<*करोन्त) = कुर्वन्, खरो ध परियर<परिचरन्, पा जीवं, भणं, अरह[2], अर्धमा. जाणं, कुव्व <कुर्वन्, चिट्ठ<तिष्ठन्; (२) खरो ध. अपशु = अपश्यन्, अनुविचितओ = अनुविचिन्तयन्, स्पिहओ = स्पृहयन्, अनुस्मरो = अनुस्मरन्, मुञ्चु (<*मुञ्चन्त्स) = मुञ्चन्, पा. पस्सो, जानो[3], (३) अशो (गि) सतो, (मा, का.) सत = सन्, करातो, करोतो = कुर्वन्, निय जीवतो, जयत, अरहत, पा. कन्दन्तो, महा. कुणन्तो = कृण्वन् (ऋ. स), शौ करेन्तो, अर्धमा देन्तो = ददन्, मा. पदचन्दे = पृच्छन्, अप हसन्तु, उल्लसन्त, जगन्तो <*जाग्रन्त-। प्र -द्वि., नपु—(२) पा, अर्धमा असं (नपु के लिये पु) = असत्, अशो (शा, का., धौ, जौ) सतं, (या.) संत = सत् (शा, मा) करंत-

---

१. सरह के दोहे 'अथिन दिअउ दान' मे अथि को द्वि का रूप भी मानना चाहिये।

२. अरहा भी जो -अन् प्रातिपादिक का प्रभाव द्योतित करता है; मिलाइये अर्धमा अरहा।

३. अर्धमा. अजाणओ<अजानत अथवा प्र. के लिये ष.।

करतं, (का , धौ , जौ., मस्की) कलंत=कुर्वत्, पा असत, शौ दीसत। द्वि , पुं —(३) निय. जिवत, पा वसन्तं, करन्त, प्रा सन्तं, जाणतं, अप. दारेन्तु। तृ —(१) खरो ध असता, पा असत, पा इच्छता; (३) शौ. करन्तेण, महा कुणन्तेण=कुर्वता, मा गश्चन्तेन, अर्धमा अनुकंपतेन, अप. भमन्तें, रोअन्तें। ष —(१) खरो ध पशतु, पशतो<पश्यत , विवशतु <विपश्यत , झयतु<ध्यायत , अझयतो<अध्यायत , विअनतु<विजानत , पा पस्सतो, करोतो, सतो, अर्धमा करओ<*करत =कुर्वत , अनुकुव्वओ <अनुकुर्वत , (३) अशो (गा) अशतस=अश्नत , निय जियतस, पा. पस्सन्तस्स, अनुकुव्वस्स<*अनुकुर्वस्य, महा कुणन्तस्स, प्रा करेन्तस्स, वसन्तस्स, अप करन्तहो। स —(१) पा सति, शौ सदि, (३) पा सन्ते, कन्दन्ते, अरहतम्हि, अर्धमा सन्ते, अरहतंसि, महा होन्तम्मि<*भवन्तस्मिन्, अप पसवन्ते=प्रसवति।

ब व , प्र.—(१) अशो. (गि) तिस्टतो, पा. सन्तो, इच्छतो =इच्छन्त , (३) पा. पस्सन्ता, सन्ता, अर्धमा. हरेन्ता, अरहन्ता, प्रा. खेलन्ता, अप होन्ता। द्वि. पुं—(३) निक्खमन्ते, महा उण्णमन्ते, अर्धमा समारंभते, अरहन्ते। तृ —(१) पा सब्भि<सद्भिः; (३) अशो (निगलिवा) भदन्तेहि प्रा. भणन्तेहिं—भणन्तेहिं, अप निवसन्तेहिं। ष —(१) पा करोतं, कुरुत=कुर्वताम्, विजानतं, अरहतं, (२) खारवेल अभि., पा अरहन्तानं, पा. नदन्तान, अर्धमा सन्तान, अरहन्ताण, मा अलिहन्ताण, प्रा नमन्ताणं, अप. णवन्ताहँ, पेच्छन्ताण। स —(३) पा. सन्तेसु, प्रा गच्छन्तेसु।

§ ७३ पालि तथा शौरसेनी मे भवन्त्– का आदरार्थक मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम के रूप मे प्रयोग सस्कृत-प्रभाव का सूचक है, इसके सम्बो का रूप भो पहले से ही सम्बोधन का अव्यय-पद वन चुका था। भवन्त्– के निम्न-लिखित रूप मिलते हैं।

ए व ; प्र —पा , शौ भव<भवान्। द्वि.—पा भवन्त। तृ —पा भोता, शौ. भवदा। ष —पा भोतो, शौ भवदो। सम्बो —भवं<भवन्, भो <भो <भवस्।

ब व , प्र —पा. भोन्तो, भवन्तो। द्वि —पा भवन्ते। तृ —भवन्तेहि। ष.– पा भवतं।

§ ७४ महन्त् प्रातिपदिक (जो मूलत· मह्– का वर्तमान-कालिक कृदन्त रूप था, परन्तु प्रा. भा. आ. मे एक साधारण विशेषण पद बन गया था) के

रूपो मे महा– प्रातिपदिक के आधार पर बने रूप भी शामिल हैं (महा– प्रातिपदिक मूलत महन्–[1] का प्र., ए. व. का रूप था)।

ए. व, प्र.—(१)[2] निय. महंतो, पा. महन्तो। प्र. –द्वि., नपुं.—अर्धमा. महं<महत्[3]। द्वि.—(१) निय. महंत, प्रा. महन्तं, (२)[4] अर्धमा. महं<*महास्। तृ.—(१) पा. महन्तेन, (२) अर्धमा. महया<महा– (पुं. और स्त्री), (३) पा. महता[5]। ष.—(१) निय. महंतस; (३) अर्धमा. महयो–महओ<महतः।

ब. व; प्र. –द्वि., नपुं.—(१) अर्धमा. महन्ताइं। प्र.—(१) महंते, महंति। द्वि.—(२) पा महन्ते।

§ ७५. –वन्त् तथा –मन्त् मे अन्त होने वाले स्वामित्ववाची विशेषणो के रूप –न्त् अन्त वाले वर्तमानकालिक कृदन्तो की तरह बनते है।

ए व; प्र, पुं (१)[6] अशो. (रुम्मनदेई) भगवं<भगवान्, खरो. ध. वतव<व्रतवान्, शिलवान्, चक्षुम, चखुम<*चक्षुष्मा ब्रमयियव<ब्रह्मचर्यवान्, भयदसिम<*भयदर्शिमा (न्), पा. चक्खुमा, अर्धमा. भगवं·भअवं, चक्खुमं, महा हणुमा; (२)[7] अर्धमा हणुमे<*हनुमस् जैन महा. भगवो<भगवः (सम्बो, ऋ स); (३)[8] खरो. ध. सिलमतु<*शीलमन्तः, निय. (व्यक्तिवाचक नाम) पुंञवंत, विर्यदन्द, प्रा. गुणवन्तो, अप. गुणवन्त। प्र. –द्वि., नपुं—(१) पा. ओजवं<ओजवन्त, (३) पा. वण्णवन्तं, अप. घणमन्त। द्वि., पुं.—पा. सतिम=स्मृतिमन्तम्, अर्धमा. भगव (प्र. भगवो के सादृश्य पर)। तृ.—(१) अशो. (मा.) भगवता, पा. चक्खुमता, प्रा. भअवदा–

---

१. मिलाइये ऋ. स. महना, तृ., ए. व.; महा– सामासिक पदो मे पूर्वपद के रूप मे आता है, अन्तिम पद के रूप मे यह मह– हो जाता है। जैसे—महाराज–, पितामह– (<भारत-यूरोपीय *मेड्घ्–)।

२ विस्तारित अकारान्त प्रातिपदिक महन्त– से।

३. अकारान्त के साथ समिश्रण से।

४. *महा प्रातिपदिक से।

५ परम्परागत रूप।

६. परम्परागत रूप, अन्तिम न् का लोप करते हुये या इसे म् मे बदलते हुये।

प्राग्भारतीय-आर्य प्रातिपदिक, –स् प्रत्यय को सुरक्षित रखते हुये।

८ विस्तारित अकारान्त प्रातिपदिक से।

पांच | सर्वनाम-शब्द-रूप-प्रक्रिया

§ ७६ म. भा. आ. भाषा मे पुरुषवाचक सर्वनामो (Personal Pronouns) के विविध विभाषीय रूप मिलते हैं, विशेषत अशोकी प्राकृतो मे। इनमे से कुछ नवीन रूप विशेषणों से विकसित हुये हैं, जैसे—भारत-ईरानी सम्बन्ध-बोधक (Possessive) सर्वनाम *अस्माक–, *युष्माक–, प्रा भा. आ. ममक–, मामक–, मामिका–, (स्त्री.), माकीन– (ऋ. स०), तावक–। अन्य रूप सादृश्य अथवा समिश्रण के परिणाम हैं।

§ ७७ प्रथम पुरुष सर्वनाम के रूपो मे निम्नलिखित दस प्रातिपदिक शामिल है जिनकी व्युत्पत्ति भारत-यूरोपीय *एघो–, *मे(इ)–, *वेइ– और *नोस्– (प्रा भा आ. अह–, म (य्), वय्–, न और अस्म–) से है—(१) अहम् तथा इसका न्यूनताबोधक एव स्वार्थे—क प्रत्यय द्वारा विस्तारित रूप अहकम् तथा आद्यक्षर-लोप से इनके रूप *हम् और *हकम् एव इसका भी विस्तारित रूप *हमि; (२) म–, मा– (मा, माम्, मे, मत्, मया, मयि रूपो से); (३) ममि– जो या तो म– का विस्तारित रूप है अथवा ममा– से है, हमि[1] से तुलना करने पर लगता है कि संभवतः इसकी व्युत्पत्ति ममा– से ही है; (४)मय- जो मया, मयि से लिया गया है, (५)मम– जो प्रा भा. आ. मे भी प्रातिपदिक है, जैसे ऋ. स० ममत् (प० ?), ममक, ममता, आदि, (६) *मभ्य– अथवा *मभ– (अवे. मइब्या, मइब्यो, मिलाइये अवे तइब्या, तइब्यो प्रा भा. आ तुभ्यम्, लैटिन तिबि, उम्ब्रियन तेफे); (७) मह्य– (ऋ स. मह्य–, मह्यम् से); (८) अस् धातु के प्रथम पुरुष ए व. के रूप अस्मि को ब व के प्रातिपदिक रूप अस्म– से दृढ कर परवर्ती म. भा

---

१. *ममि–, *हमि मे –इ– की तुलना प्रा. भा आ मे+इ=मयि, त्वे+इ=त्वयि (ऋ स. के बाद का रूप) से की जा सकती है, जो सप्तमी के दुहरे रूप हैं।

आ. मे प्र , ए व के प्रातिपदिक के रूप मे ग्रहण किया गया है; अपाणिनीय सस्कृत मे अस्मि का प्रयोग अहम् के स्थान पर मिलता है[1] और आद्यक्षर-लोप से इसका म भा. आ रूप म्हि को अहम् के अर्थ मे लिया गया है, जैसे जादो म्हि<जातोऽस्मि ; (९) अस्म– (व व , च. अस्मभ्यम्, प अस्मत्, स च क्ष्द स अस्मे से), (१०) न– (ब व) जो द्वि. व नौ तथा ब. व. नः से हे।

१. प्रथम पुरुष सर्वनाम

ए व , प्र – (१ क) अशो (गि , शा , मा), पा , निय., प्रा अहम् <अहम् , खरो घ अहु (अहो भी), निय अहु (अहुं भी)<*अह ; (१ ख) अश्वघोप अहकं, महा अहयं– अहअं<अहकम्[2], माग , पा अहके<*अहक , (१ ग) अशो (धौ ; जौ , रुम्म) –हं[3], प्रा हं <*हम् ; (१ घ) अशो (का , धौ , जौ , टो आदि) हकं, अप हओं[4]<*हकम्, मा , पै. हक्के-हके, हग्गे –हगे <हक , (५) निय मम (प्र. के लिये ष), अप मो<मम, (८) प्रा. अम्हे (देखिये व व), अम्हि (क्रमदीश्वर), म्मि (हेमचन्द्र) <अस्मे, (अ)स्मि ; प्रा अहम्मि (वररुचि, मार्कण्डेय), हम्मि (पुरुषोत्तम) <(अ)हम्+(अ)स्मि । द्वि—(१) निय अहु-अहुं, अहं (द्वि के लिये प्र); (२) अशो (टो आदि), पा., प्रा मं<माम्, (३) अर्धमा. ममिं[5], अप. मइं (मइ[6], मइ<*ममिं-ममि), (५) पा , प्रा ममं<*ममम् या मम+माम्, (७) अर्धमा , महा महं (द्वि के लिये च –ष) <*मभ्यम् –मभम्=मह्यम् , (८) प्रा अम्हि(क्रमदीश्वर, द्वि के लिये प्र.)। तृ —(१) अशो (भा) हमियाये (=हं+ममियाये), (२) अशो (का , धौ , रधिया मथिया), पा , प्रा मे (तृ के लिये भारोपीय स तथा प्रा भा आ. च)

---

१ वाकरनागेल, III, § 224 fa

२ पतञ्जलि द्वारा उल्लिखित (वाकरनागेल III, पृ ४४६), जिससे इसकी प्राच्य अथवा प्राच्य-मध्य उत्पत्ति की पुष्टि होती है।

३ क्रियापद आलभे-हं मे मिलाइये (भा.) आलहामि हकं ।

४ हमुं (क्रमदीश्वर) भी ।

५ स्त्रीलिङ्ग द्वि (पिशेल §४१८) मम के सादृश्य पर, परन्तु अशो. मे ममि है (स्त्रीलिङ्ग नही) ।

६ अइं (क्रमदीश्वर) रूप यदि मइं के स्थान मे गलती से नही लिखा गया है तो सभवत द्विवचन के प्रातिपदिक आव से निष्पन्न हुआ है।

<मे ; (३) अशो. (टो.) ममिया<*ममि-+-या, अशो. (जौ.) ममियाये = ममिया+-ये (च -.प.-स. स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय); (४) अशो (गि., मा), पा. मया, अशो. (शा., मा.), निय मय, प्रा. मए<मया, प्रा. मयि<मया या मयि (स.); (५) अशो. (का., धौ , जौ , टो., भा.) ममया <मम+ -या अथवा मम+मया, अशो. (धौ) ममाये<मम- + -यैं (च -प. -स स्त्रीलिङ्ग) मिलाइये अप ममये (स.) । च —बौ स० हमि (महावस्तु) पं०—(२) प्रा. मत्तो<मत्त ; (४) प्रा. मइत्तो<मया+मत्त , (५) प्रा. ममादो–ममाओ, शौ. ममादु (क्रमदीश्वर) <*ममात्+तः, प्रा. ममाहि (क्रमदीश्वर, मिलाइये उत्तराहि), अर्धमा. ममंहितो<मम- +*-भिम्+ तः); (६) अप महुं <*मभ्यम् (प. के लिये च.-ष); (७) अप. मज्झ <मह्यम् (प. के लिये च. -प) । ष.—(१) अशो. (भा) हमा <(अ) हम्+मा(म्) या मम , (२) अशो (गि , शा., मा , का, भा), पा., प्रा. मे, खरो. ध. मि<मे , (३) अशो मई<*मइम् , (४) अशो. (शा., मा.) मअ[१], निय. मया<मया (ष. के लिये तृ.); (५) अशो (गि , कौशा. रधिया, मथिया, रुम्म), निय., पा , प्रा. मम, अशो (का , धौ , टी.) ममा<मम-, अशो (जौ), पा., प्रा. मम<*ममम् ; (६) प्रा मह-मह, अप महु< मभ्यम्-मभम्=मह्यम् , (७) वारदाक महिथ, निय महि, पा. मय्हं, प्रा. मज्झ-मज्झ<मह्यम् (महाभारत मे भी प्राय ष के लिये), अप मज्झु< मह्यम् । स —(३) अप. मई<*ममिम् या मया+एन (स. के लिये द्वि. या तृ), (४) पा. मयि, प्रा. मइ<मयि' प्रा. मए<मया (स के लिये तृ.); (५) महा. ममस्मि, अर्धमा ममसि(क्रमदीश्वर) <*ममास्मिन्, अप. ममये (हेमचन्द्र) <मम+ -ये (स्त्री-प्रत्यय) ।

ब व.; प्र.—निय वयं (वेयं, वेय भी), प्रा. वय वअं <वयम् ; अशो. (धौ , जौ) मये, पा. मय <वयम्[२]; (१ क) माग. अस्मे<ऋ. स अस्मे (स -च से विस्तारित); (१ ख) अस्म->अम्ह-, पल्लव अम्हो, पा , प्रा., अप. अम्हे<अस्मे, अप अम्हइ<अस्म+-एन(तृ),(१ ग)अस्म- >अम्ह- >अम्भ-, अप. अम्भे<अस्मे, (१ घ) अस्म- >अम्ह- >अम्भ- >अब्भ-, प्रा. भे (चण्ड)[३] <(अ)स्मे , (१ ङ) अस्म- >अम्ह- >अम्भ-, पं

---

१. यह मह<*मभ्यम्-मभम् के स्थान मे भी हो सकता है ।

२. व्- >म्- मम, मे, मह्यम् आदि के प्रभाव से ।

३. सभी विभक्तियो मे (पिशेल § ४१८) ।

अम्फ (क्रमदीश्वर) <*अस्मम् (मिलाइये प. अम्ह, अम्हं)। द्वि —(६ क) मा अस्मे (देखिये प्र), (६ ख) शौ अस्हे, महा. अम्ह, अर्धमा अम्हइं (प्र., व व भी), पा अम्हाकं (<अस्माकम्), निय अस्मगेन (<*अस्मा-केनाम्), प्रा अम्हेहि (क्रमदीश्वर, <*अस्मेनाम् या *अस्मेना), अप. अम्हहं (<*अस्मसाम्, द्वि के लिये स), (६ ङ) अशो (धौ) अफे, (जौ) अफेनि[1] <अस्मे, (१०) अशो (का, धौ, जौ) ने, पा नो, माग अर्धमा णे, शौ. -महा. णो <न। तृ.—(६) निय अस्मभि, माग. अस्मेहिं, पा. अम्हेहि, प्रा. अम्हेहिं-अम्हेहि, अप अम्हेहिं<*अस्मेभि *अस्मेभिम् = अस्माभिः; (१०)पा नो, अर्धमा णे (देखिये द्वि)। पं —(६) अप अम्ह (क्रमदीश्वर) <अस्मत्, प्रा. अम्हेहिंतो, अम्हाहिंतो, अम्हासुंतो। प.—(७) प्रा मज्झाणं (क्रमदीश्वर) <मह्यानाम्, (८) अशो (धौ) अफाकं, निय अस्मग, पा अम्हाकं, अस्माकं, निय अस्मेहि (प. के लिये तृ), निय अस्मह्-अमह्, <अप अम्हहु <अस्म- + *सस् (प, ए. व अथवा*अस्मभः), प्रा. अम्हाण-अम्हाण, माग अस्माण = अस्मभ्यम्. अप. अम्हहं <*अस्म-साम् (प, व व.), पा अम्हं, प्रा अम्हं-अम्ह, अप अम्ह <*अस्माम् या अस्मत् (प के लिये प), अर्धमा अम्हे (प. के लिये च -स), अप अम्हार-[2] (पुरुषोत्तम)<अस्म+ -आर (?), (१०) अशो (का, धौ, जौ) ने, पा नो, प्रा. णो, णे<न। स —(६) अशो (धौ, जौ) अफेसु, अफेसु, पा अम्हेसु, प्रा अम्हेसुं-अम्हेसु<*अस्मेषु, अप अम्हासु<अस्मासु।

२. मध्यम पुरुष सर्वनाम

§ ७८ मध्यम पुरुष सर्वनाम की रूप-रचना-प्रणाली के अन्तर्गत (१) ऐतिहासिक रूपो के अतिरिक्त, नये रूप तथा पुराने प्रातिपदिको के अवशेषो के आधार पर बने रूप, (२) त्व- तथा (२ क) इसका ह्रस्वीकृत रूप तु-, तथा इसके विस्तारित रूप, (२ ख) *तुम-तुम्-, (२ ग)* तुस-, (२ घ)* तुष्म-, (२ ङ)*तुह्य-, और (२ च) तुभ्य-, (३) यु- तथा इसके विस्तारित रूप (३ क) युष्म-, (३ ख)* युह्य- तथा (३ ग) *युभ्य- प्रातिपदिक के तौर पर शामिल हैं। ऐतिहासिक रूप से यु- तथा व-

---

१ -नि के लिये मिलाइये ग्रीक (आर्केडियन) तो-नि (प, ए व), तान्-नि (द्वि, स्त्रीलिङ्ग)।

२ स्वामित्ववाचक विशेषण (Possessive Adjective)।

प्रातिपदिक द्वि. व. और ब. व के थे तथा त–, त्व– प्रातिपदिक ए. व. के थे, परन्तु म भा आ ने यह भेद नहीं रखा।

ए व.; प्र.—(१) निय. तुओ <*तुव=तुवम्, पा., बौ. स. तुव, प्रा. तुं=त्वम् (अनेकाक्षर=ऋ स. तुअम् (तुवम्), मिलाइये प्रा फा. तुवम्, अवे. तूम्, पा त्वं, प्रा. तं <त्वम् (एकाक्षर), (२ क) निय. तु <भारत-ईरानी *तू, मिलाइये अवे. तू; (२ ख) प्रा तुमं (द्वि से), (२ ग) प्रा., अप तुहं-तुह; अप– तुहुँ <*तुषाम्, *तुसुम् (प.–स, ब. व); (३) प्रा. सि <असि (अस् धातु का म. पु., ए. व.)। द्वि—(१) पा. प्रा तं <त्वाम् (एकाक्षर), मिलाइये प्रा. फा. थुवाम्, अवे थ्वम्, प्रा. तुं (प्र से); (२) प्रा. ते, दे <त्वे (ऋ स, स), अप. तइं, पइं[1] <*त्वयिम् (देखिये तृ) प्रा तुए<त्वया; (२ ख) प्रा तुमे <त्वे। तृ.—(१) पा. त्वया-तया, प्रा. तए<त्वया, प्रा तई<त्वयि (स), पा. ते, प्रा. ते-दे<ऋ. स. त्वे (स), (२) अप तइँ-पइँ[2] <*त्वयेन; (२ क) प्रा तुए, तुइ <*तुया, तुयि; (२ ख) प्रा तुमए, तुमाइ <*तुम– + –(आ)यै (स्त्रीलिङ्ग); (२ घ) अप तुम्हइँ (द्वि भी)<*तुष्माभि (ए. व के लिये ब व)। प—(१)पा. तत्तो <त्वत्तः, प्रा. तइत्तो <त्वयि+त्वत्त; (२ क) प्रा. तुइत्तो <*तुइ+त्वत्त, (२ ख) प्रा. तुमाओ, तुमादु-तुमाउ<*तुमात्+त, प्रा. तुमाहु <*तुमासु (स)। प्रा तुमाहि (मिलाइये उत्तराहि); (२ ग) अप. तुह <*तुसः (प. से), (२ ङ) अप तुज्झ (देखिये प); (२ च) अप तुब्भ <तुभ्यम्। ष—(१) निय., पा, प्रा तव, अप. तुउ (तौ भी, मिलाइये निय. तोमि[3]) <तव, पा तवं <तव+त्वम्, पा ते, प्रा ते (दे) <ते, (२) निय. तहि <*त्वधि या त्वाभि– (स. –तृ से), (२ क) निय तुस-तुस्य[4] <*तुष्य, तुव, तुम[5] <*तु+तव, तुइ <*तुयि (स से), (२ ख) प्रा. तुमो <*तुमः=तव, तुमाइ (देखिये तृ), लका तुमह; (२ ग) अप. तुह <*तुस=तव, प्रा तुहे, तुहु, तुह, अप तुहुँ <*तुसुं–तुसुं (स., ब. व. से), (२ घ) पा. तुम्हं, प्रा तुम्ह, तुम्हो, तुम्हे, तुम्म <*तुष्मम्, *तुष्मः,

---

१. त्व्– >त्प्– विभाषीय परिवर्तन।

२ Burrow § 79 और अनुक्रमणी।

३. प्र के रूप मे भी प्रयुक्त।

४. तुमम् से प्रभावित।

५. अवहट्ठ मे प्र. भी।

*तुष्मत् (प , ब. ब. से); (२ ङ) पा. तुय्हं, प्रा तुज्झ-तुम्ह, अप तुज्झ, तुज्झु<*तुह्य-मह्यम् के सादृश्य पर), अप तुज्झह<*तुह्य+ –स या –स (प), (२ च) प्रा , अप तुब्भं-तुब्भ<तुभ्य(म्); (३ क) प्रा. उम्म <युष्मत् (पं), *युष्म(म्); (३ ख) उज्झ, उय्ह <*युय्हम् (मह्यम् के सादृश्य पर), (३ ग) प्रा उब्भ <*युभ्य(म्)=तुभ्यम् ; (४) अप तेसउ। स —(१) पा. त्वयि-त्तयि, प्रा. तइ (तए भी) <त्वयि, प्रा तुव्-तु, तुएइ-तुवेइ<त्वे (ऋ. स); (२) प्रा तुवम्मि <*त्वस्मिन्, अप तइँ-पइँ (देखिये तृ); (२ क) प्रा तुम्मि[१] <*तुष्मिम्, (२ ख) प्रा तुमए, तुमाइ (देखिये तृ); अर्धमा तुमसि, प्रा. तुमस्मि (क्रमदीश्वर) <*तुमस्मिन् ।

ब व ; प्र —(२ घ) अशो (धौ , जौ., सुपारा) तुफे, पा , प्रा , अप. तुम्हे, तुम्भे, तुम्म <*तुष्मे, पं तुम्फ, तुपफ (क्रमदीश्वर) <*तुष्म–, (२ ङ) पा तुज्झे (द्वि से), (२ च) प्रा तुब्भ <तुभ्य–, (३ ख) माग उय्हे <*युह्य–, (३ ग) अशो (जौ) फे, प्रा भे[२] (देखिये प , ए व उभ) <*युभ्य– । द्वि—(१) अशो (जौ., भा , मस्की) वे, पा , प्रा वो <व , (२ घ) अशो (जौ) तुफेनि[३], प्रा तुम्हे, पा तुम्हाकं (प से), अप तुम्हहं <*तुष्मासाम् (प), (२ ङ) प्रा. तुज्झे <*तुह्य=युष्मे (ऋ म , स), (३) खरो घ यु <भारत-ईरानी *यूस्, मिलाइये अवे. यूश् (ह्रस्वीकृत द्वि , ब व), (३ ङ) पा भे, प्रा म्हे (वासुदेव-हिण्डी मे द्वि , तृ और प , ब व) (देखिये प्र.), । तृ —(१) पा वो <व (तृ के लिये द्वि –च –प का रूप); (२ घ) अशो (धौ , जौ) तुफेहि, पा तुम्हेहि, प्रा तुम्हेहिं-तुम्हेहि, तुम्मेहिं (–हिं), अप. तुम्हेहिँ <तुष्म–; (२ ट) तुज्झेहि (–हिं) <*तुह्य , (२ च) प्रा. तुभेहि (–हिँ) <*तुभ्य–; (३ ख) माग उय्हेहि (–हिं) <*युह्य–, (३ ग) प्रा भे (देखिये प्र) । च —(१) अशो (जौ , भा , मस्की) वे <व । पं.—(२ घ) अप. तुमाए । प —(१) पा., प्रा वो <व , (२) प्रा तुवाण (–णं) <*त्वानाम्, <*तुवानाम्; (२ ख) प्रा तुमाण (–णं) <*तुमानाम्, (२ ग) प्रा

---

१ यु– के लोप के लिये मिलाइये अवे रुमइब्या, रुमावोया (च. ब. व.) ।

२ देखिये प्रथम पुरुष सर्वनाम का द्वि , ब व. अफेनि ।

३. युष्मु भी पढिये (Burrow § 79) ।

तुहाण (–ण) <*तुषाणाम्, (२ घ) अशो. (धौ, जौ., रुम्म) तुफाक, (सुपारा) तुफाकं, (रुम्म.) तुपक, निय. तुस्मग, तुस्मकं, पा. तुम्हाकं <*तुष्मास्म्=युष्माकम्, प्रा. तुम्हाण (–ण) <*तुष्माणाम्, अप. तुम्हहं (प. भी) <*तुष्मासाम् निय तुमहु, तुस्महु <*तुष्मासु (स.) या *तुष्मभ्यम् (च –प.), पा तुम्हं, प्रा. तुम्ह (–हं), अप तुम्ह, तुब्भं (प. भी) <*तुष्मत् (पं.) या *तुष्मम्; (२ ङ) प्रा. तुह्याण (–णं) <*तुह्यानाम्, तुज्झ (–ज्झं) <*तुहह्यम्; (२ च) प्रा तुब्भ (–भं) <तुभ्यम्, तुब्भे <*तुभ्यः, तुब्भा <*तुभ्यात्; (३) खरो. ध. यु (देखिये द्वि.); (३ क) निय युष्म[1] <*युष्मत् (ष के लिये प.); (३ ग) प्रा. भे (देखिये प्र)।
स.—(२) प्रा तुवेसु <*त्वेषु या *तुवेषु; (२ क) प्रा. तुसु <*तुषु, (२ ख) प्रा. तुमेसु; (२ ग) प्रा. तुहेसु <*तुषेषु; (२ घ) अशो. (धौ., (जौ) तुफेसु; प्रा. तुम्हेसु (–सुं), तुम्भिसुं <*तुष्मेषु (–षुम्), प्रा., अप. तुम्हासु <*तुष्मासु=युष्मासु; (२ ङ) प्रा तुज्झेसु (–सुं), तुज्झिसु (–सुं) <*तुह्य–, (२ च) प्रा. तुब्भेसु<तुभ्य–।

३. संकेतवाचक (Demonstrative) सर्वनाम

§ ७९. म भा आ. भाषा मे सामान्य सकेतवाचक सर्वनाम त– (स–) के विभिन्न प्रातिपदिको का विभाजन प्रा. भा आ के समान है, अर्थात् केवल पुंलिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग प्रथमा मे स– तथा अन्यत्र त–। पुलिङ्ग प्रथमा स का विस्तार नपुसक लिङ्ग प्रथमा-द्वितीया मे कर दिया गया है। परम्परया-प्राप्त स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक ता– के अलावा ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिको के सादृश्य पर *ती–[2] प्रातिपदिक का भी प्रयोग किया गया है। स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक ता–, *ती– की रूप-रचना स्त्रीलिङ्गी सज्ञा-शब्दो की रूप-रचना-प्रणाली के अनुसार हुयी है।

प्र., ए व.—(१) पुलिङ्ग—अशो. (शा., गिर), खरो. ध., निय., पा., प्रा., अप. सो <स, अशो. (का.) षे, (मा, का, धौ.) से, निय. से, अर्धमा. से, माग. शे <स., खरो. ध., अप. सु <स, अशो. (शा.), खरो. ध, पा., प्रा स <स (·), (२) स्त्रीलिङ्ग—अशो. (गिर, का), पा., प्रा. सा, (का.) षा, अशो (शा), खरो. ध., निय. स<सा; (३) नपुसकलिङ्ग—अशो (गिर., शा., मा., का.) त <तत्, निय. तं (केवल प्रथमा) <तत्

१. युष्मु भी पढिये (Burrow § ७९)
२. अवे.–ही <भारत-ईरानी* –सी (मिलाइये ऋ. सं. सीम्)।

(सार्वनामिक प्रत्यय -त् के स्थान मे सज्ञा शब्दो का प्रत्यय -म्), त (केवल द्वितीया)<तम् (द्वि., ए. व., पुलिङ्ग), अशो. (गिर, शा., मा., का., धौ, जौ. आदि) पा, प्रा. तं <तत् या तम्, अशो. (शा, गिर) अप. सो, अप सु, अशो. (मा, का, धौ., जौ, गिर.), अर्धमा. से, माग. शे<स (प्र, पुं), अप ह्रुं[1]।

द्वि, ए. व, पुलिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग—अशो (टो आदि) पा., प्रा., अप. तं, खरो. ध तम्[2], निय. त <तम्, अप. तु<तम् (प्र सु के सादृश्य पर), निय से (देखिये प), अप तासु (देखिये प)।

तृ, ए व, (१) पुलिङ्ग-नपुसकलिङ्ग—अशो. (शा, मा, गिर, का, धौ, जौ., टो), खरो ध., पा, निय तेन, (का.) तेना, प्रा. तेण-तेणं, अप तिण, तें <तेन, तेना (ऋ. स), अर्धमा. से (च -प से), (२) स्त्रीलिङ्ग—पा ताय, प्रा ताए <*ताय=तया (मिलाइये अवे आय=अया (ऋ. स.)=अनया), प्रा तीए, तीअ <*तीया, तीयें।

च, ए व—अशो (गिर.) ताय <*ताय=तस्मै, अशो (शा, मा.) तये, (का., कौ) ताये <*तायै (स्त्रीलिङ्ग से)।

प, ए व.—(१) पुलिङ्ग-नपुसकलिङ्ग—अशो. (का.) तफा[3], निय. तस्मा (तस्मार्थ मे), पा तम्हा (तस्मा भी), अर्धमा. तम्हा <तस्मात्, महा., अप. ता <तात् (ऋ स.), अशो. (शा, मा., का.), पा ततो, (मा) तत, निय. तबे, प्रा तदो तओ, अप तओ <तत., अर्धमा ताओ <तात्+त (देखिये स्त्रीलिङ्ग); (२) स्त्रीलिङ्ग—पा ताय (देखिये तृ), अर्धमा ताओ <ताय (देखिये पुलिङ्ग-नपुसकलिङ्ग)।

ष, ए. व—(१) पुलिङ्ग-नपुसकलिङ्ग—अशो (शा, मा, गिर, धौ, जौ), खरो ध तस, अशो. (का) तश, तषा, तसा <तस्य या *तस, निय. तस (तसेमि), अप तास<तस, निय तस्य, पा, प्रा तस्स<तस्य, अप. तासु, ताहो <*तास, अप तस्सु <तस्य+*तस, वासिम ताअ-पअ

---

१. क्रमदीश्वर के अनुसार ह्रुम (corclative), इसी प्रकार सप्तमी मे जह्नु—तह्नु।

२ यह पदान्त म् आगे आने वाले स्वर के कारण सुरक्षित रहा, जैसे—'तम् अहु ग्रोमि ग्रामन' या 'तम् एव' (अशो (का.) मे भी)। 'तम् एव' के सादृश्य पर ही समेव पुयन=सा एव पूजना।

३ १३, ३, येतफा=ये तफा, मिलाइये शा. १२.१ येततो=ये ततो।

तिस्स <*तीष्य (स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक *ती- से), नागार्जु. से (स्त्रीलिङ्ग), अर्धमा., महा. से[1], माग. शे <भारत-ईरानी *सइ (मिलाइये प्रा फा सइम्, अवे. से, हे); (२) स्त्रीलिङ्ग—निय तय, प्रा. ताय <*तायै, निय तय, पा. ताय <*तायम् (स.) या *ताय (तृ), पा. तस्सा, पा , प्रा. तिस्सा <*तीस्या. पा. तिस्साय <तिस्सा+ताय, अर्धमा. तीआ <*तीया , प्रा. तीए, अर्धमा तीइ <*तीयै, अर्धमा तीसे <*तीस्यै अप ताहे <*तास्यै, तासु <*तास या तास्य , नागार्जु से (देखिये पुलिङ्ग-नपुसकलिङ्ग) ।

स , ए. व —(१) पु.- नपु —अशो. (गिर.) तम्हि, पा. तम्हि (तस्मिं भी), अर्धमा. तसि, शौ तस्सिं, माग तश्शिं, महा. तम्मि<तस्मिन्, अशो. (शा., धौ , जौ) तसि, (का.) तशि <तस्मिन् या *तसि, निय. ते <*तें, *ताइ (मिलाइये ग्रीक तोइ-दे), तत्र (तत्रेमि, तत्रिमि भी)<तत्र, तोमि (देखिये तृ.), निय , अप. (हेमचन्द्र) तं <तत् (समास के पहले पद के रूप मे शिथिल प्रयोग, Burrow § ४०), अप. तहिं <*तभिस्, तह्नु (हेमचन्द्र) देखिये द्वि), खरो. ध तत्रइ <तत्रचित्; (२) स्त्रीलिङ्ग—पा. तस्सं <तस्याम्, तिस्सं <*तिष्याम्, तायं <*तायाम्, तास <*तास्याम्, प्रा ताए, तीए <*तायै, *तीयै, तीअ <*तीया(म्), ताहिं <*ताभिम्, अर्धमा. तासे, ताहे <*तास्यै ।

प्र., ब. व.—(१) पुलिङ्ग—अशो., खरो ध., पा., प्रा. ते, प्रा दे <ते, अशो. (शा., गिर.) सो (का , धौ., टो.) से, अप. से <स (ब. व. के लिये ए व.), (२) स्त्रीलिङ्ग—अशो. (का., धौ), पा त <ता , पा. तायो, बौ. सं तायो (तावो), प्रा. ताओ <*ताय (स्त्रीलिङ्ग संज्ञा के सादृश्य पर), अशो ते, शौ. ते (दे) <ते (स्त्रीलिङ्ग के लिये पुलिङ्ग) ।

प्र.- द्वि., ब. व., नपुंसकलिंग—अशो (धौ., टो.,), पा. तानि, खरो ध. तनि, अर्धमा. ताणि<तानि, प्रा. ताइं<*ता+इम्, अशो. (शा , मा.) स <सा (पु. नपु.—ब. व. के लिये स्त्रीलिंग ए. व) या *सानि=तानि के बदले, अशो. (का , धौ., टो.) अर्धमा से, माग. शे<स (नपु , ब व. के लिये पुं., ए. व) ।

द्वि., ब. व.—(१) पुंलिङ्ग—निय., पा., प्रा. ते, प्रा. दे<ते (द्वि. के लिये प्र); (२) स्त्रीलिङ्ग—पा. ता<ता , पा. तायो, प्रा ताओ (देखिये प्र.) प्रा. ते (द्वि. स्त्रीलिङ्ग के लिये प्र. पुलिङ्ग) ।

---

१. स्त्रीलिङ्ग भी निय. से केवल द्वि. मे प्रयोग किया जाता है ।

तृ , व व —(१) पुंलिङ्ग-नपुंसकलिङ्ग—अशो. (गिर , का , मा.), पा , प्रा. तेहि<तेभि (वैदिक), प्रा. तेहिं<*तेभिम्, (२) स्त्रीलिङ्ग—पा , प्रा. ताहि<ताभिः, प्रा ताहिं<*ताभिम् ।

च , व व —पुंलिङ्ग—अशो (गिर) तेहि (देखिये तृ) ।

प., व व.—पुलिङ्ग—अर्धमा तेभो<तेभ्य (संस्कृत का प्रभाव), महा. तेहिं, अर्धमा तेहिंतो<*तेभिम्+त. ।

ष व व —(१) पुलिङ्ग—नपुसकलिङ्ग—अशो (गिर , जौ , टो आदि), पा तेसं, अशो. (धौ) तेस, अशो (शा), निय. तेषं–तेष, खरो ध तेष<तेषाम्, अशो. (का , टो. आदि) तानं, निय तन, प्रा ताणं-ताण, अप. ताण<*तानाम्, अर्धमा. तेसिं<*तेषिम्, तासि<*तासिम्, निय तस, अर्धमा तास (व व. के लिये ए. व.), पा तेसानं<तेषाम्+*तानाम्, अप. ताहँ<तासाम्; (२) स्त्रीलिङ्ग—निय तिन<*तीनाम्, पा. तासं< तासाम्, प्रा ताण-ताण<*तानाम्, पा. तासाणं<तासाम्+*तानाम्, प्रा. तासिं<*तासिम्, बौ स. सानाम् (<स–) का द्वि. व. व. में भी प्रयोग किया गया है ।

स व व —(१) पु-नपुसकलिङ्ग—अशो. (टो.), पा , प्रा. तेसु, निय. तेषु, प्रा तेषु<*तेषुम्, अप तहिँ<*ताभिम् या तेभिम्; (२) स्त्रीलिङ्ग—पा , प्रा. तासु<तासु ।

§ ८०. एत–(एष–) के रूपों में अपेक्षाकृत कम विभाषीय विभेद हैं ।

प्र , ए व., पुंलिङ्ग—खरो ध. एषो, पा , प्रा. एसो, अर्धमा. एसे, माग. एशे, अप एहो<एष, निय, एष, अप एहु<एष(.), निय. एद (देखिये द्वि)

प्र , ए व., स्त्रीलिङ्ग—अशो , पा , प्रा एसा, निय. एष, अप एहु< एष, अशो. (टो. आदि) एस (स्त्रीलिङ्ग के लिये पुलिङ्ग) ।

प्र–द्वि–, ए व , नपुंसकलिङ्ग—अशो (गिर , शा) एत<एतत् या *एतम् (जैसा अवे. में भी), अशो. (धौ , जौ., टो, सुपारा), पा. एतं< *एतम्, अशो एस, एसे, (का , ब्रह्मगिरि) एषे, (शा , मा , का) निय. एष (प्र), अप एह, एहु<एष( ), अप एहउं (केवल द्वि)<एषकम् ।

द्वि , ए व., पुलिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग—खरो. ध एत, निय. एद, पा एतं, प्रा. एदं-एअ<एतम्, निय. एष, अप एस (वसुदेवहिंडी), एहु<एषा, एष (द्वि. के लिये प्र.) ।

तृ., ए. व , पुलिङ्ग-नपुंसकलिङ्ग—अशो. (टो आदि) एतेन, प्रा. एएणं-एएण<एतेन, अशो. (रुम्म.) एतिना, खरो. ध. एतिण, प्रा. एदिणा <*एतिना ।

तृ , ए. व., स्त्रीलिङ्ग—प्रा. एदाये–एआये<* एतायै, प्रा. एईए (हेमचन्द्र)<* एतीयै ।

च., ए व. पुंलिङ्ग नपुंसकलिङ्ग—अशो. (गिर.) एताय<* एताय= एतस्मै, अशो (रुम्म.) एतिय<*एति–+य–, अशो. (का., धौ , जौ., टो. आदि) एताये, अशो. (शा., मा) एतये<एता+–यै, (स्त्री-प्रत्यय), अशो. (मा.) एतेनि (देखिये अफेनि और मे §§७७,७८) ।

पं., ए. व.—प्रा. एदादो-एआओ, एदादु-एआउ<* एतात्[1]+त॰, प्रा. एआ<* एतात् , प्रा एदाहि-एआहि <* एताहि (मिलाइये उत्तराहि) प्रा. एत्तो, एत्था (क्रमदीश्वर), एत्ताहे, अपः एत्तहे (क्रियाविशेषणात्मक) ।

ष , ए. व , पुंलिङ्ग-नपुंसकलिङ्ग —अशो (गिर , मा., धौ , जौ) एतस (शा.) एतिस, (का.) एतिषा<एतस्य, *एतिष्य, निय एदस्य, प्रा एदस्स-एअस्स<एतस्य, निय. एतस-एदस<*एतस(:), माग एदाह<*एतास ।

ष., ए. व , स्त्रीलिंग—निय एतय<*एतायाः=एतस्याः ।

स., ए. व —अशो. (गिर) एतम्हि<एतस्मिन्, पा एतसि<एतस्मिन् , या *एतसि ।

प्र , ब व., पुंलिंग—अशो (गिर., धौ , टो. आदि) एते, निय. एदे, प्रा एदे-एए, अप. एइ<एते, अशो (शा) एत, निय एद<एता (नपुं , ब व., वैदिक) ।

प्र., ब. व , स्त्रीलिंग—अशो (गिर.) एसा (ब व. के लिये ए. व), निय. एदा, जैन महा. एया (स्त्रीलिङ्ग के लिये नपुं., देखिये प्र.), प्रा. एदाओ-एआओ<एता , वौ स. एतायो, निय एदे (स्त्रीलिङ्ग के लिये पुंलिङ्ग) ।

प्र.,– द्वि., ब व., नपुंसकलिंग—अशो एतानि, (का., जौ., टो आदि) एतनि, अर्धमा. एयानि<एतानि, प्रा. एदाइं-एआइं-एआइ<*एता+इम्, निय. एदे, एद, प्रा. एदे-एए (देखिये प्र , पु लिङ्ग) ।

द्वि , ब. व., पुलिंग-स्त्रीलिंग—निय एदे (एद भी, देखिये प्र.), प्रा. एदे-एए, अप. एइ (द्वि. के लिये प्र.) ।

---

१. मिलाइये प. के प्राचीन रूप आत्, तात्, यात्, (ऋ. स.) ।

तृ , ब. व., पुलिंग-नपुंसकलिग—प्रा. एदेहि-एएहिं<*एतेभिम् ।

तृ , ब. व , नपुंसकलिग—अर्धमा. एयाहिं<*एताभिम् ।

ष., ब. व., पुलिग-नपुसकलिग—अशो. (का) एतान, निय. एदन, प्रा. एदाण-एआण-एआण<एतानाम् निय. एतेष, एदेष<एतेषाम्, निय. एदेषन (दुहरा प्रत्यय), पल्लव अभिलेख एतेसि, अर्धमा. एएसि-एएसि<*एतेषिम् ।

ष , ब व , स्त्रीलिग—प्रा. एदाणं-एआणं-एआण<*एतानाम्, *-इणम् <*एतीनाम्, अर्धमा. एयासि<*एतासिम् ।

स , ब. व , पुंलिग-नपुंसकलिग—अशो. (टो) एतेसु प्रा. एदेसुं-एएसुं (–सु)<एतेसु ।

विस्तारित प्रातिपदिक *एए(त्)तक—के अशोकी प्राकृत मे ए व के निम्नलिखित रूप मिलते हैं—

प्र , नपु —(गिर) एतकं, (शा) एतके ।

प्र , स्त्रीलिग—(जौ) एतका ।

तृ —(शा., मा , धौ., जौ) एतकेन, (का) एतकेना ।

च.—(गिर) एतकाय, (का., धौ) एतकाये, (शा., मा) एतकये ।

§ ८१. समीपार्थक सकेतवाचक प्रातिपदिक इ– (तथा इसके विस्तारित रूप इम–, इय– और समानार्थक रूप अ–, अय–) के निम्नलिखित रूप मिलते हैं। इम– प्रातिपदिक के रूप जो प्रा भा आ. मे केवल प्र , द्वि तक सीमित हैं, म भा. आ मे सभी विभक्तियो मे मिलते हैं।

प्र , ए. व , पुंलिग—अशो. (गिर.), पा. अय, (शा.) अय, अर्धमा. अय, प्रा. अअं[1] <अयम्, अशो. (का.) इय, (रूपनाथ) इय, निय इयो (यियो[2] भी)<इयम्[3], *इय , खरो. ध. इत, निय. इतं (इतं च मे) <इदम् (पु लिङ्ग के लिये नपु .), कनिष्क द्वितीय का आरा शिलालेख इमो, प्रा इमो, इमे, अप. इमु<इमम् (प्र. के लिये द्वि.), अप एहो, एहे, एह <एषः, एष, एषा ।

प्र , ए व , स्त्रीलिग—अशो. (गिर., मा., का., रधिया, भाब्रू) इयं, निय. यियो-इयो, प्रा (शौ) इअ<इयम्–, अशो. (शा , गिर.) अर्धमा अय, अशो (शा , मा.) अयि<अयम् (स्त्री. के लिये पु), *अय , प्रा. इमा

---

१ पिशेल के अनुसार<*अयम्=अय ।

२ <य+इय–, मिलाइये पा, –यायं=या अयम् ।

३. प्रा. भा आ और अवे. में हमेशा स्त्री , प्रा. फा मे पु –स्त्री. ।

(<इमाः, ए. व. के लिये व. व अथवा *इमा), इमिश्रा (<*इमिका), अप. एह<एषा, अप. एहो, एहु<एषः, निय. इत<एतम्, एताम् (प्र. के लिये द्वि.) ।

प्र.– द्वि., ए व., नपुंसकलिंग—अशो (शा., गिर.), पा., प्रा. इदं, खरो ध. इद, निय. इत(–च)<इदम्, अशो. (शा., मा, गिर., धौ., टो) इयं, (शा, मा.) इय, (शा.) इयो, निय. यियो-इयो, <इयम्, *इयः (देखिये पु.–स्त्री.), अशो. (का, जौ.) एयं<*एतम्+इयम्, अशो. (शा., मा, का., धौ, टो, ब्रह्म., भा, सिद्ध) पा, प्रा इमम्, (शा, मा, मस्की), निय इम[1] <इमम् (द्वि. पुं. से), प्रा. इमे, अप इमु<इमम्, अप इरण (क्रमदीश्वर)<इ[2]+एनम्, अप इणमु (क्रमदीश्वर)<इ+एन+इमम् ।

द्वि., ए. व., पुंलिंग—अशो. (टो.), पा., प्रा. इमं, निय. इम<इमम्, खरो. ध इत<इ–[2]+एत– ।

द्वि, ए व. स्त्री.–पा, प्रा. इमं<इमाम् ।

तृ., ए. व., पुं.– नपुं.—अशो. (गिर., ब्रह्म., सिद्ध.) पा. इमिना, खरो ध इमिन, प्रा. इमिणा<*इमिना, अशो (दिल्ली-मेरठ) मिना, (टो., कौशा, रधिया, मथिया, रामपुरवा) मिन, पा अमिना<अमु+*इमिना, मह्रा. एण<एन, एना (ऋ स.), अशो. (जौ) इमेन, कालावान अभि., प्रा. इमेणु अप ए<*इमेन, पा. अनेन<अनेन, अप. आएण<*आयेन, प्रा. इमेसिं (तृ, ए. व के लिये ष., व व) ।

तृ., ए. व, स्त्री —पा. इमाय<*इमया ।

च., ए. व —अशो (गिर., रूपनाथ) इमाय (केवल पु –नपु.) <*इमाय, अशो. (का., धौ) इमाये, (मा) इमये<*इमायै ।

पं., ए व —पा. अस्मा<अस्मात्, इमम्हा<*इमस्मात्[3], इमाय (स्त्री.) <*इमया (तृ.), अशो. (मा) आ (क्रियाविशेषण) <आत् (ऋ सं) ।

ष., ए व, पुं.– नपुं.—अशो. (गिर, मा., धौ.) इमस, (का.) इमसा,

---

१ निय केवल द्वि. ।

२ प्रातिपदिक इ–, इद्, इम्, ईम् (ऋ. स.) शब्दो मे है ।

३. मिलाइये ऐतरेय आरण्यक इमस्मै ।

पा प्रा. इमस्स<* इमस्य (ऋ स. ८.१३.४१), अशो. (शा.) इमिस <* इमिष्य, पा., प्रा अस्स<अस्य, अप. आग्रहु<* आयस्य।

ष., ए. व , स्त्री —पा. अस्सा<अस्याः, इमिस्सा<* इमिष्या , इमाय (देखिये तृ.) इमिस्साय<* इमिस्सा+इमाय, अर्धमा. इमिसे<* इमिष्यै।

स , ए. व , पुं —नपुं.—अशो (गिर.), पा इमस्मि, पा इमस्सि <* इमस्मिन्, खरो. ध. अस्मि, पल्लव अभिलेख असि (चसि=च असि[1] में), पा अस्मि, प्रा. अस्सि<अस्मिन्, अर्धमा अयसि, प्रा आग्रम्मि <* आयास्मिन्, प्रा. ईग्रम्मि<* इयस्मिन्, अप. आग्रहि<* आयभिम्।

स., ए व , स्त्री.—पा. अस्स<अस्या, इमस्स<* इमस्याम्, इमस्सा <* एतस्या· (?), इमायं<* इमायाम्।

प्र., ब व , पुंलिंग—अशो. (गिर , मा., का., धौ , टो. आदि), निय , पा इमे, खरो ध इमि<इमे, निय. यिम<य+इमा ।

द्वि , ब व , पुंलिंग—निय., पा इमे, निय यिम (देखिये प्र)।

प्र – द्वि., ब व , स्त्री —निय यिम<य+इमा , पा इमा<इमा , निय , पा इमे (देखिये पु), पा इमायो<इमाय (संज्ञा-शब्द-रूप की तरह)।

प्र – द्वि , ब व , नपुं —अशो (मा , टो आदि), पा. इमानि<इमानि, निय. इमे, यिम (देखिये पुं.– स्त्री.)<* आयानि ।

तृ , ब व , पुं –नपु —अशो (धौ , जौ), पा इमेहि<* इमेभि[2], पा., प्रा इहि<एभि , प्रा. एहिं<* एभिम्; स्त्री —प्रा अणाहिं–अणाहि (वसुदेवहिण्डी), बौ. सं इमाहिम्।

तृ , ब व , स्त्री —पा इहि, इमेहि (देखिये पु —नपु), प्रा आहि <आभिः।

ष , ब व , पुं – नपुं —पा एस<एषाम्, एसानं<* एषानाम् या एषाम्+नाम्, इमेसं<* इमेसाम्, इमेसान (दुहरे प्रत्यय), महा एसि <* एसिम्।

ष , ब. व , स्त्री —पा आस<आसाम्, मथुरा शिलालेख इमासा, पा. इमसानं<* इमासानाम् (दुहरे प्रत्यय)।

---

१ पिशेल के अनुसार। सम्भवतः यह भारत-ईरानी* च– का स ,

२ मिलाइये महाभारत इमैः ।

ष., व. व., पु.--स्त्री--नपु—प्रा. (क्रमदीश्वर) इमाण<* इमानाम्, इमिना <* इमिना (म्), इमेसिं<*इमेषिम् ।

स., व. व., पु.-नपुं.—पा , प्रा. (जैन) पा. इमेसु >*इमेषु ।

स., व व., स्त्री.—पा. इमासु <*इमासु ।

§ ८२. प्रातिपदिक एन–और इसके सक्षिप्त रूप न-(जो अशोकी प्राकृत मे अनिश्चयवाचक सर्वनाम के रूप मे प्रयुक्त हुआ है) के निम्नलिखित रूप मिलते हैं–

ए. व,प्र.-निय. नचि (<*नश्चित्), द्वि, पु -स्त्री-पा. एन, न, प्रा. एणं, इणं, ण-णं< एनाम्, * (इ) नाम्; प्र.- द्वि. नपुं.-पा. एन, नं प्रा. इणं, ण, इणमो (क्रमदीश्वर) ; तृ., पु.-प्रा. णेण, <(अ) नेन, (ए)नेन ; तृ. स्त्री.-प्रा. णाए<* (ए) नायै ; स., पुं-पा. नस्स<*(ए) नस्य ; ष., व. व., पु-प्रा. णेहिं ।

व. व.; प्र., पु.-स्त्री.- अशो. (रधिया, मथिया, रूपनाथ, कौशा.) नानि<* (ए) नानि ; द्वि., पु.-अशो. (गिर.), पा. ने, प्रा. णे<* (ए) ने (मिलाइये ते प्र., व. व., पु), अशो. (गिर.) नानि (देखिये प्र.); तृ., पु.-नपु- प्रा. णेहिं; तृ.-स्त्री.-प्रा णाहिं; स., पुं.-पा. नेसं<* (ए) नेसाम् ।

§ ८३. वैदिक संकेत वाचक प्रातिपदिक त्य- और त्व- के केवल ए. व. के निम्नलिखित रूप पालि मे सभवतः प्राचीनपरकता की प्रवृत्ति के कारण बच रहे हैं-प्र तुमो<* तुवः<त्व,[1] ष. तुमस्स<त्वस्य स.-त्यम्हि[2] <त्यस्मिन् ।

§ ८४. भारत-ईरानी संकेतवाचक अव-, जो प्रा.भा आ. भाषा के केवल एक रूप अवो, (ऋ. सं., प.) मे मिलता है, अपभ्रंश मे केवल दो रूपों मे बच रहा है-प्र.-द्वि-ओइ<अवे (मिलाइये प्रा. फा. अवइय्) तथा ओ प., ए. व. ओह (जिसका प्र. द्वि. मे भी प्रयोग किया गया है) <* अवास<* अवस्य (मिलाइये प्रा. फा. अवह्या) ।

§ ८५. दूरवर्ती-सकेतवाची अद-(अस-, अम-) के निम्नलिखित रूप मिलते है—

१.-व्->-म्-परिवर्तन संभवतः मध्यम पुरुषवाची सर्वनाम से प्रभावित हैं ।

२ गायगर § १०७. ४ ।

ए व , प्र, पुं.—स्त्री.—पा. असु <* असौ या असः, अर्धमाः असौ, प्रा. अहो (क्रमदीश्वर) <असौ, पा. अमु (केवल पुं), प्रा अमू<*अमू.; प्र.—द्वि., नपु.—पा. अदु<अदस्+ म्, प्रा. अमुं; द्वि., पुं.—स्त्री.—पा., प्रा. अमुं <अमूम्, तृ पु.—पा. अमुना, प्रा. अमुणा<अमुना ; तृ., स्त्री.—पा. अमुया ;< अमुया, प., पु – अमुम्हा, अमुस्मा<अमुष्मात्, प्रा. अमूओ, अमूउ<अमूत ; प., स्त्री.—पा. अमुया (देखिये तृ.) ; प., पु—पा., प्रा. अमुस्स< अमुष्य, प्रा. अमुणो ॱ<अमुनः ; प, स्त्री.— पा. अमुस्सा<अमुष्याः, अमुया<* अमुयाः (देखिये तृ) स., पुं—पा. अमुम्हि, अमुस्सिं, प्रा० अमुम्मि<अमुस्मिन्, अप. अअम्मि<*अदस्मिन्, स., स्त्री. पा. अमुस्सं< अमुष्याम्, अमुयं<* अमुयाम् ।

ब. व.; प्र.— द्वि., पु.—(स्त्री.),—पा. अमू<अमूः (स्त्री.), अमुयो (केवल स्त्री)<* अमुयाः, महा. अमी<अमी (पुं.), प्रा. अमुणो (केवल पुं.)<* अमुनः, अमूओ (अमूउ भी)<* अमूयः, प्रा. अहा<* असाः (पु., व. व.) या*असानि (नपु., व. व.) (प्रातिपदिक * अस—से); प्र—द्वि., नपु—पा. अमूनि, प्रा. अमूणि, अमूइं,< अमूनि,* अमू+इम् ; तृ.—पा., प्रा. अमूहि <अमूभिः (स्त्री.), ष.—पा. अमूनं <अमूसाम् (स्त्री.), अमूसाणं <अमूसाम् +नाम्, प्रा. अमूण<*अमूनाम् ; स.—पा., प्रा. अमूसु<अमूषु (स्त्री.) ।

(विस्तारित प्रातिपदिक पा. असुक-(<*असौ+—क) और पा., अर्धमा. अमुक के रूप अकारान्त शब्दो के अनुसार बनते हैं ।

४. सम्बन्धसूचक (Relative) सर्वनाम

८६. सम्बन्धसूचक सर्वनाम य— के रूप सकेतवाचक त— (न—) के समान निष्पन्न होते हैं ।

प्र., ए व., पु—अशो (गिर, शा., मा.), खरो. ध., निय., पा. यो, प्रा. जो<यः, अशो. (मा., का., धौ., जौ. स्तम्भलेख) ये—ए, अशो. (लघुशिलालेख) ए, खरो. ध., पा. ये, प्रा., अप. जे<य., निय. यः, (केवल च के पूर्व) देखिये मयु, नपु. जेहे<*येष: (मिलाइये एषः) ।

ए. व.; प्र., स्त्री.—अशो (धौ, जौ.) या, आ, अशो, (टो.) या, अशो. (शा, मा.), खरो. ध. य, पा. या, प्रा., अप. जा<या, अप.-जेंहि (तृ. व. व. से), निय. यो (देखिये पुं.) यं (च के पूर्व, देखिये नपुं.) ; प्र.—द्वि., नपुं.—अशो.

(गिर., का) य<यद्, अशो. (शा., मा, का.) उ[1], पा. यं. प्रा., अप जं, अशो. (गिर., का, शा., मा., लघु शिलालेख) य-य[2], अशो. (का., धौ., जौ., ससराम) अं[3]<यम् (प्र.-द्वि., नपुं. के लिये द्वि., पु अकारान्त के साहश्य पर), अशो. (शा., मा., जौ., टो.), निय. यो, अप. जु<यः (पु.), अप. जेहु<*येषः, जु [4](क्रमदीश्वर); द्वि., पु.-स्त्री.-खरो. ध. य, पा. य, प्रा. जं<याम्; तृ., पु.- नप्.—अशो. (मा., का., धौ., जौ., टो. आदि), खरो. ध., निय., पा. येन, प्रा., अप. जेण-जेण, अप. जे-जे, अशो. (धौ., जौ., टो) एन<येन, प्रा., जिणा<*यिना (मिलाइये ऋ. स अना) ; तृ.-प०, स्त्री.-पा. याय (मिलाइये अवे. आय=ऋ. स. अया) , पं०, पु.-नपु.-पा. यम्हा, यस्मा< यस्मात् ; ष., पु.-नपुं.-अशो. (गिर , शा , मा.), खरो. ध यस, अशो (का.) असा, अशो. (धौ., जो.) अस, निय. यस्स, पा. यस्स<यस्य, अप जाहु, माग. याहु<*यास=यस्य, अप. जासु (स्त्री. भी)<*यस्य अथवा यासु (स., व. व); ष., स्त्री.-पा. यस्सा<यस्याः, याय (देखिये तृ., प.), प्रा. जाए<* यायै, जीए<*यीयै, जीआ<*यीयाः, जीइ<यीयः, यिस्सा<*यिष्याः, जिसे <*यिष्यै, अप जासु (देखिये पु), जाहे<*यस्यै; स., पु.-नपु.-पा. यम्हि, यस्मि, वौ. स जंहि, अर्धमा. जसि<यस्मिन्, अप. जहिं-जहि<*यस्मिन्, जाए, जीए (देखिये स्त्री.), जइ (क्रमदीश्वर); स., स्त्री.-पा यस्सा (स. के लिए ष.), याय (स. के लिये तृ -पं.), 'अप. यस्सिम्मि<यस्य+-स्मिन्, जाए, जीए (देखिये प.) ।

ब. व.; प्र., पु.-अशो. (गिर., का., शा., मा., धौ., जौ., टो. आदि) ये; (मा., का., धौ., जौ., जतिंगा) ए, पा., निय. ये, प्रा., अप. जे, अप जि<यः, अशो. (रूपनाथ) या<याः (स्त्री.) अथवा यानि (नपु.), निय. यो (देखिये ए. व); प्र , स्त्री.-अशो (गिर.)या, (शा , मा) य, पा. या, प्रा. जा <याः, पा. याओ<*यायः ; प्र., द्वि., नपु.-अशो. (गिर., टो. आदि) यानि, (धौ., जौ) आनि, पा. यानि<यानि, अर्धमा. जाइ<या+ईम् (ऋ. सं.), जि (मिलाइये ऋ सं. त्री); तृ., पु.-स्त्री -अप. जेहि<येभिः (ऋ. सं.);

---

१. केवल च के पूर्व ।

२ केवल द्वि. ।

३ केवल प्र. ।

४. क्रियाविशेषण के तौर पर ।

ष., पु.-नपुं.-अशो (गिर.), पा. येसं, अशो. (का, मा.) येषं, अशो. (शा.), खरो ष., निय. येष<येषाम्, पा. येसानं<येषाम्+-नाम्, अर्धमा. जसिं-जसि<*येसिम्, अप यहां<*यसाम्, प्रा., अप. जाणं-जाण<*याणाम्; ष, स्त्री.-अर्धमा. यसि (देखिये पु.); स., पु-अशो (गा.) येसु, (मा.) येषु, (का.) येशु<येषु।

५. प्रश्नवाचक—अनिश्चयात्मक सर्वनाम

§-८७. प्रश्नवाचक अनिश्चयात्मक (Interrogative Indefinite) प्रातिपदिक क- के स्थान मे कि-तथा की-का प्रयोग प्रा भा. आ भाषा काल से ही होने लगा था, परन्तु म. भा. आ. भाषा के विपरीत प्रा. भा. आ. भाषा में ये प्रातिपादिक (कि-तथा की-) केवल स्त्रीलिंग के रूप बनाने मे ही प्रयुक्त न होते थे। क- तथा इसके विस्तारित और विभिन्न प्रातिपदिक रूपो के शब्द-रूप नीचे दिये जा रहे है;

ए. व.; प्र., पु.-अशो. (गिर., शा), निय., पा. कोचि, अशो. (शा.) कचि, निय. कचि, अशो. (मा) केचि<कः चित्, कश्चित्, अशो. (का.) केछ <कः+कश्च, खरो ध, निय, पा., प्रा को, पा., प्रा के<कः, अप. केहे <*कयसः (=कयस्य[1]) या *कपः, प्र, स्त्री – खरो. व. क<का, पा. काचि<काचित्, अप. केही (देखिये येही) प्र.-द्वि., नपु.-अशो (जौ.), निय., पा. किं<किम्, अशो. (गिर) किंचि, (गिर, शा., मा., का., धौ), खरो. ध. किंचि, (धौ., जौ.) किंछि, (भाब्रू) केंचि, (मा., का., धौ, जौ., कोशा) किंछि, निय., पा. किंचि<किञ्चित्, अशो. (गिर.), निय कि<*कित् (मिलाइये ग्रीक ति) या किम् या कीः (मिलाइये ऋ. सं. नकीः, माकीः मे-की), निय. किंच<किञ्च, अशो (मा.) क<कत्, या कम्[2] अशो (गिर., शा, जौ., ब्रह्मगिरि) कं<कम्, निय. कचि (देखिये पु.) किंन (देखिये तृ.), द्वि., पु.-स्त्री.-पा., प्रा. क<काम्, तृ.-पा. केन<केन; अशो. (सुपारा) केनपि केन+अपि, अशो. (टो) किनसु, पा. केनस्सु<केन+*सु (मिलाइये वैदिक स्वित्=सु+इत्), निय. किन[3], प्रा. किना<*किना, केन, अप. *केण<

---

१. अनिश्चयात्मक; ऋ सं मे केवल – चित् के साथ।

२ वैदिक मे क्रियाविशेषण – निपात कम्।

३. प्र. के रूप मे प्रयुक्त।

*कोनः[1] पं.–अशो. (धौ., जौ.) अकस्मा[2]<अकस्मात्, पा. कस्मा, प्रा. कम्हा< कस्मात्, पा. किस्मा<*किष्मात्, प्रा. किणो<किणः[3], कत्तो<कात् (प्राचीन नपु., ए. व.) +–तस्, कदो-कओ<*कतः, काओ<*कातः, अप. काउ<*कतः, काइं<का+–इम् (क्रियाविशेषणात्मक), ष., पु.–नपु.–निय. कस्याचि<कस्य–चित् , पा., प्रा. कस्स<कस्य, प्रा. कास, माग. काह, अप. कासु, काहे<*कासः, कास, पा. किस्सस्सु<*किष्यसु, महा. कीस, माग. कीश<* किष्य–किष, अप. किसे (देखिये स्त्री.); ष., स्त्री.–प्रा. किस्सा<*किष्याः, कीसे<*किष्यै, कीअ<की–याः, कीए–,कोइ<*की–यै ; स., पु.–नपु.–पा. कास्मिह, कस्सिं, महा. कम्मि, शौ. कस्सिं, अर्धमा. कम्हि, कसि<कस्मिन्, प्रा. कहिं<*कभिम्, पा. किम्हि, किस्मिं<*किस्मिन्, स.–त्री. सं. कहि, कुहं, प्रा. कहिं (क्रियाविशेषण से उत्पत्ति); स., स्त्री.–प्रा. काए<*कायै, कीअ, कीए (देखिये ष.), काहिं<*काभिम् ।

ब व.; प्र.–द्वि , पु.–निय. केचि[4] (=केश्चि जो केचि की जगह गलती से लिखा गया है)<*केचित्, अशो. (टो., जौ., रधिया) कानि (केवल द्वि., देखिये नपुं.) प्र –द्वि., नपु –अशो. (टो., जौ., रधिया) कानि<कानि, (टो.) कानि चि< कानि चित्, अप. काइं<का+ईम् (इम्), ष. प्रा.—काणं–काण<*कानाम्, किण<कीनाम्, केसिं<*के षिम् ।

§ ८८. तालव्यीकृत प्रातिपदिक च–(अनिश्चय के अर्थ मे) के प्रा. भा. आ. मे विभक्ति-रूप नही बनते । अवेस्ता मे इसके ए. व के सभी विभक्ति-रूप मिलते है । म. भा. आ. के तीन विभक्ति-रूप परम्परया प्राप्त हैं–अशो. (भाब्रू) च (<भारत-यूरोपीय*क्वेम्, लैटिन क्वेम्), नासिक गुहालेख चस, निय. चस (<भारत-यूरोपीय*क्वेसो, ग्रीक तेओ, प्राचीन स्लाव चेसो, गौथिक ह्विस् (Hwis), मिलाइये अवे. चह्या), और पल्लव अभिलेख चसि (जिसे सामान्यतः च+असि समझा जाता है)<भारत-यूरोपीय *क्वेसि. ग्रीक (डोरिक) पेई ।

---

१. प्रातिपदिक*के–+नः (पं.–ष. का विभक्ति-प्रत्यय), देखिये प्रा. किणो ।

२. क्रियाविशेषण के रूप मे प्रयुक्त ।

३. देखिये अप. किनु (तृ.) ।

४. तीनो लिङ्गो मे ।

§ ८९. कं–च(न) तथा किच(न) के अतिरिक्त म. भा. आ. मे चार विस्तारित अनिश्चयात्मक प्रातिपदिक हैं–*किम–, *कम–, *किन (मिलाइये ग्रीक तिनोस्, तिन) और *कमन–। किम– तथा कम–प्रातिपदिक द्वि. ए. व. किम् तथा कम् मे–अ प्रत्यय जोड़कर अथवा कि–और क– मे–म प्रत्यय जोड़कर विस्तारित किये गये हैं। ऐसा प्रा. भा. आ. (<भारत-ईरानी) मे भी हुआ है, जैसे– इम–<*इम्[1] (मिलाइये ऋ. सं., स्त्री. ईम्, नपु. इत्) अथवा इ+म; अम– (जैसे ऋ. स. मे प्र., ए. व. अमः, तृ., ए. व. अमा, पं., ए. व. अमात्) <*अम्+अ (अथवा अ+–म), सम– (ऋ. सं. अनिश्चयात्मक सर्वनाम) <*सम्+अ (अथवा स+–म), सिम –<*सिम् (मिलाइये प्रा. फा. सीम्)+–अ (अथवा * सि+–म.), किन<कि+न (मिलाइये अवे. चिन, पा. कंचिनं)[2] कमन[3]<कम्+–अ (या क–+–म)+–न।

इन प्रातिपदिको के निम्नलिखित रूप मिलते हैं;

ए. व., प्र.–द्वि., नपु–अशो. (टो. आदि) <* किंमं–किमं <*किमम्, निय. किकम<कि (किं) कम (–मं) <*कमम्, निय. केम, अप. केम, किम, किद<*केमम्,*किमम्, निय. किंन<*किनम्, प्रा. किणो (प्रश्नवाचक निपात, मूलतः पु.) <*किनः, अप. किप (क्रमदीश्वर)<*किम्वम्<* किम्मम्–किमम्, कमणु (देखिये पुं.), प्र, पु –निय. केम<*केम. या. * किमः (देखिये नपु.), किन<*किनः (देखिये नपु.), अप. कवणु[3]<*कमनः, प्र, स्त्री.–अप. कवण<*कमन; तृ.–प्रा. किणा<कि+–ना अथवा *किन+–आ मिलाइये –अशो. (टो) किनस्, अप. कवणेण<*कमनेन, प, अप. कवणहे <*कमनस, कवणह<*कमणस।

§ ९०. इन उपर्युक्त सर्वनाम प्रातिपदिको के साथ अनिश्चय-वाचक निपात चित्, च और चन जुडे मिलते हैं, जैसे– अशो. (का.) केछ, (धौ., जौ.) किछि, खरो. ध. केज<कः (किम् के स्थान पर)+च, यजि<यत्+चित्, किजन <किञ्चन (यह खरो. ध. मे सज्ञापद बन गया है, जैसे– किजनेषु)।

---

१. निय. मे दो नकारात्मक वाक्यांशो मे इम् बच रहा है—न इचि, म इंचि। Burrow ने इम् की व्युत्पत्ति किम् से की है (पृ. २६)।

२. द्वि., ए. व.; थेरीगाथा (गायगर §१११.१)।

३. इसकी व्युत्पत्ति आम तौर पर क+पुनर् से मानी जाती है।

§ ९१. आत्मवाची (reflexive) सर्वनाम स्व—अधिकतर प्र., ए. व. मे मिलता है और यही रूप सभी वचनो तथा लिङ्गो के लिये प्रयुक्त होता है। इसके विस्तारित रूप स्वक—, जो एक आत्मवाची विशेषण हैं, स्व—की अपेक्षा कुछ अधिक विभक्ति-रूपो मे मिलता है—प्र., ए. व., वो. सं. स्वकम्= स्वयम्।

प्र., ए. व.–ब. व.—अशो. (गिर.) स्वयं, निय. स्वेय (—यं), स्वे, स्वय<स्वयम्; तृ., ए. व.—पा. सकेन<स्वकेन; पं., ए. व. पा. सम्हा< स्वस्मात्, सकम्हा<* स्वकस्मात्, अर्धमा. साओ<स्वा (त्)+ —तः; स., ए. व.—पा. सम्हि, अर्धमा. संसि<स्वस्मिन्. अशो. (शा.) स्वकस्पि <*स्वकस्मिन्, द्वि., ब. व.— पा. सके<* स्वके, तृ., ब. व.— अर्धमा. सएहिं<* स्वकेभिस्।

§ ९२. केवल विकारी (oblique) विभक्तियो मे ही आत्मन् (जैसा कभी-कभी वैदिक मे) तथा तनु (जैसा ऋ. सं. मे) आत्मवाची विशेषण के रूप मे मिलते हैं। तनु — का विस्तारित प्रातिपदिक तन्वक— निय प्राकृत तथा उत्तर– पश्चिमी अभिलेखो मे मिलता है।

६. सार्वनामिक विशेषण

§ ९३. सार्वनामिक विशेषणो की रूप–प्रक्रिया संज्ञापदो का अनुसरण करती है। परन्तु जबकि सज्ञापद विकारी विभक्तियो मे सर्वनाम-पदों के प्रत्यय ग्रहण करते हैं, सार्वनामिक विशेषण संज्ञा–पदो के विशिष्ट प्रत्यय ही अधिक पसन्द करते हैं। यह प्रवृत्ति वैदिक काल से ही लक्षित होने लगती है, जैसे—ऋ. सं. विश्वाय (च, ए. व.), विश्वात् (पं., ए व.), विश्वे स, ए. व), अथर्ववेद एके (स., ए. व.) आदि। म. भा. आ. में अन्य– (अपने पारस्परिक अभ्यस्त Reciprocal iterative अन्यमन्य– रूप सहित) और सर्व-प्रमुख सार्वनामिक विशेषण हैं। इनके प्रारम्भिक विभक्ति–रूप नीचे दिये जाते हैं;

(१) अन्य–, अन्यमन्य–,

ए. व.; प्र. पु–अशो. (का., धौ., जौ., टो.) अंने, (गिर.) अञे, (शा.) अंञि (मा) अणे<अन्यः,—प्र.–द्वि., नपु–अशो. (गिर) अञ, (जौ.) अंन< अन्यत्, अशो. (शा) अञ<अन्यम्=अन्यत्, अशो (मा.) अञे, अणे,(का., धौ., जौ , कौशा.) अंने (नपुं. के लिये पुं.); च –अशो. (गिर.) अञाय<* अन्याय. अशो, (शा., मा.) अञये, (मा.) अणये, (का., धौ., जौ.) अनाये

<*अन्यायै, ष., पु.–नपुं.–अशो. (गिर., शा.) अं (अ) ञ–, म (म) ञस, (मा.) अणमणस, (का.) अंनमनया, पा. अञ्ञमञ्ञस्स <*अन्यमन्यस्य, निय. अञस<*अन्यास(:), अंनिस्य>*अन्यिष्य ; ष., स्त्री.– पा, अञ्ञिस्सा <*अन्यिष्याः; पा , स., पु.–नपु.– अशो. (गिर.) अञम्हि<अन्यस्मिन्, पा. अञ्ञमञ्ञम्हि ।

ब. व.: प्र., पुं.– अशो. (शा., मा., गिर.) अञे, (का) अने, (का., धौ) अंने, निय. अजे , पा अञ्ञे<अन्ये ; प्र.–द्वि , नपुं.– अशो. (गिर.) अञानि, (शा , मा) अञनि, (का., धौ , जौ , टो आदि) अंनानि<अन्यानि ; तृ – पा अञ्ञमञ्ञेहि ; ष.– अशो, (टो.) अंनंना, निय. अंनन(अंननोव में)< *अन्यानाम्,.निय. अनमंनन, खरो. ध. अञेष, निय. अंनेस पा., अञ्ञेसं <*अन्येषाम् ; निय. अंनेषन(दुहरे प्रत्यय), अर्धमा. अंनेसिं<अन्येषिम् ; स. – अशो. (धौ , टो.) अंनेसु<अन्येषु ।

(२) सर्व–

ए.व ,प्र , पुं –अशो (गिर., धौ., टो) सवे, (गिर.) सर्वे<सर्वः; प्र.–स्त्री.– अशो. (का) षवा, (शा , मा) सव्र<सर्व ; प्र.–द्वि, नपुं.–अशो (शा , गिर., का., धौ., जौ.) सव, (शा) सव्रं, (का.) षव (–व), (गिर.) सर्वं, खरो.ध. सव < सर्वम्, अशो. (गिर-) सर्वे, (शा., मा.) सव्रे, (का , धौ , जौ., भाब्रू) सवे, (का.), षवे<सर्वः (नपुं. के लिये पुं) , द्वि., पुं– अशो. (शा., का., धौ., जौ) सवं, (शा., मा.) सव्रं, खरो ध. सर्व<सर्वम्, तृ., पु.–नपुं.–अशो. (धौ., जौ) सवेन<सर्वेण, (जौ.) सवेणा< सर्वेण, सर्वेणा, ष. पुं.–नपुं.– अशो (धौ , जौ.) सवस >सर्वस्य , ष., –स्त्री.– हुविष्क का मथुरा शिलालेख सर्वायि<*सर्वायै ; स., पुं–नपुं.–अशो (टो.) सवसि<सर्वस्मिन्; स., स्त्री –पा सब्बाय<*सर्वाय ।

ब.व ; प्र. पुं.–अशो (गिर , का., धौ , जौ , शा) सवे, (शा., मा.) सव्रे, खरो. ध. सर्वि-सवि, निय. सर्वि, पा सब्बे<सर्वे , द्वि., स्त्री. –खरो. ध. सर्व<सर्वाः . तृ.– निय. सर्वेहि <सर्वेभिः , ष., पुं.–नपुं –वार्दाक पात्र–अभिलेख., निय सर्विनि,महा सर्विण <* सर्विणाम्, पा सब्बेसं< सर्वेषाम्, सब्बेसान <सर्वेषाम्+–नाम्, ष., स्त्री.–पा सब्बास <सर्वासाम्; स.,–अशो. (गिर., का., धौ , जौ , टो , सुपारा) सवेसु, (शा , मा) सव्रेषु, (का) सवेषु, < सर्वेषु, खरो ध. सर्विषु<सर्वेषु या* सर्विषु ।

(३) एक– के विभक्ति–रूप सर्व–के समान हैं ।

ए. व., प्र., पुं.—अशो. (गिर.), खरो. ध. एको, अशो. (मा., का., जौ.) एके, खरो ध. एकि<एकः, अशो. (सुपारा) इकिके<एकैकः; प्र., स्त्री.—अशो. (सुपारा) इका <एका (प्र., नपुं. भी) ; द्वि., पु., प्र.—द्वि, नपु—अशो. (शा., ब्रह्मपुर, सिद्धपुर) एकं, खरो ध एक<एकम् , द्वि., स्त्री—अशो. (सुपारा) इकं<एकाम् ; तृ.—अशो. (धौ., जौ.) एकेन<एकेन ; ष.—निय. एकिस्य <*एकिष्य ।

ब. व., प्र.,—निय. एके<एके ।

§ ६४. सम्बन्धवाचक सार्वनामिक विशेषण,[1] प्रा, मइअ (<मदीय) जैसे प्रा. भा. आ. के अवशेषों को छोड सब परवर्ती अपभ्रंश मे ही मिलते है और ये पुरुषवाचक तथा संकेतवाचक सर्वनामो से बने हैं। इस प्रकार, महार' 'मेरा' <*मम्य-मम, तुहार 'तुम्हारा'<*तुभ्य तुम, अम्हार 'हमारा'< अस्म्-, तुम्हार- <तुष्म-, ताहर'उसका' <तास- (ष. के रूप का ही प्रातिपदिक) । सामान्य विशेषणों के रूप मे इनके साथ स्त्री-प्रत्यय -ई लगता है।

§ ६५. संख्यावाचक सर्वनाम कति और तति क्रमशः पाली और निय-प्राकृत मे बच रहे हैं और वैदिक के समान इनके सभी विभक्तियो मे यही रूप रहते हैं।

§ ६६. प्रा. भा. आ. भाषा के परिमाणात्मक (qnantitative) सर्वनाम म. भा. आ. मे क्रियाविशेषण और संयोजक के रूप मे बचे हैं। इस प्रकार—

कीवन्त्- (ऋ. सं.), पा. कीव-, बौ. सं. केव-, अप. किव-, किम- (केम- [2]भी) कियन्त्;- अशो. (टो. आदि) किय ।

तावत् (तावन्त्) -, पा. ताव, तावता (तृ., ए. व.) अप ताम(तेम-, तिम—)[2] ।

यावत् (यावन्त्)-; अशो. (धौ., जौ., रधिया, मथिया) आवा<यावान प्र, ए. व., पुं.), अशोः (टो., रूपनाथ) आव (याव), अशो. (गिर., का., धौ.) आव, अशो. (दिल्ली-मेरठ, कौशा., रधिया, मथिया), पा. याव, पा. याव (अकारान्त के सादृश्य पर), यावता (तृ., ए व.), अप. जाम- (जेम-, जिम-)[2] ।

१.— र अथवा— आर प्रत्यय सहित , मिलाइये प्रा. भा. आ.—र (—ल्), —आल— मधुर—, बहुल—, ओर—, ओल—, रसाल— ।

२.—म्— संभवतः—मन्त् प्रत्यय के प्रभाव से है।

§ ६७. आरम्भिक म. भा. आ. मे वन्त् (वत्) प्रत्ययान्त परिमाणात्मक सर्वनाम–पदो मे –तक (तथा–तिक) प्रत्यय जोडकर बनाये परिमाणात्मक सर्वनाम–पद मिलते हैं । इस प्रकार–

कीव (न्त्)–; पा. किवतिक 'कितने' ।

ताव (न्त्)–, अशो: (गिर.) वहु–तावतकं, (का.) वहु–तावतके, (शा.) बहु–तवके, बौ. स. तावन्तर– ।

याव (न्त्) –, अशो. (गिर., मा., रुम्मनदेई), पा. यावतक, अशो. (का., भाब्रू, सिद्धपुर) आवतके 'इतने', बौ. स. यावन्तर – ।

–तक– (और–तिक–) –त् अन्त वाले सर्वनामो के साथ प्र.–द्वि., ए. व., नपुं मे भी–प्रयुक्त हुआ है । इस प्रकार –

* एत्–, अशो. (गिर., शा., मा., का., धौ., जौ.) एतक–[१] पा. एत्तक–, निय. एति, प्रा. एत्तिय– एत्तिअ–, इत्तिअ–, शौ., माग. एत्तिक– 'इतना' ।

* कित्–, *केत्–, पा. कित्तिक–(मिलाइये कित्तावता 'कहाँ तक')[१], निय. केति, प्रा, केत्तिय– केत्तिअ – 'कितना' ।

* तत्–, * तेत्–; पा. तत्तक–(परवर्ती), माग. तेत्तिक– 'उतना' ।

* येत्–; प्रा. जेत्तिअ–,–, जित्तिअ–, माग. येत्तिक– 'जितना' ।

§ ६८. वैयाकरणों के अनुसार अपभ्रंश (और कभी-कभी-प्रा.) मे –तक (–तिक)के स्थान पर –तिल (–तुल) प्रत्यय लगता है । इस प्रकार, एत्तिल–, एत्तिल्लिय–, एत्तुल–; जेत्तिल–, जेत्तुल–, तेत्तिल–, तेत्तुल– ।

§ ६९. – दृश् और– दृक्ष के साथ समास वाले सार्वनामिक पद अधिकतर पालि मे मिलते हैं, जैसे– इदि>ईदृक्, किदि< कीदृक् , तादि< तादृक्, इदिक्ख– (अर्धमा. एलिक्ख–, एलिक्खय–)<ईदृक्ष– । –दृश् के साथ समास वाले पद सर्वत्र मिलते हैं । इस प्रकार–

ई–; पा. ईदिस (क)–, ईरिस–, प्रा. ईविस–ईइस–, – ईरिस (अ)– <ईदृश् (क) ।

---

१. ये रूप मिलते हैं– प्रा., ए. व , नपुं. एतक (गिर.), एतके (शा.); प्र., ए. व., स्त्री. .एतका (जौ.), तृ., ए. व एतकेन (शा., मा., धौ., जौ.), एतकेना (का.), च , ए. व. एतकाये (गिर.), एतकये (का., धौ.) ।

*ए--; अशो. (शा., मा.) एदिश--, निय. एदिश--, पा. एदिस (क), एरिस--; प्रा. एरिस--, एरिसिअ--, एलिस--, एरिसय--<*एदृश (क) --, *एदृशिक --।

*एता--; अशो. (गिर.) एतारिस--, पा. एतादिस (क)--<एतादृश (क)--।

का--; अप. कइस--< *कादृश--।

की--; पा. कीदिस--, कीरिस--, माग. कीतिश--<कीदृश--।

किम्--; पा. किंदिस--<*किंदृश--।

*के--; निय. केत्रिश--, माग केलिश, प्रा. केरिस (य)--,< *केदृश (क)--या *कयदृश (क) -- ।

केत् ; प्रा. केद्दस--< केद्दृश--।

ता--, अशो. (गिर.) तारिस--, (का , धौ , जौ.) तादिस--, (शा., मा.) तादिश--, पा. तादिस (क)--, अप. तइस--, तडास-- (क्रमदीश्वर)[1] <तादृश (क)--।

*तेत्--; प्रा. तेद्दह<*तेदृश--।

या--, आ--; अशो (का.) आदिस--, (का., धौ., जौ) आदिश--,[2] (मा) अदिश, अप. अइस--, निय यदृश--, पा. यादिस(क)--, अप. जइस--, जडास--[3] (क्रमदीश्वर) ।

*येत्--; प्रा. जेद्दह--<*येदृश--।

§ १००. परवर्ती अपभ्रंश मे कइस--, तइस-- और जइस-- के स्थान मे क्रमशः केहि, तेहि, जेहि प्रयुक्त हुये है ।

§ १०१. पुरुषवाचक सर्वनामो के साथ --दृश प्रत्यय केवल पालि मे मिलता है, जैसे--मादिस--, मारिस--<मादृश--'मेरे समान', अम्हादिश--<अस्मादृश--'हमारे समान', तादिस--<त्वादृश--'तेरी तरह', तुम्हादिस--<युष्मादृश--'तुम्हारी तरह' ।

---

१ तादृश-->* ताद्राश--<तडास --।

२. इसकी व्युत्पत्ति *आदृश--से भी हो सकती है ।

३. तडास--का Correlative ।

७. सार्वनामिक क्रियाविशेषण

§ १०२. स्थान, काल और रीति वाची सार्वनामिक क्रियाविशेषण दन्त्य व्यञ्जनो से प्रारम्भ होने वाले विभिन्न प्रत्ययो[1] से बनते हैं। इस प्रकार—

—तस् (पञ्चमी), अशो (शा) अतो<अत: या यतः, निय. अदेहि<अत:+—भिम्; अशो. (टो. आदि) इते, निय इतु, शौ. इदो<इतः, अशो. (गिर., का, शा., मा) ततो, शौ. तदो, अप. तओ>तो< ततः, प्रा. तत्तो <तद्—त., तदो, प्रा. एत्तो<* एत्तः, शौ एदो <*एतः, एदादु<*एतातः, निय. इमदे<*इमत., प्रा कदो<* कतः, कत्तो<*कत्तः

—त्र (सप्तमी), अशो. (मा) अत्र, निय अत्र (अत्रेमि,)[2] <अत्र, अशो. (शा) एत्र <* एत्र, प्रा जत्थ, अप जद्दु (क्रमदीश्वर) <यत्र, अशो. (गिर., शा, मा, का) तत्र, (का) तता, (गिर) तत्रा, तत, निय. तत्र. तत्रेमि, तत्रिसि,[2] प्रा. तत्थ, अप. तद्दु (क्रमदीश्वर) <तत्र।

—थ; अशो (शा, मा, का) अथ, प्रा.अह<अथ, अशो (गिर. धौ, टो.) तथ, प्रा. तह<*तथ, अप तिध<* तिथ, प्रा जह<* यथ, अप. जिध<*यिथ, प्रा कह<*कथ।

—थम् (जैसे इत्थम्, कथम् मे), अशो (शा, मा.) तथं, (मा) यथं, (का.) अथ, अशो (टो) कथ, प्रा कह, अप. ताह<*नाथम्।

—था, अशो (का, धौ, जौ, टो आदि) अथा<यथा, या ऋ सं. अथा, अशो (गिर., का, टो., सिद्दपुर) यथा, (शा) यथ, अशो. (शा, मा.) तथा, (गिर, का, धौ, जौ, टो आदि) तथा, निय, अंन्यथ, पा अञ्ञथा <अन्यथा।

—थु (जैसे ऋ. स मिथु मे), निय. इथु (इथुअमि [2])<* इत्थु, अप. एथु, केथु, जेथु, तेथु,।

—दा, अशो (धौ, जौ) अदा, (गिर) यदा, (शा) यद<यदा, अशो (गिर., का, धौ) तदा, (शा, मा) तद, अशो. (गिर.) एकदा, पा. कुदा<*कुदा (मिलाइये कुह)।

१. प्राचीन अवशेष है—अशो. (का.) इदानि, (शा., मा.) इदनि, (रूपनाथ, मस्की) दानि, पा दानि, प्रा. दाणि<इदानीम्, अशो. (का.) कुवापि<क्वापि।

२. स भवतः सप्तमी ए व. से —मि प्रत्यय सहित।

३. सप्तमी ए. व. का प्रत्यय जोड़कर।

—ध (जैसे ऋ. सं. अध में); अशो. (गिर, ब्रह्मपुर) इध, (शा., मा.) इह (इम्र), (शा, मा., का, धौ., जौ, टो, रूपनाथ) हिद, (का.) हिदा, निय. इश, प्रा. (शौ.) इध, <भारत-ईरानी*इध (प्रा. भा. आ. इह)।

—धम् (जैसे सार्धम् (?) में; अशो. (मा.) हिदं *<इधम्।—धि[1] (या— थि[2]); अप. जहि, तहि, एत्तहि, अन्नत्तहि<*अन्यत्रधि।

—नीम् ; दानी< इदानीम् (मिलाइये तदानीम्), प्रा. एण्हिं 'अब'।

—हे ; प्रा. एत्ताहे, अशो. एत्तहे 'अब', प्रा, अप जाहे 'जब', ताहे 'तब', अप. तेत्तहे 'तब'।

---

१. जैसे अधि में ।

२. जैसे प्रा. फा अथिय् में ।

*

छः | संख्यावाचक शब्द

१. गणनात्मक (Cardinal) संख्यावाचक

§ १०३ म. भा. आ. के गणनात्मक संख्यावाचक शब्दो की रूप-प्रक्रिया संज्ञा-पदो के समान है। दस से आगे के गणनात्मक शब्दो के प्रथमा तथा द्वितीया के सिवाय अन्य विभक्तियो के रूप विरल हैं।

§ १०४. एक ; अशो. एक– (इक–), निय. एक– (=एक्य–), पा. एक–, प्रा. एक्क–, अर्धमा. एक–<एक–, *एक्य–। संख्यावाचक शब्द के रूप में इसके ए. व. के ही रूप मिलते हैं, ब. व. मे एक– का अर्थ 'कोई, कुछ' होता है। इसके निम्नलिखित विभक्ति-रूप हैं;

ए. व.; प्र., पु.—अशो. (गिर.) एको, (मा., का., जौ.) एके, खरो' ध. एक, एकि, निय. एक<एकः ; प्र., स्त्री.– अशो. (सुपारा) इका<एका ; प्र.–द्वि., नपु., द्वि., पु—(शा., ब्रह्मपुर, सिद्धपुर) एकं, प्रा. एक्कं ; द्वि., स्त्री.—अशो. (सुपारा) इकं<एकाम् , तृ., पु.– नपु.—अशो. (धौ., जौ.) एकेन, अर्धमा. एक्केण, एगेण , ष., पु.– नपु—पा. एकस्स, माग. एक्काह ; पा., स्त्री.– पा. एकिस्सा<*एकिष्याः, स., पु.–नपु.– पा. एकस्मिं, अर्धमा. एगंसि, एगम्मि, महा. एक्कम्मि, शौ. एक्कस्सिं, अप. एक्कहिं (स्त्री. भी)।

ब. व., प्र., पु.– निय. एके (=एक्के), पा. एके, अर्धमा. एगे, महा. एक्के<एके , ष., पु.—अर्धमा. एगेसिं (–सि)।

(१) विस्तारित प्रातिपदिक एकक– का रूप अशो. (जौ.) एककेन (तृ., ए. व) और एकेक– का रूप अशो. (सुपारा) इकिके (प्र., ए. व., पुं.) मिलते हैं।

---

१. मिलाइये अवे. बित्य–<*द्वित्य–, थ्रित्य<*त्रित्य–, निय. बिति, त्रिति। एकत्य– दिव्यावदान मे मिलता है।

(२) एक से बने प्रातिपदिक एकत्य–[1] के निम्नलिखित विभक्ति-रूप मिलते हैं ;

प्र., ए. व.,–पु—पा एकच्चियो, स्त्री.– पा. एकच्चिया।

द्वि., ए. व., पु.—पा. एकच्चियं।

प्र., ब. व., पु.—अशो. (गिर) एकचा, (मा) एकतिय, (का., धौ., जौ.) एकतिया, पा. एकच्चिया<*एकत्याः, अशो. (शा.) एकतीए<*एकत्ये।

(३) संख्यावाचक समास के प्रथम पद के रूप मे एक– या तो एक– ही रहता है अथवा एक्क– हो जाता है, परन्तु अन्य प्रकार के समासो मे पूर्वपद के रूप मे यह सर्वत्र एक्क– हो जाता है ; जैसे—(अशो. एकपुलिस–, एक-पुलिस–)। अशोकी प्राकृत मे एकतर– (एकतल–)<एकतर– 'कुछ, कोई' के अर्थ में आये हैं।

§ १०५. दो ; द्व– (द्वि–)। इस प्रातिपदिक के दो अलग आक्षरिक रूप हैं—(१) दुव– (जैसा ऋ. सं. दुवा, प्रा. फा. दुविता मे) तथा (२) द्व–। म. भा. आ. मे ये दोनो ही रूप मिलते हैं, द्व्यक्षर (Disyllabic) रूप जैसे—दुवे (–ए), दुवि (–इ), दु आदि मे और एकाक्षर (Monosyllabic) रूप जैसे— द्वो, द्वे, द्वि, दो, वे (<द्वे) आदि मे। सामान्यतः स्त्री.–नपु., –प्र.–द्वि. के रूपो का प्रचलन है। इस प्रातिपदिक के ब. व. के रूप ग्रीक भाषा की कुछ विभाषाओ मे मिलते हैं। प., ब. व. के प्रत्यय– अम् (–ण्णम्) मे दो नासिक्य चतुर्णाम् और षण्णाम् से लिये गये हैं।

प्र.– द्वि.– अशो (गिर.) द्वो (पु.), द्वे (स्त्री.), (मा., का., जौ., सहसराम) दुवे (पु.), (शा.) दुवि (पु.–स्त्री.), निय. दुइ, द्वि, दुए, दु, तुइ, पा. द्वे, दुवे, नानाघाट अभि. वे, प्रा. (पु.–स्त्री.) दो, दु, दुवे, बे, (नपुं.) दोण्णि (दोण्णि) बेण्णि, विण्ण, अप. वि, बेण्णि (बेण्णि), बेन्न (वेन्न)[1], विन्नि, तृ.—अशो. (टो.) दुवेहि, पा., बौ. सं. द्वीहि, प्रा. दुवेहिं, शौ. दोहिं, बेहिं, अप. बेहिं; ष.– पा.दुविन्न (द्विन्नं), प्रा. दोण्ण[2] दोण्हं[3], दुण्ह, बेण्ह[3], (व्याकरण मे)। दुवेण्णं (शौ.), अप. बिहुँ, बेण्ण (बेण्ण)[4], स.—पा. द्वीसु, प्रा. दुवेसु (शौ.). वेसुं (व्याकरण मे), अप. बेंहि।

१. जैसा सरह के दोहाकोष मे 'वेण्ण (वेण्ण) वि कूव पडेइ'।

२. मिलाइये ग्रीक (हेरोदोतुस) दुओन।

३. दोण्णं (वेण्ण) का दोहं से मिश्रण (*वेहं, मिलाइये अप. बिहुँ)।

४. प्र. के लिये प्रयुक्त।

(1) संख्यावाचक समासो मे इस प्रातिपदिक का रूप दुवा– (द्वा–) है और अन्य प्रकार के समासो मे यह सामान्यतः दु– (दो–) है, विरल रूप से दि– है और अति विरल रूप से बे– है। इस प्रकार, अशो. (टो. आदि) दुपद–, निय. दुगुन–, प्रा. दुगुए– दुउण–, दोमुह–, अर्धमा. वेदोनिय– (<द्विद्रौणिक–), बेन्दिय– (<द्व–इन्द्रिय). प्रा. दोतिण्णि=द्वित्राणि।

(2) सार्वनामिक प्रातिपदिक उभ– 'दोनो' के निम्नलिखित विभक्ति–रूप मिलते हैं—

प्र.–द्वि.– खरो. ध. उहु, पा. उभो, उभे (मूलतः स्त्री.– नपुं.), तृ.– पा. उभोहि, उभेहि, ष.– पा. उभिन्न ; स – पा. उभोसु।

(अ) विस्तारित प्रातिपदिक उभय– के रूप अशोकी और पालि में दोनो वचनो मे है। इस प्रकार, अशो. (शा., मा.) उभयस (ष., ए. व.), (का.) उभयेस[1] (ष., ब. व.)।

(आ) पालि के प्रातिपदिक दुभय– तथा इसके स्त्री. दुभयिनी– मे द्व– और उभय– का मिश्रण हुआ है।

§ 106. तीन ; प्रा. भा. आ. भाषा का लिङ्ग-भेद म. भा. आ. के प्रारम्भ से ही उलट-पलट होने लगा था। पालि मे कुछ प्राचीनतापरक रूपो को छोड म. भा. आ. मे अन्यत्र स्त्री. प्रातिपदिक तिसृ– बच नही पाया। इसमे नपुनकलिङ्गी रूपो का ही प्राधान्य रहा और अपभ्रंश मे तो ये ही रूप बच रहे है।

प्र.–द्वि – (1) अशो. (शा.) त्रयो, निय. त्रे (य), पा. तयो (पु.), बौ. सं. त्रयो (नपु. भी), प्रा. तओ<त्रयः; (2) अशो. (गिर.) त्री (ती), (3) अशो. (मा., का., टो. आदि) तिंनि (तिनि), पा. तीणि, नागार्जु. तिनि, प्रा. तिण्णि, अप. तिण्णि<त्रीणि, (4) पा. तिस्सो (स्त्री.)<तिस्रः; तृ.– पा. तीहि; नागार्जु. तिंहि, प्रा. तीहिं, तिहिं ; ष.– निय. त्रिन, पा. तिण्ण[2] (पु.–नपु.) तिस्सन्नं (स्त्री.), प्रा. तिण्णं, तिण्ह, स.–अशो (टो. आदि), तीनु, तिसु, पा. तीसु (–सु)।

(1) समास मे पूर्वपद की स्थिति मे यह संख्यावाचक शब्द त्रय– (>त्रइ, त्रे–[3]), त्री– के रूप मे मिलता है। इस प्रकार अशो. (गिर.) त्रइदस, (का.,

---

1. हुल्त्स् (Hultzch)।
2. तिण्णन्न भी (ष. का दुहरा रूप)।
3. मिलाइये ऋ. सं. त्रेधा।

धौ.) त्रेदस, (शा.) तिदश[1], निय. त्रेवर्षग 'तीन साल का' पा. तिपिटक–, प्रा. तेरह, ते– इन्दिय—।

§ १०७. चार ; इस संख्यावाचक शब्द के रूपो मे लिङ्गो का पूरी तरह घालमेल हो गया है। स्त्री. प्रातिपदिक चतसृ– पालि और शौरसेनी मे कुछ प्राचीनतापरक रूपो मे बच रहा है। अशोकी प्राकृतो मे ही –[?]त्– के लोप की इसके सिवाय और कोई व्याख्या नही की जा सकती कि चतुर– के अलावा चवुर– प्रातिपदिक भी रहा होगा, जो चतुर– तथा *त्वर– (<भारत-ईरानी* क्त्वर्, जैसा प्रा. भा. आ. तुरीय–; तुर्य– मे) के मिश्रण से बना होगा।

प्र., पु.– (१) अशो. (गिर.) चत्पारो<चत्वारः ; (२) अशो. (शा.) चतुरे<चतुरः (द्वि.); (३) अशो. (का.) चतालि<चत्वारि ; प्र.–द्वि. (१) प्रा. चत्तारो., (२) खरो. ध. चउरि, निय. चहुर (चउर)[2], पा. चतुरो (पु.–नपुं.), प्रा. चउरो ; (३) खरो. धा. चत्वरि, पा. चत्तारि (पु.–नपु.), प्रा. चत्तारि, अप. चारि ; (४) निय. चतु<चतुर (क्रियाविशेषण), (५) शौ. चदस्सो (स्त्री.); तृ – पा. चतुहि, चतूहि, चतुब्भि (पु.), प्रा. चउहिं, चऊहिं ; ष – पा. चतुण्णं (पु.–नपु.), चतस्सन्न (स्त्री.), नानाघाट चतुन, पल्लव-दानपत्र चतुण्हं, प्रा. चण्ह , स.–पा. चतुसु, चतूसु, प्रा. चउसु।

(१) समास मे पूर्वपद की स्थिति मे यह संख्यावाचक शब्द परम्परया प्राप्त समासो मे चतुर्– तथा अन्य समासो मे *चतु– के रूप मे मिलता है। इस प्रकार, पा. चतुग्गुण– और चतुकण्ण–, प्रा. चउम्मुह– और चउमुह– आदि।

§ १०८. पाँच , प्र.–द्वि.– खरो. ध. पज, निय. पच, पा., प्रा. पञ्च; तृ.– पा. पञ्चहि, प्रा. पञ्चहि, अप. पञ्चहिं , ष.– पञ्चन्न, प्रा. पञ्चण्णं, अर्धमा. पञ्चण्हं, अप. पञ्चह ; स.– खरो. ध. पजषु, पा. पञ्चसु, प्रा. पञ्चसु (–सुं)।

बहुत बाद के वैयाकरण राम तर्कवागीश ने निम्नलिखित स्त्रीलिङ्ग रूपों का भी उल्लेख किया है—पञ्चा (प्र.– द्वि.), पञ्चाहिं (तृ.), पञ्चासुं (स.)[4]।

---

१. आगे देखें।

२. मिलाइये चोदस और चावुदसं।

३. चहुर– मे– ह्– के लिये मिलाइये चावुदस मे – व्–

४. पिशेल § ४४०।

§ १०९. छः ; प्र.–द्वि. –निय. षो (<*ष्वक्ष्–, मिलाइये षोडश), पा., प्रा. छ[1] अप. छह<*षषम्, तृ. –पा. छहि, प्रा. छहिं[2] ; ष. –पा. छन्नं, प्रा. छण्ण, छण्ह (–हं)[3] ; स. – अशो. (शा., मा., का.) षषु, पा. छस्सु, पा., प्रा. छसु. (पन्चसु के सादृश्य पर)[4] ।

राम तर्कवागीश ने निम्नलिखित स्त्रीलिङ्गी रूप भी बताये हैं— छाओ (प्र.–द्वि.), छाहिं (तृ.) ।

सात ; प्र.–द्वि. –निय. सत, पा., प्रा. सत्त ; (तृ.) –चौ. स. सहहि, प्रा. सत्तहि ; ष. –पा. सत्तान, सत्तन्नं, प्रा. सत्तण्हं ; स.—प्रा. सत्तसु ।

§ ११०. आठ ; प्र.–द्वि.—निय. अठ, पा., प्रा., अप. अट्ठ, प्रा. अढ, अप.[5] अट्ठइ, अट्ठाआ ; तृ.–अट्ठाहि, अट्ठहि, प्रा. अट्ठहिं ; ष.—प्रा.अट्ठण्ह (–हं) ।

§ १११. नौ ; प्र.–द्वि.—खारवेल नव, निय. नो, पा. नव, प्रा. णव ; तृ.–प्रा. नवहिं, ष.–अर्धमा. नवण्ह (–हं) ।

§ ११२. दस, प्र.–द्वि.—अशो. (शा., मा.) दश, अशो. (गिर., का., धौ., जौ.)[6], निय., पा., प्रा., अप. दस, प्रा., अप. दह ; तृ.–दसभि (–हि), प्रा. दसहिं, माग. दशेहिं ; ष.–प्रा. दसानं, दसण्ह (–हं), मा. दशान ; स.– प्रा. दससु ।

§ ११३. ग्यारह ; पा. एकादस, एकारस, अर्धमा. एक्कारस, इक्कारस महा., अप. एआरह, अप एग्गारह ।

बारह ; अशो. (धौ.) दुवादस, अशो. (का., टो आदि) दुवादश, (जौ.) दुवादस, (मा.) दुवादस, (गिर.) द्वादस, (शा.) बदय, जेतवनाराम अभि. (लंका) बोलस, पा. द्वादस, नानाघाट, पा., प्रा. बारस, अर्धमा. (जैन महा. भी) दुवालस, महा., अप. बारह ।

---

१. राम तर्कवागीश ने छा का उल्लेख भी किया है (पिशेल § ४४१) ।

२. वही छएहिं ।

३. वही छअण्ण ।

४. वही छीसु (त्रीसु के सादृश्य पर) ।

५. ब. व. प्रत्यय सहित ।

६ समास के पूर्वपद के रूप में ।

तेरह ; अशो. (गिर.) त्रइदस, (मा.) त्रेदश, (का., धौ) तेदस, (शा.) तिदश[1], निय. त्रोदस, नानाघाट, पा. अर्धमा. तेरस, पा. तेळस, महा., अप. तेरह।

चौदह ; अशो. (नागार्जुन गुहा) चोदस, पा. चुद्दस, चतुद्दस, प्रा. चोद्दस, चोद्दह, चउद्दस, अप. चउद्दह, चाउदह (चाउद्दह), दह–चारि[2] (चारि–दह भी)।

पन्द्रह ; खारवेल पंदरस, नासिक गुहा-लेख पनरस, निय. पंचदस, पा. पञ्चदस, पन्नरस, पा., अर्धमा., जैन. महा. पण्णरस, अप. पण्णरह, दह–पञ्च[2] (दह–पञ्चइं भी)।[3]

सोलह ; पा., प्रा. सोळस, पा. सोरस, अप. सोळह, सोळा।

सत्रह ; पा., सत्तदस, पा., प्रा. सत्तरस, अप. दहसत्त[2]।

अठारह ; पा. अट्ठादस, पा., प्रा. अट्ठारस, अप. अट्ठारह।

उन्नीस ; अशो. (भाब्रू) एकुनबीसति, पा. एकुनवीस(ति), अर्धमा. एगुण-वीसं, अउणवीसं, अउणवीसई, अप. अगुणविसा, णवदह[2]।

बीस ; अशो. (रुम्मनदेई, नागार्जुन,) पा. वीसति, निय. विशति, प्रा वीस (–सं), वीसा, प्रा. वीसई, वीसइं, अप. वीस[4]।

बाइस ; पा. द्वावीस(ति), बावीस(ति), प्रा. बावीसं, अप. बाइस।

तेइस ; पा. तेविस, प्रा. तेवीसं, अप. तेइस।

चौबीस ; पा. चतुवीस, प्रा. चउव्वीसं (चउवीसं), अप. चउवीस, चोवीस।

पच्चीस ; अशो. (टो. आदि) पंनवीसति, पा. पञ्चवीस, पण्णवीसति, पण्णुवीस[5], प्रा. पणवीसं, पणुवीसं[5], पणुवीसा(हि)[5], अप. पचीस।

---

१. त्रीवश से, मिलाइये ग्रीक 'त्रिआ काइ देका'।

२. मिलाइये ग्रीक 'देका दुओ', लैटिन 'देकेम् नोवेम्'।

३. नपुं., ब. व. प्रत्यय सहित।

४. ग्रीक ईकति के समान म. भा. आ. मे भी प्रा. भा. आ. विंशति का नासिक्य वर्ण लुप्त है।

५. मिलाइये अशो. (टो. आदि) सडुवीसति।

छब्बीस ; अशो. (टो. आदि) सडुवीसति[1], प्रा. छब्बीसं, अप. छब्बीस, छहवीस[2] ।

सत्ताइस ; अशो. (टो.) सतवीसति, प्रा. सत्तवीसं, सत्तविसं, सत्तावीसा, अप. सत्ताईस ।

अट्ठाइस , प्रा. अट्ठावीसं, अट्ठावीसा, अप. अट्ठाइस, अठाइसा ।

तीस ; निय. त्रिश, पा. तिस (–स), तिंसा, तिंसति, प्रा., अप. तीसं, तीसा[3], अप. तीस ।

बत्तीस ; पा. द्वत्तिंस, बत्तिस, प्रा. बत्तिस, बत्तीसा, महा. दो–सोलह, अप. बत्तीस ।

तैंतिस , प्रा. तेत्तीसं, अर्धमा तायत्तीसा[3], तावत्तीसग ।

चौंतिस ; प्रा. चोत्तीस ।

पैंतीस , खारवेल पनतीसाहि (तृ.) ; प्रा. पणतीसं ।

छत्तीस ; पा. छत्तिंस, प्रा. छत्तीसं, छत्तीसा ।

चालीस ; निय. चपरिश, पा चतारिस (–सं), चत्तारीसा,

चत्तालीस (–सं,) चत्तालीसा, तईस (–स) तालीस, प्रा. चत्तालीसं,

चत्तालीस, चयालीसं, प्रा , अप. चालीस[4] ।

बयालीस ; निय. दु–चपरिश, अर्धमा. बायालीसं <द्वा (क्) तारीश– ।

पैंतालीस ; अर्धमा. पणयालीसं,पणयालीसा, अप. पचतालिस ।

अड़तालीस ; अप अठतालीस ।

पचास , निय. पंचश, पा. पण्णास(–सं) पण्णासा, प्रा. पण्णासं, पण्णासा, पन्ना ।

छप्पन ; अशो. (शा.) सपंञा(स), पा. छप्पञ्ञास ।

अठावन ; अप. बहिं उनी सट्ठि 'दो कम साठ' ।

साठ ; पा. सट्ठि, प्रा. सट्ठि (–ट्ठि) ।

---

१. –ड– श्रुतिमूलक (glidic) है ।

२. –ह्– की उत्पत्ति प्रातिपदिक को –अ– से विस्तारित करने पर हुई है ; भारत-यूरोपीय *स्वेक्स (सेक्स)–>भारत-ईरानी *स्वश्–(सश्–)> प्रा. भा. आ. षष्–, मिलाइये हिन्दी छै (बंगला छय्) ।

३. बीसा, तीसा का स्त्री प्रत्यय विंशत्, त्रिंशत् के लिङ्ग का स्मारक है ।

४. भारत-यूरोपीय *क्वतृ– से ।

त्रेसठ ; अप. तेवट्ठिं ।

सत्तर ; पा. सत्तति नागार्जु. सत्तरि, पा. सत्तरि, सत्तति, अर्धमा. सत्तरिं ; सयरि ।

इकहत्तर ; प्रा. एक्कसत्तरिं, अप. एहत्तरि ।

बहत्तर ; अप. बावत्तरि ।

पिचहत्तर ; खारवेल पानतरीहि[1] (तृ.) ।

अस्सी ; पा. असीति, अर्धमा. असोइ,असीईं, अप. असि ।

नब्बे ; निय. नोवति, पा. नवुति, अर्धमा. नउइं, नउइ ।

सौ ; अशो. (शा., मा., का.) शत–, (रूपनाथ, ससराम) सत–, खरो. ध. शत–, शतेन, शतिन (तृ., ए. व.) निय. शत, पा. सत, प्रा. सद–सअ, अर्धमा. सय– ।

एक सौ दस ; निय. दशुतर शत 'दस अधिक सौ, ।

एक सौ अड़तीस ; अप. अढयालिसउ सउं ।

एक सौ सत्तर ; नागार्जुन सत्तरि सतं 'सत्तर+सौ' ।

दो सौ , नासिक गुहा. –सतानि बे ।

दो सौ छियालीस ; अशो. (ससराम) दुवेसपना (स) सता ।

तीन सौ छियालीस ; अप. छायालीसयइं तिण्णि सयइं ।

तीन सौ त्रेसठ , अप. तेसट्ठइं तिण्णि सयइं ।

एक हजार ; अशो. (शा., मा., गिर.), निय., पा. सहस्र–, खरो. ध. सहस(नि) (द्वि., ब. व), सहसेन, सहसिन (तृ., ए. व.), प्रा. सहस्स ।

एक हजार आठ , निय. सहस्र अस्ति (तृ., ए. व.) ।

चार हजार ; नासिक—सहस्रेहि चतुहि (तृ.) ।

आठ हजार ; नासिक—सहस्राणि अट ।

नौ हजार दो सौ ; प्रा. दससहस्साणि अट्ठसउणगाणि ।

तीस हजार ; अप. वहगुणिय तिण्णि सहस ।

सत्तर हजार , नासिक—सहस्रानि सतरि ।

एक सौ हजार ; अशो. (गिर.) सतसहस्र–, अर्धमा. सयसहस्स– ।

तीस लाख और पाँच सौ हजार ; खारवेल पनतीसाहि सतसहसेहि (तृ.)।

सत्तर लाख और पाँच सौ हजार ; खारवेल पनतरीह सतसहसेहि (तृ.) ।

---

[1] स्वीकृत पाठ पानतरीय अशुद्ध है, मिलाइये पनतीसाहि ।

करोड, प्रा, अप. कोडि।

पचास करोड़; प्रा. पण्णासं कोडियो।

२. क्रमात्मक संख्यावाचक (Ordinals)

§ ११४ (क) क्रमात्मक संख्यावाचक शब्द के स्थान पर कहीं-कहीं गणनात्मक (Cardinal) संख्यावाचक शब्द का प्रयोग मिलता है। इस प्रकार, निय. दशंमि (स, ए व.) 'दसवाँ', खारवेल चतुवीसति 'चौवीसवाँ'।

पहला; (१) खारवेल पधम-, निय. प्रथम, नासिक पथम-, पा. पठम-, प्रा. पढम-. पुढम- आदि, (२) निय. प्रतम, पढ्रम-<प्रा. सं. प्रतम- (मिलाइये प्रा. फा. फ्रतम अवे. फ्रथम-, (३) अप. पहिल-, पहिली- (स्त्री.) <*प्रथिर-, (मिलाइये प्रा. फा. फ्रथर-), (४) अर्धमा. पढमिल्ल< पढम- + पहिल्ल-।

दूसरा; (१) अशो. (नागार्जुन), खारवेल दुतिय-, अशो. (कोशा.) दुतीय-, दुतिया- (स्त्री.), पा. दुतीय-, प्रा. दुदीअ-, दुईअ, दुदिअ-, दुइअ-, अर्धमा. दुइअ-<*द्वतीय; (२) नानाघाट, नागार्जुन बितिय-, नासिक बितीय-, माह. बिइज्ज-, अर्धमा. बिइय-, बीय-, [1] प्रा., अप. बीअ-[1]<द्वितीय-, (३) निय. बिति-, द्विति; अर्धमा. दोच्च-, दुच्च-<*द्वित्य- (मिलाइये अवे. बित्य-), *द्वत्य—

तीसरा; (१) खारवेल, नासिक ततिय-, पा. ततीय-, प्रा तदिअ-, तइअ, अप तीअ-, तिइज्ज-, तइज्जि- (स्त्री.) <तृतीय-; (२) निय. त्रिति, अर्धमा. तच्च-<*त्रित्य- (मिलाइये अवे. थ्रित्य, *तृत्य—।

चौथा, खारवेल चवुथ-, निय. चतुर्थ-, पा. चतुत्थ, प्रा. चदुत्थ-, चउत्थ-, चउट्ठ-, चउत्थ.- (स्त्री.), महा. चोत्थी- (स्त्री.), अर्धमा. चउट्ठ-, चउत्थ-।

पाँचवाँ, खारवेल, नागार्जुन पचम-, निय. पचम-, (गणनात्मक संख्यावाचक के रूप मे प्रयुक्त), पा, प्रा. पञ्चम-, पञ्चमी (स्त्री), अर्धमा. पञ्चमा- (स्त्री.)।

छठा; नागार्जुन. छठ-, पा., प्रा., अप छट्ठ-, अर्धमा. छट्ठा-, (स्त्री.)।

सातवाँ; खारवेल सतम-, नासिक सातम-।

---

१. दीर्घ ई संभवतः इइ के सकोच का परिणाम है अथवा इन रूपो को प्रा. सं. द्वित-, त्रित-से जोडा जा सकता है।

आठवाँ ; अशो. (टो. आदि) अठमी–, अठमि– (स्त्री.), खारवेल अठम–, निय. अठम– (गणनात्मक सख्या के रूप में प्रयुक्त), पा., प्रा. अट्ठम–, अट्ठमी– (स्त्री.)।

दसवाँ ; खारवेल, नागार्जुन दसम–, निय. दशम–, पा., प्रा. दसम–, दसमी– (स्त्री.)।

ग्यारहवाँ ; निय. एकादश –।

बारहवाँ ; निय. बदश, बदशि ; जैनमहा. बारसी– (स्त्री.), प्रा. बरसमा–।

तेरहवाँ ; नासिक तेरस, नागार्जुन तेर–, खारवेल तेरसम–।

चौदहवाँ ; अशो. (टो. आदि) चावुदस–, नागार्जुन चोदस–, पा. चुद्दस–, चातुद्दस –।

पन्द्रहवाँ ; अशो. (टो. आदि) पंनदस–, पंनडसा–(स्त्री.), निय. पंचदशम्मि (स., ए. व.), पा. पन्नरस–, पण्णरस–।

सोलहवाँ ; खारवेल षोडशा (स्त्री.)[1], पा. सोळस–।

अठारहवाँ ; नागार्जुन अठारस–।

उन्नीसवाँ ; नासिक एकुनबीस–।

बीसवाँ ; पा., अर्धमा. वीस–।

इक्कीसवाँ ; नासिक एकविस–।

तेइसवाँ ; कालावान-ताम्र-पत्र त्रेविश–।

चौबीसवाँ ; नासिक चतुविस–।

अट्ठाइसवाँ ; सुइ विहार ताम्र-पत्र अठविस–।

चालीसवाँ ; पा. चत्तारीस–, चत्तालीस–।

इकतालिसवाँ , कनिष्क का आरा प्रस्तर-लेख एकचपरिश–।

साठवाँ , पा. सट्ठितम–।

अस्सीवाँ ; पा. असीतितम–।

(ख) म. भा. आ. का अपना विशिष्ट क्रमात्मक (Ordinal) प्रत्यय—म है, जो निम्नलिखित रूपो मे विस्तारित हुआ है;

छठा ; निय सोषम, पा. छट्ठम–[2]।

---

१. कल अवेलि षोडस।

२. मिलाइये मध्य बंगला सप्तम–।

ग्यारहवाँ ; अप. एयाहरम– ।

बारहवाँ , खारवेल, अर्धमा. बारसम– ; पा. द्वादसम–, अर्धमा. दुवालसम– ।

तेरहवाँ ; खारवेल तेरसम– ।

चौदहवाँ ; पा., अर्धमा. चोद्दसम–, अर्धमा. चउद्दसम– ।

पन्द्रहवाँ ; पा. पञ्चदसम–, पण्णरसम–, अर्धमा. पन्नरसम– ।

सोलहवाँ , पा. अर्धमा सोलसम– ।

बीसवाँ , पा., बीसतिम–, अर्धमा. बीसइम–[1], अप. बीसम– ।

तीसवाँ ; तख्त-ए वाही प्रस्तर– लेख तिंशतिम– [1] ।

चालीसवाँ , पा. चत्तारीसतिस–, चत्तालीसतिम–, अर्धमा. चत्तालीसइम–[1] ।

बयालीसवाँ ; अप. दुयालिसम– ।

सत्तरवाँ , पटिक का तक्षशिला ताम्र-पत्र अठसततिम– ।

इकहत्तरवा ; अप. एकहत्तरिम– ।

उनासी ; अप. एक्कुणासीम– ।

अस्सीवाँ ; अर्धमा. असीइम–[1]– ।

बयानवेवाँ , अप. दुनउदिम– ।

सौवाँ , पा. सतम–, [1] अप. सयम– ।

एकसौदोवाँ , अप. दुरुत्तरसयम– ।

(ग) बौद्ध संस्कृत मे प्रत्ययान्त गणनात्मक संख्यावाचक शब्द के पदान्त स्वर को –अ मे परिवर्तित कर क्रमात्मक के रूप मे प्रयोग किया गया है । इस प्रकार ;

उन्नब्बेवाँ ; एकूननवत ।

बयानवेवाँ ,द्वानवत ।

पिचानवेवाँ ; पञ्चनवत ।

३. भिन्नात्मक (Fractional) संख्यावाचक

§ ११५. म.भा. आ. मे अर्ध– अन्त तक बना रहा ; अशो. (टो.) अढ– पा., प्रा. अड्ढ– । अर्ध के बाद जब कोई गणनात्मक संख्या आती है तो इसका

---

१. वर्ण-लोप से यह विंशतितम–, अशीतितम–, शततम– जैसे रूपो के सादृश्य पर बना होगा ।

अर्थ इस संख्या की पूर्ववर्ती संख्या+आधा होता है, जैसे–अर्धमा. अड्ढछट्ठ अर्थात् साढ़े पाँच। परन्तु इस क्रम के विपरीत अर्धमा. मे दिवड्ढ– अर्थात् 'डेढ' मे गणनात्मक संख्या पहले आई है।

डेढ़ ; अर्धमा. दिवड्ढ–<द्विता–+अर्ध– अथवा द्वि–+अर्ध–।

ढाई ; अशो. (रुम्म., मस्की., ब्रह्मपुर, सिद्धपुर) अढतीय–, अढतिय–, पा. अड्ढतीय–, पा. अडूधतेय्य–, बौ. सं. अड्ढातिय–, अर्धमा. अड्ढाइज्ज–< अर्ध–+ (तृ) तीय–।

साढे तीन ; पा. अड्ढुड्ढ अर्धमा. अद्धउत्थ–<अर्ध+*तुर्थ (तुर्थ– के लिये ; मिलाइये तुरीय–, तुर्य–)।

साढ़े पाँच , अर्धमा. अदूधछट्ठ–<अर्ध–+षष्ठ–।

साढ़े बारह ; पा. अड्ढतेलस–<अर्ध–+त्रयोदश–।

४ गुणात्मक (Multiplicative) संख्यावाचक

§ ११६. (१) सकृत 'एक बार' विभाषीय रूप मे बना रहा, पा. सकि (–किं), अर्धमा. सइं।

(२) खरो. ध. सर्वसि 'हमेशा', अर्धमा. एक्कसि (–सिं), एक्कसिअं 'एक बार' मे भारत-यूरोपीय प्रत्यय *–किस् है (जैसे ग्रीक तेत्राकिस्, हेपताकिस् मे) जो प्रा. भा. आ. धाः से सम्बद्ध है।

(३) म. भा. आ. का विशिष्ट गुणात्मक प्रत्यय –खत्तुं (–खुत्तं) प्रा. भा. आ. –कृत्वस् से व्युत्पन्न, जिसका स्वतन्त्र रूप से अथवा समास मे उत्तरपद के रूप मे जैसे–अथर्ववेद अष्टकृत्वः, बौ सं तृष्कृत्व) प्रयोग होता था। अर्धमा. दुक्खुत्तो 'दो बार' <*द्वष्कृत्वः=द्विः कृत्वः, पा. तिक्खत्तुं, अर्धमा. तिक्खुत्तो, बौ. स. तृष्कृत्व 'तीन बार', महा. सअहुत्तं 'सौ बार'।

(४) अपभ्रंश मे तृ.–स. का प्रत्यय –हिं कुछ गुणात्मक क्रियाविशेषणों मे भी मिलता है, जैसे—बिहिं 'दो बार', तिहिं 'तीन बार', पञ्चहिं 'पाँच बार', ये सब उदाहरण वसुदेवहिंडी से है।

५. अन्य संख्यावाचक

§ ११७. (१) समूहवाचक संख्यावाचक (Collective) म भा. आ. मे परम्परागत हैं—पा. दुक–, अर्धमा. दुग–, दुय– <*द्वक–=द्विक–, प्रा. बिउण–<द्विगुण– ; प्रा. दोण्ह (ष., ब. व. से), पा. चतुक्क <*चतुर्क या

चतुष्क, अर्धमा छक्क-<षट्क—। नहपान का नासिक गुहालेख वारसक 'वारह कार्पापणो की रकम', पचत्रिशक 'पैंतीस कार्पापणो की रकम'।

(२) नासिक गुहा-लेख मे प्रतिशत इस प्रकार प्रकट किया गया है—पडिक-शत 'एक प्रतिशत', पायून-पडिक-शत 'तीन-चौथाई प्रतिशत'।

(३) संख्यावाचक शब्द मे विध- तथा -धा प्रत्ययो के योग से क्रमश. सख्यावाचक विशेपण तथा क्रियाविशेपण वनाये गये हैं। इस प्रकार पा. सत्तविध- 'सात प्रकार के', अर्धमा. दुविह 'दुगना', पा. सत्तधा 'सात तरह से', अर्धमा. दुहा 'दो तरह से'।

*

सात | क्रियापद

§ ११८. प्रा. भा. आ. भाषा की क्रियापद-प्रक्रिया का म. भा. आ. भाषा मे संज्ञा-शब्द-रूप प्रक्रिया की अपेक्षा कही अधिक सरलीकरण हो गया। इसमे द्विवचन का तो सर्वथा लोप हुआ ही, आत्मनेपद भी प्रायः लुप्त हो गया। कर्तृवाच्य (Active) तथा कर्मवाच्य (Passive) के क्रियापद का भेद केवल धातु के रूप (Stem) तक ही रह गया। कालो मे से सम्पन्न (Perfect) पूर्णतः लुप्त हो गया (केवल प्रारम्भिक म. भा. आ. मे आह और विदु रूप ही इस काल के स्मारक रह गये, परन्तु यहाँ भी इनके साथ कही-कही वर्तमान के प्रत्ययो का योग मिलता है)। असम्पन्न (Imperfect) तथा सामान्य (Aorist लुङ्) के रूप घुलमिल गये, परन्तु ये भूतकालिक रूप भी अधिक समय तक न टिक सके। ये असम्पन्न-सामान्य के मिलेजुले रूप प्राचीनपरकता की प्रवृत्ति के कारण अपनाये गये थे; प्राकृतो मे इनका प्रयोग विरल है और अपभ्रश मे तो ये सर्वथा लुप्त ही हो गये है। म. भा. आ. मे भूतकाल व्यक्त करने के लिये भूतकालिक कृदन्त (Past-participle) की प्रवृत्ति ने धातुओ के भूतकालिक रूपो के प्रयोग को सयाप्त ही कर दिया (इन भूतकालिक कृदन्त रूपो मे कही स्वार्थे प्रत्ययो को जोडा गया और कही नही इनके धातुओ के प्रत्ययो को भी जोड दिया गया)। भविष्यत् काल के रूप म. भा. आ. मे अन्त तक बने रहे, परन्तु अपभ्रश मे इनके स्थान मे भी वर्तमान के रूपो अथवा -तव्य प्रत्ययान्त भविष्यत्-कृदन्त के रूपों के प्रयोग की प्रवृत्ति बढने लगी। भावो (Moods) मे से निर्बन्ध (Injunctive) का प्रयोग तो प्रा. भा. आ. काल मे ही लुप्त होने लगा था। अभिप्राय (Subjunctive) का यद्यपि लौकिक संस्कृत मे प्रयोग नही मिलता, परन्तु प्रारम्भिक म. भा. आ. मे इसके कुछ रूप बच रहे हैं, जिनका प्रायः वर्तमान निर्देश (Present indicative)

के अर्थ मे प्रयोग किया गया है। सम्भावक (Optative) के रूप म. भा. आ. के द्वितीय-पर्व तक बने रहे और तब ये –इज्ज प्रत्ययान्त कर्मवाच्य के रूपो के साथ घुलमिल गये। अनुज्ञा (Imperative) तथा निर्देश (Ind.cative) भाव म. भा. आ. मे अन्त तक बने रहे।

१. क्रियापदो का अङ्ग* (Verbal Base).

§ ११८. म. भा. आ मे व्यञ्जनो मे जो वर्ण-विकार हुये, उनके फल-स्वरूप धातु-प्रत्यय–विभाग का प्रा. भा. आ. भा. कालीन स्पष्ट ज्ञान धुँधला पड गया। –अ– तथा –अय– विकरण वाली ऐसी धातुओ, जिनमे संयुक्त–व्यञ्जन नही थे तथा आकारान्त एकाक्षरीय धातुओ को छोड, अन्य धातुओ मे धातु का अन्तिम व्यञ्जन विकरण (अथवा प्रत्यय) के साथ समीकृत हो गया, जिसके कारण धातु, विकरण तथा प्रत्यय का स्पष्ट विभाग कर पाना संभव न रह गया। इस प्रकार यह समीकृत अग (अर्थात् धातु+विकरण) म. भा. आ. मे नयी धातु अथवा अंग समझा जाने लगा। इस प्रकार म. भा. आ. मे वड्ढ–<वर्ध्—अ– (√वृध्–), कस्स <कर्ष् +–अ– (√कृष्–), जुज्झ–<युध्+–य– (√युध्–), जिण–<जि+–ना– (√जि –), सक्क–<शक् +–य– (कर्मवाच्य) या शक्+–नो– (√शक्) नयी धातुयें अथवा अंग समझे गये।

§ ११९ म. भा. आ. मे क्रियापदो के अङ्गो के केवल तीन ही विभाग किये जा सकते हैं— (१) –अकारान्त, (२) –ए (अथवा –इ) कारान्त, और (३) मिश्रित। इन तीनो विभागो के वर्तमान काल के रूपो की भारोपीय तथा प्रा. भा. आ. से उत्पत्ति नीचे प्रदर्शित की जा रही है।

§ १२०. –अकारान्त अङ्गो की उत्पत्ति निम्न प्रकार से है,

(१) प्रा. भा. आ –अ– विकरण वाले गणो से (वर्तमान निर्देश),

(अ) –अ–विकरण वाला गण (भ्वादि)—अशो., पा. (गिर.) खरो. ध. भवति, निय. होअति, प्रा. हवइ, सभवदि (–इ)<भवति ; अशो. (का.) –वतति, खरो. ध. वतति, पा. वट्टति, प्रा., अप. वट्टइ<वर्तते, वर्तति, पा. रवति, प्रा. रवइ<रर्वात, खरो. ध. शयदि, शेअदि<शयति, शयते (ऋ. सं.)।

---

* धातु के विकरण-युक्त रूप को, जिसमे तिङ् प्रत्यय जोडे जाते हैं 'अङ्ग' (Base) कहते है [अनुवादक]।

(आ) –अ– (उदात्त) वाला गण (तुदादि)—पा. दिसति, निय. सतिशंति, प्रा , अप. दिसइ<दिशति : खरो. ध. फुशसु<स्पृशामः ; बौ. सं. आसति< आसति (महाभारत) , अप. छिवसु<*छिदस्व ।

(इ) धातु के द्वित्व सहित –अ– विकरण वाला गण (पाणिनि के अनुसार भ्वादि)—अशो. (गिर.) तिष्टेय (सम्भावक), प्रा. चिट्ठइ<तिष्ठति ; पा. पिबति, अप पिवई<पिबति ; ।

(इ) –छ– विकरण वाला गण (पाणिनि के अनुसार भ्वादि) —खरो. ध. अधिगछति, पा गच्छति ; अशो., खरो. ध., निय. इछइ, पा इच्छति, प्रा., अप. इच्चइ<इच्छति ; निय. पृछंति, परिपृछति, पा. पुच्छति, प्रा., अप. पुच्छइ<पृच्छति ; अशो. (शा.) अछंति, निय. इछति [1], पा. अच्छति, प्रा. अच्छइ<*अच्छइ ; अशो. (का., धौ., टो.) कछति[1]<*कृच्छति मिलाइये कृछ्–) ।

(ई) –अ– विकरण के साथ-साथ धातु के अन्तिम व्यञ्जन से पूर्व न् के आगम वाला गण (रुधादि)—खरो. ध. तुनति<तुन्दते (ऋ. सं.), निविनति< निर्विन्दति ; पा कन्तति<कृन्तति ; प्रा., अप. छिन्दइ, छिण्डइ<छिन्देत (महाभारत) ।

(२) प्रा. भा आ. –अ– विकरण वाले गण का सामान्य अथवा अभिप्राय भाव का अङ्ग—अशो. (धौ., जौ.) हुवंति, पा हुपेय्य (सम्भावक), प्रा हुवइ <सुवानि ; निय. मरंति, प्रा., अप. मरइ<मरते, मरन्ति ; प्रा. मनइ<मनन्त (ऋ. सं.) , प्रा. सवइ (मिलाइये परवर्ती वैदिक सुच्यात) ; अप. सुय<सुचः ।

(३) प्रा. भा. आ. –य– विकरण वाला गण (दिवादि) (वर्तमान कर्तृ एवं कर्म वाच्य)—

(अ) कर्तृवाच्य—अशो. (शा., मा) मनति[2], (मस्की) मणति, (का) मनति, (गिर) मंञते, (धौ.) मन्नते, खरो ध. नतिमञति, पा. मञ्ञति, निय मञति, प्रा मराणइ<मन्यते, मन्यति (उपनिषद्) ; अशो. (गिर.), खरो. ध. पसति<पश्यति ; खरो. ध. विजति<विद्यते , पा , प्रा. विज्झन्ति<

---

१. अशो. तथा निय. के इन रूपो मे भविष्यत् का अर्थ है जो –छ– विकरण मे अन्तर्हित है ।

२. अशो (शा.) मेनति संभवतः सम्पन्न के अङ्ग मेन्– से बना है ।

त्रिष्यन्तु ; पा. नच्चति, प्रा., अप., नच्चइ<नृत्यति ; पा , बौ. सं. वायति, प्रा. वाअइ<वायति ; बौ. सं. स्नायितु, प्रा. ण्हाआमि<स्नायते (महाभारत); प्रा. भाआमि<भयते (ऋ स.), बौ. स. पश्यित्वा, अननुयुज्यित्वा ।

(अ) कर्मवाच्य—अशो. (गिर) अयाय (असम्पन्न). पा. यायति, प्रा. याअइ (जाअइ)<यायते । अशो. (गिर.) वुचते, (शा , मा.) वुचति, खरो. ध , निय. वुचति, पा. वुच्चति[1], प्रा वुच्चइ<उच्यते ; पा. ञयामि (मिलाइये सं. ज्ञायते) ; प्रा., अप रुच्चइ<रुच्यते ; निय थियति, प्रा. थ्यायइ, अप. ठाइ<स्थीयते, अस्थयिपि (महाभारत) ; बौ. सं. मेल्लित्वा, प्रा. मेल्लइ< मिल्यते ; प्रा. भीआमि (मिलाइये स. भीयते) ।

(४) प्रा. भा आ विकरण-रहित धातु के द्वित्व वाला गण (जुहोत्यादि)– अशो. (टो. आदि) उपदहेवु (सम्भावक), पा. दहति<दधति (व. व.) ; खरो. ध. जहति (=जहाति) <जहति (व. व.) ; बौ सं. जुहित=हुत ; बौ. स. दधेयं (सम्भावक) ; अप. बोहामो<बिभीम : ।

(५) प्रा. भा. आ. –ना– विकरण वाला गण (क्र्यादि) (अन्य पु., व. व. के रूप पर आधारित) –अशो. (धौ., जौ., टो. आदि) जानिसति (भविष्यत्), (ब्रह्मगिरि) जानेयु (सम्भावक) पा. जानति, निय, जनति प्रा., अप. जाणइ< जानाति, जानति (उपनिषद्, महाभारत) ; पा. विक्किणाय (म. पु , व. व.), प्रा. विक्किणइ<विक्रीणाति ; प्रा , अप. जिनइ, पा. जिनति<जिनाति ; पा. गण्हति, प्रा. गेण्हइ, अप. घेणइ,<गृह्णाति, गृह्णति (महाभारत) : अशो (गिर.) सुणारु (अनुज्ञा), (शा. मा.) श्रुणेयु (सम्भावक), बौ. सं. श्रुणति, पा. सुणाहि, सुण (अनुज्ञा), प्रा., अप सुणाइ<*श्रुणाति, *श्रुणति ; प्रा. कुणइ (महा) <*कृणति ; अशो. (गिर.) प्रापुनति, (धौ.)-पापुनेवु (सम्भावक), (जौ.) पापुनेयु (सम्भावक), पा. पापुण (अनुज्ञा) <*प्राप्नाति ; अशो. (गिर. शा., मा) छणति<*क्षणति ।

(६) प्रा भा. आ. –स– विकरण वाला वर्ग (सामान्य निर्देश, अभिप्राय और इच्छार्थक)—अशो., (शा , मा , का.) दखति, (टो. आदि) देखति, (टो. आदि) देखति, (धौ., जौ.) दखामि, पा दक्खति, प्रा., अप. देक्खइ, दक्ख (अनुज्ञा) (मिलाइये ऋ. सं दृक्षसे) , पा सुस्सुसति<शुश्रूषन्ते ; पा. जिगुच्छति <जुगुप्सते ।

---

३. सभवतः वचति (सामान्य, अभिप्राय) से प्रभावित ।

(७) भारोपीय -*धे- विकरण वाला वर्ग[1] — पा. कड्ढति, प्रा., अप. कड्ढइ<*कृष्-+द+ति (परवर्ती संस्कृत कड्ढति) ; प्रा., अप. जुड्डइ <*युज्-+द+ति (परवर्ती संस्कृत जुड्डति) ; प्रा., अप. वुड्डइ <*वृष-द-ति ।

(८) भूतकालिक कृदन्त तथा क्रियार्थक संज्ञा पदों से संकेतवाचक—पा. लग्गतु(अनुज्ञा), बौ. स. लग्नति, प्रा., अप. लग्गइ<लग्न- (√लग्) , निय. दितंति<*- दित- (√दा-) ; प्रा , अप. नोल्लइ<नुन्न- (√नुद्) , प्रा , अप. ओवाढइ<अवगाढ- (√गाह्) ; प्रा. अप. उव्वेवइ<उद्वेग- (√विज्); अप. मुक्कइ <मुक्त- (√मुच्-) ; बौ. सं. आरूढयित्वा ; प्रा. जत्तेह, (अनुज्ञा) <यत्त- (यत्-) ।

§ १२१ -ए- कारान्त अङ्ग की उत्पत्ति निम्न प्रकार से है ;

(१) प्रा. भा. आ. प्रेरणार्थक तथा नामधातुज क्रियापदों से—अशो. (शा., मा.) अरधेति<आराधयति, पा. कथेति, प्रा. कहेइ, अप. कहेइ, कहइ <कथयति ; अशो. (गिर.) आञपयामि[2], (शा.) अणपयमि, अणपेमि, (कौ.) आनपयति, (ब्रह्मपुर) आणपयति, पा. आणापेति, प्रा. आणवेदि (-इ)<आज्ञापयति ; निय. विञवेति<विज्ञापयति, पा. ठपेति, ठापेति<स्थापयति ; पा. कारेति, कारापेति, खारवेल कारयति, प्रा. कारेइ, कारवेइ<कारयति, *कारापयति ; खारवेल बन्धापयति, प्रा. बन्धावेइ <*बन्धापयति ; निय. अरोगेमि<*आरोग्ययामि ; प्रा. घत्तिस्सामि (भविष्यत्) <गृहीत- ।

(२) प्रा. भा. आ. की -अ- विकरण वाली एकाक्षरीय धातुओं के अङ्ग से—पा. जेति, प्रा. (शौ.) जेदु (अनुज्ञा) <जयति, जयतु ; पा. देति, प्रा., अप. देइ<दयति ; प्रा., अप. नेइ<नयति ।

(३) प्रा. भा. आ. की विकरण-रहित एकाक्षरीय इ (या ई) कारान्त धातुओं से—पा. एति<एति ; खरो. ध. शेति[3], पा. सेति<शेते ; पा. भेमि <भेम (ऋ. सं., प्र. पु., ब. व., सामान्य √भि-) ।

---

१. भारोपीय *धे- विकरण प्रा. भा. आ. में धातु का ही अङ्ग बन गया है, जैसे √रा-, राध्-, ∠सा-, साध्, √ऋ-, ऋध्- आदि में ।

२. म. भा. आ. आनापयति की उत्पत्ति आ -*नापयति<आ-ज्ञापयति से हुयी होगी, न कि ज्ञा- के समीकरण से ।

३. शयति, शेअति भी ।

(४) प्रा. भा. आ. की विभिन्न गणो की धातुओ से स्थानान्तरित—पा. उट्ठेति, प्रा. उट्ठेइ, अप. उट्ठेइ, उट्ठइ<उत् -*स्थाति, -*स्थयति ; पा. समाधेमि<सम्-आ-*धामि=दधामि । अशो. (का , धौ., जौ.) कलेति, प्रा. करेइ, प्रा , अप. करेइ, करइ<करोति , खरो. ध. कुरति<*कुरति (कुर्वः, कुर्मः के सादृश्य पर √कु—) । पा. मञ्ञेसि<मन्यसे ; प्रा. गेण्हइ<गृह्णाति ।

§ १२२. म. भा. आ. के क्रियापदो के –इ– कारान्त अङ्गो की उत्पत्ति कुछ तो –ए– कारान्त अङ्गो से हुयी और कुछ कर्मवाच्य तथा भविष्यत् के रूप से ।

खरो. ध. अवेछिति<अवेक्षते ; पा. सक्किन्ति<शक्यन्ते ।

अन्य प्रकार के अङ्गो की उत्पत्ति निम्न प्रकार से है ;

(१) प्रा. भा. आ –नो– (–नु–) विकरण वाले गण (स्वादि) से—अशो. (टो. आदि) पापोवा (अन्य पु., ए. व., सम्भावक), खरो. ध प्रणोति<प्राप्नोति ; पा सक्कोति, प्रा. सक्कुणोमि<शक्नोति, शक्नोमि ; खरो. ध अमोति< आप्नोति ; प्रा. थुनु (अनुज्ञा, मिलाइये सं. स्तुन्वन्ति) ।

(२) प्रा. भा. आ. –ओ– (–उ–) विकरण वाले गण (तनादि) से—अशो. (शा., मा., गिर.), खरो. ध., पा. करोति, प्रा (शौ) करोदि<करोति ।

(३) प्रा भा. आ. का विकरण-रहित (अदादि) गण (वर्तमान तथा सामान्य) से—खरो. ध. ब्रोमि, (पा. ब्रूमि<ब्रूमि (महाभारत); अशो., (मा.), खरो. ध. भोति[1], (शा., मा , गिर., का., धौ., जौ., टो. आदि.), पा. होति[2], प्रा. भोदि, (शौ.) होइ, अप. होइ, हइ<*भोति (मिलाइये बोधि सामान्य, अनुज्ञा) ; अशो. (गिर.) नियातु (अनुज्ञा), खरो' ध. यति, पा. याति, प्रा., अप. याइ<याति[3] ; अशो. (टो. आदि) विदहामि, पा. सद्दहामि, प्रा., अप. सद्दहइ<–दधाति ; पा. उट्ठाति, प्रा., अप. ठाइ, अप. उट्ठइ <*स्थाति ।

(४) प्रा. भा. आ. –ना– विकरण वाले (क्रयादि) गण से.—अशो. (का., धौ., जौ), खारवेल पापुनाति, पा. पापुणाति<*प्राप्णाति ; पा.

१. महा. मे भोति केवल एक बार ।

२. शौ. मे होति केवल एक बार ।

३. प्रा., अप. गाइ, पाइ, खाइ, जाइ संभवत: गाअइ, पाअइ, खाअइ, जाअइ मे अक्षर-सकोच का परिणाम हैं ।

जानाति<जिनाति, गण्हाति<गृह्णाति, सुणाति<*श्रु–णा–, विचिनाति<वि–चि–ना–, संसुणाति (मिलाइये बौ. सं. संमुणिष्यसि) <सम्–भू–ना– ।

(५) प्रा. भा. आ. के अभिप्राय के अंग से—अशो. (सुपारा) हुवाति<भू–अशो. (गिर.) उपहणाति[1] <उप–हन् ; पा. वितरासि[1] <वि–तर्– ; प्रा. भणादि[2] <भण– ।

(६) प्रा. भा. आ. सम्भावक के अंग से—अशो. (शा., मा.) सियति, (का., धौ.) सियाति, खरो. अधि. सिअति, निय. सियति<अस्– ; निय. भवेयाति<भू– ; पा पुच्छेय्यामि<प्रच्छ्–, करेय्यासि<कृ– ।

(७) प्रा. भा. आ. के विकरण-रहित (अदादि) गण से—अशो. (शा., मा., गिर.) अस्ति, (का., धौ., जो , टो., रूपनाथ) अथि, पा., प्रा. अत्थि <अस्ति ।

पा. ब्रूम्हि, दम्मि, कुम्मि, कुब्बति क्रमशः व. व. के रूपो ब्रूमः, दद्मः, कुर्मः, कुर्वन्ति के सादृश्य पर बने हैं ।

§ १२३. म. भा. आ. की एक विशेषता यह है कि इसने प्रा. भा. आ. के अङ्गो (धातु+विकरण) को उपसर्ग सहित धातु के रूप मे ग्रहण कर लिया । इस प्रकार—√पावा–, पापो–<प्र+√आप्–+–ना– नो– ; √इच्छ–√इष्–+–छ– ; पा. प्रा. √विक्किण–<वि+क्री–+–ना– ; अशो. √प्रलोहि–, पजूहि–<प्र+जुहो–,+जुहो–, जुहु– (हु– धातु का द्वित्व किया हुआ अङ्ग) ; √प्रच्छ–<√प्रस्–+–छ– ; प्रा., अप √प्रहुच्च–<प्र+√भू–+– छ– ; प्रा., √जुज्झ–<√युध्–+–या– ; बौ. सं., निय. √गच्छ–<√गम्–+–छ– ।

प्रा. आहम्मइ (=आहन्ति) का अग * हम्मि (=हन्मि) से बना है ।

२. निर्देश (Indicative) के तिङ् प्रत्यय

§ १२४. म. भा. आ. मे परस्मैपदी प्रत्यय प्रा. भा. आ. की आत्मनेपदी धातुओ के साथ भी प्रयुक्त हुये और सभी धातुओं के कर्मवाच्य के रूप भी इन्ही प्रत्ययो के योग से निष्पन्न हुये । प्रारम्भिक म. भा. आ. की किन्हीं विभाषाओ मे दोनो वचनो मे आत्मनेपदी प्रत्यय कुछ समय तक बने रहे

---

१. ये वर्तमान प्रथम पु., ए. व. के सादृश्य पर बने भी हो सकते हैं ।

२. प्रा. के ऐसे रूप याहि, पाहि जैसे अनुज्ञा के रूपों से भी उत्पन्न माने जा सकते हैं ।

और परवर्ती म. भा आ. में आत्मनेपद के कुछ इने-गिने रूप प्राचीनपरकता की प्रवृत्ति के कारण ही दिखायी देते हैं। पूर्व-मध्य की भाषा ने आत्मनेपद के केवल तीन प्रत्ययों अर्थात् अनुज्ञा (Imperative) तथा असम्पन्न (Imperfect) का मध्यम पुरुष, ए व का तथा असम्पन्न का अन्य पुरुष, ए. व. का प्रत्यय, की परम्परा को बनाये रखा।

§ १२५ वर्तमान निर्देश के प्रत्यय।

(अ) प्रथम पुरुष, एक वचन ;

(१) प्रा भा. आ -मि (करोमि, ब्रूमि जैसे परम्परया प्राप्त रूपों में ही),—आमि (परवर्ती प्रा में आ- > -अ) तथा-एमि (परवर्ती प्रा. में -ए- > - इ-)—अशो. (धौ) कलामि, (धौ , जौ) इछामि ; (शा.) अणपयमि, (गा , मा) अणपेमि , पा . जिगुच्छामि ; खरो ध. वदमि ; निय. लिखमि, हरमि, जनमि, जनेमि, प्रेसेमि, विलवेमि ; प्रा. करेमि, जाणामि, जाणेमि , प्रा , अप. करिमि, जाणमि, जाणिमि।

(२) प्रा भा आ -म् विरल रूप से प्रयुक्त हुआ है—पा गच्छं[1], अप याणं (=जाणं)।

(३) -अउँ (केवल बाद की अपभ्रंश में) ; पिशेल ने इसकी उत्पत्ति स्वार्थे -क- के बाद जोड़े गये विकृत (Secondary) -अम् से मानी है[2]। परन्तु इसकी उत्पत्ति मम से उसी प्रकार मानी जा सकती है, जैसे निय. के जाणउँ, किज्जउँ (मध्यम पुरुष, ए. व.) में तु का प्रयोग किया गया है।

(४) -म्हि > -म्मि (प्रारम्भिक म. भा आ. में अप्राप्य) ; इसकी उत्पत्ति सम्भवत. अस् धातु के प्रथम पु , ए. व के रूप अस्मि से हुयी। बौ. स. में अस्मि जोड़ कर अनेक धातुओं के रूप निष्पन्न किये गये हैं। प्रा. गच्छन्ति, निय विलवेयमि, अप अब्भात्थिअम्मि (विक्रमोर्वशीय) इसके उदाहरण हैं।

(५) -ए (आत्मनेपद, ए. व)—पा. रमे, प्रा. जाणे, मण्णे, प्रा. (मागधी) वाए, गाए।

(६) -महे (आत्मनेपद ब. व)—अप. पदिच्छामहे (वसुदेवहिण्डी)।

(आ) मध्यम-पुरुष, एक वचन ;

---

१. देखिये Geiger § 122.

२ देखिये Pischel § 454.

(१) प्रा. भा. आ. –सि—पा. लभसि, निय. करेसि, जनसि, जनेसि, प्रा., अप. जाणसि, अप. अच्छसि।

(२) प्रा. भा. आ. –हि[1] (अनुज्ञा) - पा लभाहि[2], प्रा. लहहि, अप. अच्छहि।

(३) –तु (<प्रा. भा. आ. तुवम्, जो नाम धातु अथवा क्रियापद के अङ्ग मे जोडा जाता है)—निय. विन्नवेतु, अरोगेतु, इछतु, करेतु। यदि प्राचीन बगला पुच्छतु, बाहतु (अनुज्ञा का अर्थ) को निय. के इन रूपो से जोडा जा सके तो तु को एक स्वतन्त्र पद ही मानना चाहिये, भले ही लिखने मे यह प्रयत्य की तरह जोडा गया हो।

(४) प्रा. भा. आ. –से (आत्मनेपद)—पा. लभसे, प्रा. जाणसे।

(इ) अन्य पुरुष, एक वचन ;

(१) प्रा भा. आ. –ति—अशो. इछति, होति, (का.) अपकजेति, (गिर) उपहुणाति[3], खरो ध. अधिगछति, प्रमजति (प्र–+मद्–), रछति (<रक्ष्–), मियति (<मृ–), पा. लभति, कथेति ; निय. इच्छति, हरदि, धरेति, विन्नवेति ; प्रा., अप वट्टइ, कहेइ, कहइ।

(२) प्रा भा. आ –ते (आत्मनेपद)—अशो. (गिर.) करते, मनते, पराकमते ; पा लभते, हुञ्ञते, निय वुचते (वुचति भी), ववते[1], प्रा. लहए (अर्धमा.), पस्सए, वट्टए (वसुदेवहिण्डी), पेच्छए (महा.)।

(ई) प्रथम पुरुष, बहु वचन ;

(१) प्रा भा आ.–म (विकृत)[4] –पा. लभाम, पवदेम, आन्ध्र अभि वित्तराम ; निय. जिवम, विन्नवेम, अरोगेम ; प्रा कामेम[5]।

(२) प्रा. भा आ. –मस्>–मो, –म—खरो ध जिवमु विहरमु, फुषमु (<स्पृश्–) ; प्रा. हसामो, हसिमो (<हसेमो) ; अप. अच्छामो 'हम हैं' (–मो < स्मः)।

---

१. किन्ही रूपो मे इसका मूल प्रा भा. आ –सि मे था।

२. अङ्ग मे दीर्घ स्वर या तो सादृश्य के कारण है अथवा अभिप्राय भाव का है।

३. आत्मनेपद के केवल यही दो रूप मिलते हैं।

४. इसकी उत्पत्ति –मस् से मानी जा सकती है ; इसमे पदान्त –स् का विभाषीय विकार हुआ है।

५. ये रूप केवल पद्य मे मिलते हैं।

(३) हुँ—यह प्रत्यय केवल परवर्ती अपभ्रंश मे ही मिलता है। स्पष्टतः जैसा कि पिशेल ने कहा है, इसका सम्बन्ध विभक्ति-प्रत्यय -हू से है। परन्तु यदि इन दोनो (-हुँ तथा -हू) से कोई घनिष्ट सम्बन्ध ही है तो यह भी मानना पड़ेगा कि -हू का प्रयोग सम्बन्धात्मक (genituval) रहा होगा, जिसके कारण यह क्रिया के बहुवचन में भी प्रवेश कर पाया। यदि ए. व के तिङ्—प्रत्यय—अउँ की उत्पत्ति अम से स्वीकार कर ली जाये, तो इसी प्रकार -हुं की उत्पत्ति भी महुं (< *मस्मम्) से मानी जा सकती है (देखिये नीचे—(अ) म्ह और-हिं)—लभहुं, अच्छहुं।

(४) किन्हीं रूपों मे पालि मे -मसे प्रत्यय भी मिलता है, जो प्रा. भा आ. मसि (परस्मैपद) तथा -मसे (आत्मनेपद) के घालमेल से बना है—तप्पामसे, अभिनन्दामसे।

(५) पालि-व्याकरण मे -म्हे प्रत्यय भी बताया गया है, परन्तु इससे बना कोई रूप प्रयोग में नही मिलता। इसकी उत्पत्ति -महे मे बीच के स्वर-लोप से[१] मानने के बजाय-अम्हे अथवा -स्मस् से माननी अधिक ठीक होगी। प्रा कामम्हे मे यह प्रत्यय विरल रूप से मिलता है।

(६) (ए) म्हे (< -स्म, √अस् धातु का अडागम रहित असम्पन्न (imperfect) का रूप)—बौ. सं परिचरेम्ह ; प्रा. कीळेम्ह, कीळम्ह (=क्रीडाम)।

(७) -मथ[२]—बौ सं गच्छामथ, पृच्छामथ।

(उ) मध्यम पुरुष, बहुवचन,

(१) प्रा भा. आ -थ—पा लभथ, भवेथ ; प्रा., अप. जाणह, पुच्छह, बौ. शोध।

(२) प्रा भा आ. -थस् (द्विवचन)—अप. पुच्छहु।

(३) -म्हे (पालि वैयाकरणो के अनुसार) ; इससे बने कोई रूप नही मिलते, यह मध्यम पुरुष, बहुवचन तुम्हे का सक्षिप्त रूप हो सकता है।

(ऊ) अन्य पुरुष, बहुवचन ;

(१) प्रा. भा. आ -न्ति—अशो इच्छंति, अनुविधीयन्ति, (का.,धौ,

---

१. देखिये Geiger § 122.

२. देखिये H Dachi का Indian linguistics XI, Plff. मे लेख।

जों) कलंति ; खरो. ब वर्धन्ति ; पा लभन्ति, कारेन्ति ; निय करेंति, स्थवेंति, अरोगेंति , प्रा. होन्ति, करेन्ति , अप. करन्ति ।

(२) –हिं—इस प्रत्यय का परवर्ती अपभ्रंश मे –न्ति की अपेक्षा कही अधिक प्रयोग हुआ है ; अर्धमागधी मे भी यह विरल रूप से मिलता है ; इनके अलावा अन्यत्र यह कही नहीं मिलता । प्रथम पुरुष –उं, –हुं , मध्यम पुरुष –हि, –हिं के सादृश्य पर इसकी उत्पत्ति नही जान पडती, क्योकि –हुं का प्रयोग इतने पहले से नही मिलता जितना कि –हिं का । इसे संकेतवाचक सर्वनाम का तृतीय बहुवचन (*एभिम् , *इभिम्) से व्युत्पन्न मानना चाहिये, जिसका एक विकारी रूप –हिं है और यह धातु के साथ ऐसे ही जुड गया जैसे कि प्रथम पुरुष मे –अउं तथा मध्यम पुरुष मे –तु । इसके उदाहरण है—अर्धमा अच्छहिं, परिजाणाहिं , अप अच्छहिं, करहिं ।

(३) प्रा भा आ –न्ते (आत्मनेपद)—पा. लम्बन्ते, हञ्ञन्ते , प्रा गज्जन्ते, चिट्ठन्ते ।

(४) प्रा. भा. आ. –रे (जैसे वैदिक दुह्रे, शेरे)—अशो (गिर) अनुवतरे, अनुविधियरे, आरभरे ; पा लभरे, हञ्ञरे ।

परवर्ती प्राकृत तथा अपभ्रश –इरे प्रत्ययान्त जो रूप मिलते हैं, जैसे—हसेइरे, हसइरे , हसिरे, जो हेमचन्द्र[1] के अनुसार एक वचन मे भी प्रयुक्त होते हैं, सभवतः प्रा. भा आ. आत्मनेपद सम्पन्न (perfect) के प्रत्यय –रे से असम्बद्ध हैं । इन्हे कृदन्त-प्रत्यय –इर– युक्त सज्ञा–रूप मानना ठीक होगा ।

ददरि[2] *रूप एक खरोष्ठी अभिलेख मे मिलता है ।

३ अनुज्ञा (Imperative) के तिङ् प्रत्यय

§ १२६. प्रारम्भिक काल से ही अनुज्ञा के अन्य पुरुष, एक वचन का बहुवचन के लिये भी प्रयोग करने की प्रवृत्ति बढती रही है। यहाँ तक कि मध्यम पुरुष मे भी इसका विस्तार कर दिया गया । म. भा. आ. भाषा-काल के अन्तिम पर्व मे अनुज्ञा के लिये वर्तमान निर्देश का भी खूब प्रयोग होने लगा ।

§ १२७. वर्तमान अनुज्ञा के प्रत्यय

(अ) मध्यम पुरुष, एक वचन ;

---

१. देखिये Pischel § 458.

२. सुइ विहार ताम्र-पत्र ।

(१) प्रत्यय-रहित (प्रा भा आ विकरणार्ह thematic गण)—खरो ष सिज, पा सिञ्च<सिञ्च ; खरो व छिन<छिन्व, पा गेण्ह, सद्दह ; प्रा गेण्ह, आअच्छ, भर, चिट्ठ, थुण (=स्तुहि), अप पुच्छ, चिन्त, पसीअ, बौ स गृण्ह, आस (√आस्–), मुय (√मुच्–)।

(२) प्रा भा. आ –धि (अविकरणार्ह गण)—पा. ब्रूहि, देहि, अनेहि, जिवाहि, प्रा सुणाहि, होहि, पुच्छेहि ; अप भणहि, सुणेहि, करहि, अच्छहि, देक्खावहि, उत्तरहि ; बौ स पश्यहि, श्रुणेहि, प्रापुणेहि।

(३) प्रा भा आ. –स्व (=सु ; आत्मनेपद)—खरो व भमेत्सु<भावयस्व, पा लभस्सु, पुच्छस्सु, पुच्छस्स, प्रा कहसु, खमसु, कुणसु, शौ कधेसु, पेक्खस्स, अप. घड़सु<घटयस्व, किज्जसु, बुज्झसु, हसस्स (क्रमदीश्वर)।

(४) –उ[1] (मिलाइये कुरु)—अप. पेक्खु, भणु, जाणु।

(५) प्रा भा आ –थ (बहुवचन से विस्तारित)—उधरथ<उद्–√धारय्–, निखमथ[2]<निष्–√क्रम–, पा विजानाथ[3], अप. होह।

(६) प्रा भा आ. –थस् (बहुवचन से स्थानान्तरित)—अप णमहु, बुज्झहु।

(७) प्रा भा. आ –इ (सामान्य कर्मवाच्य Passive Aorist), यह प्रत्यय केवल परवर्ती अपभ्रंश मे मिलता है और इसका प्रयोग अन्यों की अपेक्षा अधिक है—जाणि, करि, बोल्लि, बन्धि। मा के साथ सामान्य (भारोपीय निर्बन्ध injunctive) के रूप का प्रयोग कर निषेधात्मक अनुज्ञा का भाव प्रकट करना प्रा भा आ का एक प्रतिष्ठित मुहावरा था और यह परवर्ती अपभ्रंश तक बना रहा। ये रूप अन्य पुरुष मे विस्तारित कर दिये गये।

(अ) अन्य पुरुष, एकवचन,

(१) प्रा भा. आ –तु—अशो (भा, का, धौ., जौ., टो आदि) होतु, (शा.) भोतु, (शा, मा) अनुविधियतु, खरो, ध. जतु<√जीव् ; निय होति, हुतु, दव्यतु (कर्मवाच्य), पा पस्सतु, इज्झतु (<√ऋध्–),

---

[1] देउ, होउ जैसे रूपो के विश्लेषण से इस प्रत्यय को बल मिला होगा।

[2] ये अधिकांश मे बहुवचन हैं।

[3]. देखिये Geiger § 125।

प्रा. देउ, मरउ, शौ. कवेदु, सुणादु ; अप. देउ, होउ, अच्छउ। परवर्ती अपभ्रंश मे –उ प्रत्यय वाले रूप मध्यम पुरुष मे विस्तारित कर दिये गये।

(२) प्रा. भा. आ –थस् (मध्यम पुरुष, ब. व. से विस्तारित) अप करहु, छड्डहु।

(३) प्रा. भा. आ –ताम् (आत्मनेपद)—अशो (गिर) अनुविधियता (कर्मवाच्य), सुसुसता (–तां) ; पा. अच्छतं, लभतं।

(इ) मध्यम पुरुष, बहुवचन ;

(१) प्रा. भा आ. –थ (वर्तमान, ब. व)—अशो. (धौ. जौ) चघथ, (सुपारा) निखिपाथ[1], (ससराम) लेखापयाथ[1], (गिर.) पटिवेदेथ[2]; खरो. ध. भोध, भवेथ[2], उथवरध<उद्– +धृ–, निखमध<निष्– + √क्रम,–, युअथ, धुनथ ; पा. गण्हथ, सुणाथ[2], प्रा. रामह, खमह ; माग शुणाध ; अप होह, करह।

(२) प्रा. भा आ –थस् (वर्तमान द्वि व)—अप करेहु, अच्छह।

(३) प्रा. भा. आ –त—अशो. (धौ जौ.) देखत।

(४) –व्हो—पा. पस्सव्हो, पुच्छव्हो, मन्तव्हो, कप्पयव्हो, मन्तयव्हो पमोदथव्हो[3] इन सब रूपो से सीधे आदेश ध्वनित होता है। इस बात से तथा उपर्युक्त अन्तिम दो रूपो (मन्तयव्हो, पमोदथव्हो) से स्पष्ट है कि–व्हो<भोस् (सम्बोधन का पद), जिसे अनुज्ञा के मध्यम पुरुष (ए. व, व व.) के साथ जोडा गया है।

(ई) अन्य पुरुष, बहुवचन ;

(१) प्रा भा. आ –न्तु— अशो. (मा, गिर, का.) युजतु, (धौ) युजन्तु, (भाब्रू, रूपनाथ, सहसराम, बैराट) जानतु, (गिर.) आराधयतु, (धौ., जौ.) आलाधयंतु, (का.) अनुवततु ; खरो ध भोदु ; पा हनन्तु, प्रा देन्तु, सुणन्तु, होन्तु, अप करन्तु, होन्तु, अच्छन्तु।

(२) प्रा भा. आ. –तु (ए. व से विस्तारित)—अशो. (शा, मा) अरधेतु, (शा) पट्टिवेदेतु, (मा.) पटिवेदेतु, (शा.) रोचेतु, (का.) लोचेतु, मनतु, आलाधयितु, (गिर.) नियातु ; निय. होतु, हुतु।

---

१. यह अभिप्राय (Subjunctive) का रूप हो सकता है।

२. मूलत. सम्भावक (optative) से।

३ केवल यह रूप मिलते हैं। देखिये वर्तमान का प्रत्यय—व्हे।

(३) प्रा. भा आ —राम् (जैसे—बुह्राम् मे)—अशो (गिर.) अनुवतरां।

(४) प्रा भा आ —*व(म्) (मिलाइये कुव<√कृ+व ?)—अशो (गिर)स्नुणाव ; पा विसीयवं[1] (<√श्या–)।

(५) वर्तमान का विस्तार—थप लोंहि (हेमचन्द्र)।

४. भविष्यत्

§ १२८. प्रा. भा. आ. के समान यहाँ भी भविष्यत् काल के लिये धातु का अङ्ग (base या stem) –(इ)ष्य जोड़कर बनाया जाता था। प्रा. भा आ मे अनिट् रूप का प्रयोग तब किया जाता था जब कि अङ्ग का अन्त अ को छोड़ अन्य किसी स्वर अथवा व्यञ्जन मे हो। परन्तु म. भा. आ. की किन्ही विभाषाओ मे भविष्यत् के विकरण का अनिट् उन धातुओ के अनिट् सामान्य के अङ्ग के साथ भी जोड दिया जाता था जो प्रा. भा. आ मे सेट् थी। इस प्रकार—अशो. (मा.) कषमि, पा कस्सामि<*कर्ष्यामि= करिष्यामि ; अशो. (धौ., टो.) होसामि, पा हेस्सामि प्रा. होस्सामि< *भैष्य–, *भोष्य–=भविष्–।

§ १२९. म. भा आ के प्रारम्भ से ही कुछ विभाषाओ मे अङ्ग-प्रत्यय (base-affix) –ह वाले रूप थे, जो अपभ्रंश मे सख्या मे सर्वाधिक हो गये। इसकी उत्पत्ति भारोपीय अङ्ग-प्रत्यय –*सो, प्रा भा. आ –स (जो सन्नन्त तथा सामान्य के अङ्ग मे तथा धातु-निर्देशात्मक के रूप मे प्रयुक्त हुआ)[2] से प्रतीत होती है। इसका प्रयोग सर्व प्रथम मध्य-पूर्वी विभाषा मे हुआ, क्योकि अशोकी प्राकृत की मध्य-पूर्वी विभाषा मे यह दो क्रियापदो मे मिलता है—(टो) होहंति, (टो आदि) दाहंति।

§ १३० अङ्ग-प्रत्यय (base-affix) के रूप मे –इस्सि अथवा –सि एव –इहि भी मिलते है, जिनका विकास सम्भवत इस प्रकार हुआ— –(इ) ष्य–>*इस्सिअ– (सम्प्रसारण से) >–इसि>इहि। इसके उदाहरण हैं—खरो घ विहसिति<वि–√हर्, भेषिति<भू, एषिति<√इ–।

§ १३१. –छ– विकरण वाले वर्तमान काल के रूपो मे भविष्यत् का

---

१. देखिये Geiger § १२६।

२. म. भा. आ मे –स– भविष्यत् के रूप महावस्तु मे गंसामि, अनुगंसं मिलते हैं।

भाव अन्तर्हित था, जैसे—अशो (शा.) अछति, निय हछति, (का., टो आदि) कछति। इनमे ये रूप भी शामिल कर लेने चाहिये— पा हञ्छति (< √हन्–) और हञ्छेम (सम्पन्न उत्तम पुरुष, ब. व)[१]। इन –छ– विकरण वाले वर्तमान काल के रूपो ने –छ– वाले भविष्यत् के रूपो को बल दिया— पा. लच्छति<लप्स्यते।

प्राकृत मे भविष्यत् के दुहरे अङ्ग-प्रत्ययो का प्रयोग भी खूब मिलता है, जैसे—होहिस्साम।

§ १३२. पालि और प्राकृत –क्ख– भविष्यत् के रूप (जैसे—पा. पटिहङ्खामि<–हनिष्यामि, अर्धमा होक्खं=भविष्यामि) वास्तविक –ख– (जैसे—अशो (सुपारा, कौशाम्बी, सिद्धपुर) भाखति<*भाड्क्ष्यति मे) के सादृश्य पर बने हैं।

§ १३३. वैयाकरणो के अनुसार परवर्ती प्राकृत और अपभ्रंश मे सभावक के अङ्ग से भी भविष्यत् के रूप बनते थे, जैसे—होज्जाहिइ, होज्जिहिइ।

§ १३४ भविष्यत् के तिङ्-प्रत्यय वर्तमान के समान ही रहे, परन्तु इनमे भी कुछ उल्लेखनीय विकल्प तथा रूप-भेद हैं। उत्तम पुरुष ए व मे अविकृत (Primary) –मि के स्थान मे प्राय विकारी –(अ)म् (जैसा कि प्रा भा आ हेतुहेतुमत् मे) का प्रयोग किया गया। अशोकी प्राकृत मे (शा) कष<*कर्ष्यम् को छोड, इस प्रकार के सभी रूप पश्चिमी तथा पूर्व-मध्य की विभाषा मे मिलते हैं।[२] निय गमेषिश, परिमर्गिस्य भी इसके उदाहरण हैं।[३]

वैयाकरणो ने होहिस्सा और होहित्था जैसे रूपो को उत्तम पुरुष बहुवचन के रूपो मे शामिल किया है। ये सभवत भविष्यत् के अङ्ग से बनाये गये क्रमश. भविष्यत् अभिप्राय तथा सामान्य के मध्यम पुरुष ए व परस्मैपद तथा आत्मनेपद के विस्तार हैं। इस प्रकार होहिस्सा<*भोष्यिष्या (तुलना करें करिष्याः), होहित्थ<*भोष्यि–स्था।

---

१ निय हछति सामान्यत. सम्भावक मे प्रयोग किया जाता है। देखिये Burrow § ९९।

२. का, धौ, जौ मे नही।

३. Burrow ने इनको –मि का अशुद्ध प्रयोग माना है। यदि इनमे –म्– न होता तो इन्हें उत्तम पु, ए. व के लिये प्रयुक्त खाली अङ्ग भी माना जा सकता था। देखिये Burrow § ९९।

§ १३५. भविष्यत् निर्देश के प्रत्यय

(अ) उत्तम पुरुष, एक वचन ;

(१) प्रा भा आ. –मि—अशो (धौ, जौ) होसिम, होसामी, (मा) कपमि, (का) लेखपेशामि, (शा, मा.) लिखपेशमि (धौ) लिखियिसामि, निय. जनिष्यमि ; पा पिविस्सामि ; बौ स गंसामि ; अर्धमा एस्सामि, गच्छिस्सामि, दाहामि, दाहिमि (व्याकरण) ; प्रा होस्सामि (व्याकरण), गच्छिहामि (व्याकरण), गच्छिमि (व्याकरण) ; अप पेखिहिमि, होसमि, कहेहामि, करेसमि, पालेसमि आदि।

(२) प्रा भा. आ. –अम् (विकृत Secondary)—अशो. (गिर) लिखापयिष, (टो. आदि) पलिभसयिसं, (गा) कप ; पा परिनिमिस्सं, सुस्सं (<*श्रुष्यम्) ; बौ. स. अनुगंसं, मरिष्यं ; प्रा पुच्छिस्सं, दच्छं (<द्रक्ष्यम्), अर्धमा, अप (वसुदेवहिण्डी) पाहं ; अप. पाविसु>करीसु बोलिस्प (वसुदेवहिण्डी)।

(आ) मध्यम पुरुष, एकवचन ;

(१) प्रा भा आ. –सि—खरो ष विहषिसि<वि- √हृ ; पा. मोक्खसि, सोस्सि[1], कहसि, एहिसि, हेहिसि ; निय परिबुभिशसि, गिनिश्यसि, शौ गमिस्सासि ; प्रा अच्छिहिसि, दाहिसि ; अप करिहिसि, करीसि[2], होहिसि ; बौ स तरीहसि ;

(२) प्रा भा. आ. –हि (अनुज्ञा)—अप. करेसहि।

(३) प्रा भा आ –से (आत्मनेपद)—पा गमिस्ससे[3]।

(४) –तु (<तुअम्)—निय अगच्छिसतु, करिष्यतु, वास्यतु।

(५) –स्व (अपभ्रंश मे भविष्यत् अनुज्ञा में)—भविस्ससु (वसुदेव-हिण्डी)।

(इ) अन्य पुरुष, एकवचन ;

(१) प्रा भा आ. –ति—अशो. (गिर.) आनपयिसति, (शा., मा.) कपति, (धौ, जौ) खमिसति, (ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर, जतिंगा आदि) वधि-

---

१. सोस्ससि मे वर्ण-लोप से।

२. *करिसिसि मे वर्ण-लोप से।

३. प्राचीनपरकता अथवा छन्दानुरोध से।

सिति, (धौ., भाब्रू) होसति, (मस्की) हेसति[1], (सुपारा, कौशा., सिद्धपुर) भाखति[2] खरो. ध भेषिदि[1] <√भू–, करिषदि, पयेषिदि<प्र- √चि–, एषिदि, विहृषिदि (<वि- √हृ–) ; पा. एसति, होहिति, लच्छति< लप्स्यते, हेस्सति ; निय. इच्छिस्यति, गछिष्यति[2], वस्यति ; प्रा सुणिस्सइ, करिहिई, एहिइ ; अप. होसइ, करेसई, करिहइ, होहिइ>होहि ; बौ. स. भेष्यति, अभिश्रद्दधिष्यति।

(२) प्रा भा. आ. –ते (आत्मनेपद)—पा. हेस्सते।

(ई) उत्तम पुरुष, बहुवचन ;

(१) प्रा. भा. आ –मस्—खरो ध करिषमु ; प्रा गमिस्सामो, पुच्छिस्सामो, वहामो>दाहामु (अर्धमा.), सुणेस्सामो।

(२) प्रा भा आ. –म (विकृत Secondary)—पा. याचिस्साम, काहाम, हेस्साम , प्रा. होस्साम (व्याकरण)।

(३) प्रा. भा आ –मस् (अविकृत Primary) या–म (विकृत Secondary)—निय करिष्यमहुँ।

(४) –हुँ (देखिये वर्तमान)—अप. करिस्सहुँ।

(५) –म्ह (देखिये वर्तमान)—माग. यासिश्शम्ह, शौ सकिस्सम्ह।

(६) अन्य पुरुष, ब व. का विस्तार—अप. होसहिं।

(७) –मसे (देखिये वर्तमान) पा. सिक्खिस्सामसे।

(उ) मध्यम पुरुष, बहुवचन ;

(१) प्रा भा आ –थ—अशो. (धौ) आलाधयिसथ, (जौ) आलधयिसथा[3], (धौ) एहथ (जौ.) एसथ ; पा.पहस्सथ<प्र- +√हा–, दक्खिस्सथ ; शौ. नइस्सध ; अर्धमा. भविस्सह ; जैन महा सक्किस्सहो, अर्धमा काहिह, बौ स श्रुणिष्यथ।

(ऋ) अन्य पुरुष, बहुवचन ;

(१) प्रा. भा आ –न्ति—अशो (गिर.) अनुसासिसति, (शा) अणपेशंति, कषंति, (धौ, जौ., टो आदि) जानिसंति, (शा.) वढेशति,

---

१ अङ्ग *भिवष्य–से।

२. <*भाडाक्ष्यति, मिलाइये वैदिक शक्ष्यति< √शक्।

३. यह प्रा. भा. आ. –थस् (विकृत आत्मनेपद, ए. व) प्रत्यय भी हो सकता है।

(गिर.) वधयिसंति, (टो.) दढिसंति, होसंति, होह, (टो आदि) दाहंति, (शा , मा) अरभिशति[१], (का , धौ , जौ) आलभिशंति[१] ; पा काहंति, काहिति, गमिस्सति , निय वेयिष्यंति, करिष्यति ; अर्धमा तरिहिति, सिज्झिस्संति ; जैन महा दाहिन्ति अर्धमा , शौ करिस्सन्ति ; अर्धमा , जैन महा करेहिन्ति ; शौ करइस्सन्ति ; अर्धमा करेस्सन्ति ; महा भरिगहिन्ति ; अप. करिहिति ; बौ सं भेष्यन्ति, काहिन्ति ।

(२) –हि (देखिये वर्तमान)—अप. होसहि, जारिगस्सहि ।

(३) प्रा. भा. आ –रे (आत्मनेपद, देखिये वर्तमान)—अशो (गिर) अनुवतिसरे , पा वसस्सरे, भविस्सरे, करिस्सरे[२] ।

५ क्रियातिपत्ति (Conditional) लृङ्

§ १३६. प्रा भा. आ. क्रियातिपत्ति (लृङ्) के रूप केवल पालि मे मिलते हैं और वहाँ भी सस्कृत के प्रभाव के रूप मे ; उदाहरण हैं—अभविस्स <अभविष्यद्, अभविस्संसु = अभविष्यन्, अक्कमिस्सथ = अक्रमिष्यत (अन्य पु, ए व. आत्मनेपद) ।

§ १३७ परवर्ती अपभ्रंश वर्तमानकालिक कृदन्त का प्रयोग क्रियातिपत्ति के लिये (तथा सामान्य भविष्यत्, भूत एव वर्तमान के लिये भी)[३] हुआ –करंतो, निस्सरंतो, होंतो, पावेंतो (वसुदेवहिण्डी) ।

६ सम्भावक (Optative)

§ १३८. म. आ भा मे अभिप्राय तथा सम्भावक के रूप एक हो गये। प्रा भा आ मे भी अभिप्राय के रूपो का प्रचलन समाप्त होने लगा था और संभावक के रूपो का प्रयोग बढने लगा था। यद्यपि प्रारम्भिक म भा. आ मे अभिप्राय के रूपो का सर्वथा अभाव न था, परन्तु प्रयोग मे इन्हे संभावक के रूपो से अलग न किया जा सकता था। म भा आ मे अभिप्राय की रूपरचना के रूप मे केवल दीर्घीकृत अङ्ग (stem) तथा इसके अविकृत तिङ्प्रत्ययो का सभावक के विकृत (secondary) प्रत्ययो के स्थान मे प्रयोग ही अन्त तक बच रहे।

§ १३९ संभावक के –ति तथा –सि प्रत्ययान्त रूप जैसे—अशो. (शा.,

१. कर्मवाच्य ।
२. Geiger § 150 ।
३. मिलाइये पुरुषोत्तम "त्रैकाल्ये शतृ" ।

मा.) सियाति, (का.) सियति, पा. करेज्जासि आदि) सामान्यतः नये निर्माण हैं, जिन्हे सभावक के अङ्ग मे अविकृत प्रत्यय लगाकर बनाया गया है और ये प्रा भा. आ. के अभिप्राय के रूपो की परम्परा मे नही आते, क्योंकि अविकृत प्रत्ययो के योग से बने अभिप्राय के रूप (जो भारत-ईरानी की एक नवीन रचना थे) ब्राह्मण-ग्रन्थो मे विरल हैं। अशो. शा, मा, का. सियति (=हुवेयति धौ, जौ) जितना अभिप्राय का रूप है, उतना ही सभावक का भी; यह बात अन्य अशोकी अभिलेखो मे सियति के स्थान पर अस के प्रयोग से स्पष्ट हो जाती है।

§ १४०. शुद्ध अभिप्राय के रूप केवल प्रारम्भिक म. भा. आ मे विरल रूप से मिलते है। ये हैं—

(अ) मध्यम पुरुष; ए. व —पा. वितराति[1] ब. व —भवाथ; अशो. (टो) पलियोवदाथ[2], विचासयाथ[2], विवासापयाथ[2]।

(आ) अन्य पुरुष; ए व —अशो. (सुपारा) हुवाति[3], (गिर., धौ.) अस<असत्[4]; ब व.—अशो. (गिर) मञ्ञा<मन्यात्।

§ १४१. प्रारम्भिक म. भा. आ. मे विकरणार्ह (thematic) सम्भावक (optative) के पर्याप्त रूप थे और इनमे से कुछ प्राकृत मे भी मिलते है (जैसे—भवे<भवेत्)। परन्तु इस भाव के रूपो की नियमित रचना-विधि यह रही है कि सम्भावक के अङ्ग को धातु मानकर उसमे सबल सम्भावक विकरण जोड कर तब अविकृत (primary) तथा विकृत (secondary) प्रत्यय जोडे जायें। इस प्रकार —करेय—, करेय्य—, करेज्ज (>करिज्ज—) <करे— (*करेत् से) + —या— (—य—)।

§ १४२ वर्ण-परिवर्तन की सदृश प्रक्रिया द्वारा सम्भावक प्रत्यय —या— (—य—) तथा कर्मवाच्य का प्रत्यय —य— एक हो गये। फलत परवर्ती प्राकृत तथा अपभ्रश मे सम्भावक और कर्मवाच्य के रूप एक हो गये तथा कर्मवाच्य कर्तृवाच्य का अर्थ देने लगा।

---

१ Geiger १२३।

२ अङ्ग का यह दीर्घीकरण ब्राह्मणो मे भी मिलता है—भवाथ, हनाथ।

३ पाठ है हुवा ति जो सभवतः *भुवात् इति से आया।

४. यह प्राचीन सभावक *अस्यात् से बना होगा; मिलाइये अस्स, अस्तु।

§ १४३. सम्भावक के रूप नीचे दिये जाते हैं।

१. उत्तम पुरुष, एक वचन,

(अ) प्राचीन रूप;

(१) ऐतिहासिक रूप (जिनमें म भा आ अङ्गों से बने रूप भी शामिल हैं), परस्मैपद—अशो (गिर.) गच्छेयं, (शा.) अचेयं, (टो) अभ्युंनामयेहं[1], (धौ, जौ) आलभेहं[1], (धौ) पटिपादयेहं[1], पटिपातयेहं[1], (धौ, जौ, का, मा) येहं[1]; पा पब्बजेय्य, गौ लहेअं, अवेअं, वौ. सं दवेयं।

(२) ऐतिहासिक रूप, आत्मनेपद—महा कुप्पेज्ज[2]।

(अ) नये रूप;

(३) प्रा भा आ. –आ (अभिप्राय)—अर्धमा. मुच्चेज्जा[3]।

(४) प्रा भा आ. –मि (सभवतः अभिप्राय –आ के साथ)—पा. करेय्यामि; महा. णेज्जामि, अर्धमा कोय्यामि।

२. मध्यम पुरुष, एक वचन;

(अ) ऐतिहासिक रूप;

(१) प्रा. भा आ –स् – अर्धमा गच्छे, चरे, पडिगहे।

(आ) नये रूप;

(२) प्रा. भा आ. अनुज्ञा[4]—पा याएय्य, अर्धमा विणयेज्ज।

(३) प्रा भा. आ. –हि (अनुज्ञा; परस्मैपद)—अर्धमा. वन्देज्जाहि; महा हसेज्जाहि।

(४) प्रा. भा आ –सु (अनुज्ञा, आत्मनेपद)—महा. कुणिज्जासु, जैन महा करेज्जासु।

(५) प्रा. भा. आ. –सि (दुहरा सभावक, वर्तमान)—निय करेयसि, पा. करेय्यासि; अर्धमा. निवेविज्जासि, वट्टेज्जासि, हणेज्जासि, विहेज्जासि (<भि–)।

---

१ येहं<–येयम्; स्वरमध्यम –य्–>–ह् पूर्व-मध्य भाषा में ध्यान देने योग्य है।

२. यह अन्य पुरुष *कुप्येयात् से भी बना होगा।

३ यह अन्य पुरुष *मुच्यात् का विस्तार भी हो सकता है।

४ यह उत्तम पु, आत्मनेपद या अन्य पु., परस्मैपद का विस्तार भी हो सकता है।

(६) प्रा. भा आ. –स्–अर्धमा. उदाहरिज्जा[1], बौ. स. सत्करेयाः ।

३. अन्य पुरुष, एक वचन ;

(अ) ऐतिहासिक रूप—

(१) अशो. (गिर.) भवे, (जौ.) उठाये (<*उत्थायेत्), का., धौ., जौ., टो. आदि) सिया (शा., मा) सिय; पा. इच्छे, हने; खरो ध. सिय, भजे, सवसि <सवसेत्, चरि<चरेत्; अशो. (गिर., धौ) अस, बौ. स. अस्यात्, अस्य (अस्स का सस्कृत जैसा बनाया रूप); पा. अस्स <*अस्यात्।

(आ) नये रूप—

(२) प्रा. भा. आ –त् (सभावक अङ्ग मे अभिप्राय का प्रत्यय)— अशो. (गिर) तिष्टेय, (जौ., टो. आदि) सिय, (धौ , जौ.) हुवेय, (मा.) निवटेय, (रधिया, मथिया, कौशा.) पापोव[2]; पा भासेय्य; खरो. ध. मुचेअ <मुञ्चयेत्, प्रहरेअ, विअनेअ <वि- <ज्ञा–, यएअ <यजेत् ।

(३) प्रा. भा आ. –त्, –ति—अशो. (शा , मा) सियति, (धौ.) सियाति, (का.) शियाति, (शा , मा) अपकरेयति, (मस्की) अधिगछेयाति[3], (टो.) वढ़ेयाति, (शा.) निवटेयति (सुपारा) हुवाति[4], (धौ., जौ) पतिपजेयाति. (का.) निवटेया, पटिपपेया, (भाब्रू) हिसेया, (टो , कौशा.) पापोवा[2], निय. भवेयति, सियति, करेयति, देयति ; पा. भासेय्य, जानेय्याति अर्धमा करेज्या, कुव्वेय्या, कुज्जा, होज्जा, देज्जा ; अप. होज्जा, होज्ज ।

(४) ऐतिहासिक रूपो का विस्तार—पा. पस्से, जीवे ; शौ. लहे, भवे ; उत्तम तथा मध्यम पुरुष मे भी प्रयुक्त ।

(५) –थ (आत्मनेपद)[5]—अशो. (गिर.)पटिपजेथ, पा. रक्खेथ, लभेथ।

---

१. अथवा उत्तम पु , ए व., आत्मनेपद का विस्तार ।

२. <*प्राप्णोयात् (सम्भावक) या *प्राप्णवत् (अभिप्राय) । हो सकता है कि यह पापोवा के स्थान पर भूल से लिखा गया हो ।

३. ति सभवत <इति ।

४. यह अभिप्राय *भुवाति अथवा सम्भावक *भूयाति अथवा भूयात् इति से भी हो सकता है ।

५. वर्तमान - थास् अथवा सामान्य-असम्पन्न से ।

४. उत्तम पुरुष, बहुवचन।

(अ) ऐतिहासिक रूप ;

(१) परस्मैपद—अशो. (धौ., जौ.) गच्छेम, (का.) विपयेम, (गिर.) विपयेम, (धौ.) पटिपादयेम, (जौ.) पतिपटयेम ; पा. सिक्खेम, वसेमु[१], जानेमु[१]।

(२) आत्मनेपद—पा. साधयेमसे, वदेमसे।

५. मध्यम पुरुष, बहुवचन ,

(अ) ऐतिहासिक रूप—(१) खरो. ध. भवेथ ; (२)—थस् (मूलत. द्विवचन)—पा. लभेथो।

(आ) नये रूप—आनेय्याथ, गच्छेय्याथ, भुञ्जेथ।

६. अन्य पुरुष, बहुवचन ,

(अ) ऐतिहासिक रूप—

(१) परस्मैपद—अशो (शा , मा.) श्रुणेयु, (शा , मा.) सुश्रुषेयु, सुसुषेयु, (का) हंनेयु (कर्मवाच्य), (जौ) हेयु<*भ्वेयु ,(का., मा.) हुवेयु, (धौ) हुवेवू, (धौ., जौ) पापुनेवु, (टो आदि) अनुगहिनेवु, (सुपारा) यावु<*यायु ,(जौ.) लहेयु, (धौ.) लहेवु, (टो आदि) उपवहेवू(ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर) पकमेयु, (ब्रह्मगिरि) जानेयु ; पा सहेय्युं, पजहेय्यु।

आत्मनेपद—(१) ऐतिहासिक—अशो. (गिर.) सुसुसेर ; (२) –थ (मध्यम पु , ब. व. अथवा अन्य पुरुष ए. व. से)—अशो. (गिर)पटिवेदेथ , पा. आसेथ[२]।

(आ) नये रूप—

(२) अविकृत (अभिप्राय) के प्रत्यय सहित—निय. देयांति, देयेयं, उठवेयंति।

(३) –सु (सामान्य Aorist) से—अशो.(शा.) हुनेयसु सियसु।

७. भूतकाल

§ १४४. प्रा. भा आ. भाषा के भूतकाल के तीन लकारो (लिट्, लङ् तथा लुङ्) में से सम्पन्न (लिट् Perfect) के रूप तो म. भा. आ. काल

---

१. वर्तमान के प्रत्यय सहित।

२. देखिये Geiger § १२९।

के प्रारम्भ मे ही लुप्त हो चुके थे। म. भा. आ. को प्रा. भा. आ के सम्पन्न (लिट्) के अवशेष के रूप मे केवल अह्—और विद्—धातुओ के सम्पन्न के अङ्ग (Stem) ही प्राप्त हुये, जो कि प्रा. भा आ. मे व्यवहारतः वर्तमान के बन चुके थे। उत्तर-पश्चिमी विभाषा मे अह्—को वर्तमान कालिक अङ्ग (base) मानकर इसके साथ वर्तमान के प्रत्यय जोडे गये (जैसे—अशो. (शा.) अहति, हहति[1]; निय. अहति)। अन्य विभाषाओ मे इस धातु के ये रूप थे—आह (अशो. (शा.), पा., खरो. ध, प्रा), आहु (पा. तथा अर्धमा तथा नया बनाया रूप आहंसु (पा, अर्धमा)। अर्धमा मे आहु तथा आहंसु रूप पुरुष तथा वचन के विचार के बिना प्रयुक्त हुये।[2] प्रा. भा आ मे वर्तमान का अर्थ देने वाला दूसरा द्वित्व—रहित सम्पन्न (perfect) वेद् (विद्—) संभवतः म भा आ. मे पडिताऊ ढग से आया—पा. विदू, विदु (अन्य पु, व व.)। सम्पन्न का अङ्ग जज्ञा पालि के दो प्राचीन रूपो मे मिलता है—जञ्ञा (अभिप्राय, अन्य पु, ए व) तथा विजञ्ञम (सभावक उत्तम पु, ए व.)।

§ १४५ प्रा. भा. आ के असम्पन्न (लङ् Imperfect) तथा सामान्य (लुङ् Aorist) म. भा आ. मे एक हो गये (जैसा कि प्राचीन फारसी मे भी हुआ)। तिङ्—प्रत्यय के अन्तिम व्यञ्जन का लोप हो जाने के कारण असंपन्न तथा—स्—के आगम से रहित सामान्य के रूपो मे आम तौर पर केवल अङ्ग (stem) मे ही रूप (अर्थात् मध्यम पु, ए. व, अन्य पु, ए व. एव द्वित परस्मैपद) रह गये अथवा अन्य रूप के सदृश बन गये और इनमे प्राय. सभावक के रूपो का भ्रम होने लगा।[3] अर्धमा. वेज्जा=अदात्, बुया=अब्रवीत्, पुच्छे=अपृच्छत्, अच्छे=आच्छिन्द्यात् जैसे रूपो का यही कारण है। स्—आगम वाले सामान्य के रूप तिङ्—प्रत्यय के अन्तिम व्यञ्जन के लोप के बाद ही स्पष्ट रूप से अलग बने रहे। यही कारण है कि प्रारम्भिक म भा आ मे सामान्य के रूप बने रहे और असम्पन्न के टिक न पाये। सामान्य भी स्वत. बना न रहा, अपितु इसने कुछ नये तिङ्—प्रत्यय (जैसे—उत्तम पु., ए. व.—स तथा—सु, अन्य पु., व व सु) तथा कही कही अङ्ग का रूप (जैसे—हू—,

---

१ ह्—का पूर्वागम, मिलाइये निय हछति।

२. देखिये Pischel § ५१८।

३. देखिये Pischel §§ 466, 515, 516। इसी प्रकार महाभारत मे दद्यात्=अदात्, हरेत्=अहरत्, ब्रूयाः=अब्रवी आदि।

<भू--, कास्<कृ--आदि) ही प्रदान किये। अशोकी प्राकृत में भूतकाल के रूप सामान्य की अपेक्षा असम्पन्न के ही अधिक अनुरूप है।

§ १४६. म. भा. आ. मे भूतकाल के तिङ्-प्रत्ययो से निष्पन्न क्रियापदो का अधिक प्रचलन न रह गया। अशोकी प्राकृत मे केवल सात धातुओ के असम्पन्न-सामान्य के रूप आये हैं[1] और इन रूपो मे भी एक को छोड अन्य सभी अन्य पुरुष, ए. व. तथा ब. व. के रूप हैं। इनमे से केवल एक धातु (√भू--) के चार रूप हैं (उत्तम पु., ए. व., अन्य पु., ए व. परस्मैपद एवं आत्मनेपद तथा अन्य पु., ब. व), एक धातु (निष्--√क्रम) के तीन रूप (अन्य पु., ए व. परस्मैपद तथा आत्मनेपद और अन्य पु., ब. व.) एक धातु (या-- अथवा नि-या--) के केवल दो रूप (अन्य पु., ए. व. तथा ब. व.) और अन्य धातुओ के केवल एक-एक ही रूप (अन्य पु,, ए. व. तथा ब. व.) हैं। पालि मे असम्पन्न-सामान्य के रूप अनेक तथा विविध हैं, परन्तु यह स्थिति पालि की प्राचीनपरकता तथा संस्कृत के प्रभाव के कारण है। यही बात अर्धमागधी के बारे मे भी कही जा सकती है, परन्तु वहाँ भूतकाल के तिङन्त रूप पालि की अपेक्षा संख्या मे कम हैं और इतने विविध भी नही हैं।

§ १४७. निय--प्राकृत तथा अपभ्रंश मे तिङन्त भूतकाल के सर्वथा अभाव से स्पष्ट है कि पालि तथा अर्धमागधी मे इसकी स्थिति प्राचीनपरकता एवं कृत्रिमता की परिचायक ही है। म भा. आ. के द्वितीय पर्व मे प्रा. भा. आ. भाषा से वस्तुतः परम्परया प्राप्त तिङन्त भूतकाल के सहायक क्रिया के जो एक--दो रूप चले आये (जैसे—आसि<आसीद् तथा नासि<नासीत्, होत्था <*भोस्थाः, अहु<अभूद् आदि), वे अव्ययो के रूप मे प्रयुक्त हुये अर्थात् उनमे पुरुष एव वचन के कारण रूप-भेद न किया गया। पालि मे अहुवा <√भू-- ए. व. मे तीनो पुरुषो मे प्रयुक्त हुआ है। बौ. सं. मे आसि, अभू, अभूषि की यही स्थिति है।

§ १४८. म. भा. आ. भाषा मे भूतकालिक तिङन्त रूपो मे अडागम (Augment) नही होता था। अशोकी प्राकृत मे केवल दो असम्पन्न (अहो, अयाय) तथा एक सामान्य नायासु, रूप मे ही अडागम मिलता है। पालि मे अडागम की स्थिति सचमुच एक कृत्रिमता है और अर्धमागधी के अडागम वाले रूप वस्तुतः संस्कृत-प्रभाव के सूचक हैं।

---

१. भू--, या--(नि-या-), निष्-क्रम् ; आ-लोचय्, इष्, मन् और वृध्-- ।

§ १४६. तिङन्त भूतकाल के रूप निम्नलिखित है ,

१. उत्तम पुरुष, एक वचन—

(१) असम्पन्न (Imperfect)— पा. आसिं, अब्रविं ।

(२) सामान्य (Aorist)- (अ) धातु सामान्य (Root Aorist)—पा. अहुं (√भू–), अदं (√दा-) ; (आ) अ-सामान्य (a-Aorist)—पा. अगमं ; (इ) इष्-सामान्य (Is-aorist)—पा अगमिं, (√गम्), (अ) चरिं (√चर्–), पा. अगमिसं (√गम्–) मिलाइये ऋ. सं. अक्रमीम्, आगृभीम्, वधीम् , (ई) स-सामान्य (Sa-aorist)—अशो. (ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर) हुसं, (ब्रह्मगिरि) हुस (–सं) ; पा. अहोसिं ; (उ) सिस्-सामान्य (sis-aorist)—पा. अगमिसं, अस्सोसिं (√श्रु–) ; (ऊ) मुलतः क्रियातिपत्ति (Conditionol)—अर्धमा. अकरिस्सं, पुच्छिस्सं (√पृच्छ्–, वर्तमान का अङ्ग) ।

२. मध्यम पुरुष, एकवचन ;

(१) असम्पन्न—आसि (√अस्–) ।

(२) सामान्य—(अ) धातु-सामान्य—पा. अहू (√भू–), अदो, अददा (√दा–) ; (आ) अ-सामान्य—पा. अगमा (√गम्–) , (इ) इष्–सामान्य—पा अगमि, करि ; (ई) सिस्-सामान्य—पा. अञ्ञासि, (√ज्ञा–), अकासि (√कृ–), अस्सोसि (√श्रु–) ; अर्धमा. (अ)कासि, वयासि (√वद्–) ।

३. अन्य पुरुष, एक वचन ,

(१) असम्पन्न—अशो. (शा., मा., गिर., का., धौ.) अहो (√भू–), अशो. (गिर.) अयाय (√या–) ; पा. आसि (√अस्–) ; अर्धमा अब्बवि (√ब्रू–) ।

(२) सामान्य—(अ) धातु-सामान्य—पा. अहू (अहु) ; अर्धमा. अभु (√भू–) , पा. अदा (√दा–) ; (आ) अ-सामान्य—पा. अहुवा (भू–), अगमा (√गम्–) , अर्धमा. भुवि (√भू–) , (इ) इष्-सामान्य—पा. अगमि, करि, वेदि (√विद्–) , अर्धमा. अचरि (√चर–) , (ई) सिस्–सामान्य—पा. अहोसि, अहेसि (√भू–), अकासि (√कृ–), अञ्ञासि (√ज्ञा–), अस्सोसि (√श्रु–) ; अर्धमा., अप. अहेसि (√भू–) ; अर्धमा. (अ) कासि, थासि (√स्था–), वयासि (√वद–) ; (उ) आत्मनेपद— अशो. (टो.) हुथा (√भू–), वदिथा (√वद्–) ; अशो. (सुपारा) निखमिथा

(√निष्-क्रम्–), (जौ.) कमियिथ (√कम्–) , पा. अभस्सथ (√भ्रंश्–), पुच्छित्थ (पृच्छ–), उदपत्थ (उत्–√पद्–) , बौ. सं. निलीयोथ (महावस्तु) , अर्धमा. होत्था (√भू–) ।

४. उत्तम पुरुष, बहुवचन ;

(अ) अ-सामान्य—पा. अगमाम , (आ) –स्–सामान्य (Sigmatic aorist)—पा. अदम्ह (√दा–), अहुवम्ह (√भू–), अस्सुम्ह (√श्रु–), अगमिम्ह , अर्धमा वच्छाम्रु (√वस्–) ।

५. मध्यम पुरुष, बहुवचन ,

(अ) अ-सामान्य—अगमथ , (आ) –स्–सामान्य—अगमत्थ, अकत्थ (√कृ–), अदत्थ (√दा–), असुत्थ (√श्रु–), अहुवत्थ, पुच्छित्थो , बौ. स. वदित्थ (मा के साथ) ।

६. अन्य पुरुष बहुवचन ,

(अ) असम्पन्न—पा. आसु (√अस्–), अब्रवु (√ब्रू–) ,

(आ) धातु-सामान्य—अद्दु (–द्), अहू, अहुँ (√भू–) ।

(इ) अ-सामान्य—पा. अगमु ।

(ई) स्-सामान्य—अशो. (धौ) निखमि, (शा., मा.) निक्रमि (ब. व. के लिये ए. व. , अशो. गिर.) अहंसु (√अह्–), अशो. (मा., का., टो., रूपनाथ, मस्की) हुए, (शा) अभुवसु (भू–), अशो. (टो) इछिसु (√इष्–;, अशो. (का) मनिसु, (शा.) मनिसु, (√मन्–), अशो. (शा., मा.) निक्रमु, (का , धौ.) निखमिसु, (मा., का., धौ., जौ.) अलोचयिसु, (शा.) लोचेसु (√लोचय्–), अशो. (गिर.) आरभिसु, (शा.) आरभियिसु (√आरभ्–कर्मवाच्य), पा. अकसु, अकासु, (√कृ–), अगमिसु अगमिसु, अहेसु (√भू–), अट्ठसु (√स्था–) , अर्धमा. आसिसु, वैदिसु ।

§ १५० सामान्य (मा के साथ निर्बन्ध (Injunctive) का प्रयोग बौद्ध मा. भा. आ. मे जीवित मुहावरा है—खरो. ध. म गमि, म उववद्द (=पा. उपच्चगा), म प्रयदि , बौ. स. मा वदित्थ ।

८. कृदन्तीय भूतकाल (Periphrastic Preterite)

§ १५१. भूतकाल के लिये धातु के भूतकालिक तिडन्त रूप के स्थान मे कर्मवाच्य भूतकालिक कृदन्त (Passive Past Participle) का प्रयोग

भारत-ईरानी मे शुरू हुआ और संस्कृत मे इसने पर्याप्त प्रमुखता प्राप्त कर ली। ऋ. सं. तक मे कर्मवाच्य भूतकालिक कृदन्त के साथ सहायक क्रिया के रूप मे √अस्–तथा √भू– का प्रयोग मिलता है (धूमस्ते केतुरभवद् दिवि श्रितः) और ब्राह्मणो मे तो यह एक प्रतिष्ठित मुहावरा ही हो गया (जैसे—देवासुराः सयत्ता आसन्) [1]। वैदिक भाषा मे इस कृदन्तीय भूतकाल (Periphrastic Preterite) का प्रयोग म. भा. आ. तथा आ. भा. आ. मे इसके विकास की दिशा निर्धारित कर देता है। निय–प्राकृत[2] तथा अपभ्रंश का भूतकाल इसी दिशा मे अग्रसर हुआ। प्रा. भा. आ. मे इस कृदन्तीय भूतकाल मे √अस्–के रूप उत्तम तथा मध्यम पुरुष मे कृदन्तीय रूप (जो प्रथमा ए. व. का होता था) का अनुगमन करते थे और अन्य पुरुष मे केवल भविष्यत् कृदन्त के रूपो का प्रयोग होता था। निय–प्राकृत मे भूतकाल के लिये भूतकालिक कृदन्त ही था और प्रथमा ए. व. तथा ब. व. के रूप एक से होने के कारण प्रत्यय–न्ति (वर्तमान, ब. व.–(अ) न्ति जिसे सहायक क्रिया के रूप सन्ति से बल मिला) जोड़ा जाता था। अन्य प्रत्यय-मि (उत्तम पु., ए. व.) –म (उत्तम पु., ब. व.), –सि (मध्यम पु., ए. व.) और –थ (मध्यम पु., ब. व.) जितने प्रा भा. आ. के तिङ् प्रत्यय हैं, उतने ही अस् धातु के रूप भी हैं—(अ)स्मि, स्मस्, (अ) सि, स्थ [3]।

§ १५२, निय. के भूतकालिक रूप ये हैं;

(अ) ए. व., उत्तम पु.—निय. अगतेमि<आगतोऽस्मि, अयिदेमि<आयातोऽस्मि, हुदोमि <भूतोऽस्मि, तिदेमि<* दितोऽस्मि, विक्रीदेमि<विक्रीतोऽस्मि, श्रुतेमि, गतोस्मि, थदोस्मि (सदेमि भी), प्रिहितोस्मि<प्रीतोस्मि, प्रहिदास्मि (प्रहिदेमि भी <प्रहितोऽस्मि); प्रा. गदम्हि, आणत्तम्हि ; अप. आरूढोमि, उत्तिण्णोमि, नीग्गोमि (वसुदेव हिण्डी) आदि।

(आ) ए. व., मध्यम पु.— निय. (१) गदेसि<गतोऽसि, दितेसि<* दितोऽसि, दुदेसि, विक्रिदेसि, विसजिदेसि ; (२) लिखितेतु<लिखितः तुभ्रम्, पिचविदेतु<प्रत्यापितः तुभ्रम्, विसजितेतु।

---

१. Macdonell-Vedic Grammar for students २०७ §a, b.।

२. Burrow § १०५।

३. Geiger § १७३।

(इ) ए. व., अन्य पु.—आयित[1]<आयातम् या आयातः, गिट< गृहीतम्, गिनित<गृह् णीत–, लिखिद (लिहिद भी), विक्रिनित, विस्जित (=विसर्जित–), थवित, इछित।

(ई) व. व., उत्तम पु.—अयितम<आयाताः स्म, क्रीदम, तिदम, हुतम, श्रुतम, विसजिदम।

(उ) व. व., मध्यम पु—किटथ, इछिदेथ, पिचविदेथ।

(ऊ) व. व अन्य पु.—गतति, गवंति<गताः सन्ति, अइतति, आयिवति[2], इछिततति, कतंति, क्रितति, गिनितति, नितंति निदति, पिचवितति, प्रहितति, मरितति<मारिताः सन्ति=अमारयन्, मृतंति<मृताः सन्ति=अम्रियन्त, विसजितति, श्रुतति, हुतति।

६. कर्मवाच्य

§ १५३. कर्मवाच्य का कर्तृवाच्य से भेद केवल धातु के अङ्ग में ही था। परन्तु म. भा. आ. मे कर्मवाच्य का प्रत्यय –य–सेट् धातुओ के अन्तिम व्यञ्जन के साथ समीकृत हो गया और इस प्रकार कर्तृवाच्य से इसका प्रायः भ्रम होने लगा। अनिट् धातुओ के साथ –य–>–इय–इअ, ईय–ईअ–अथवा–ज्ज–[3] (चाय्य–[4] <√चि–, ताय्य –[4]<√तन्– जैसे कर्मवाच्य णिजन्त रूपो मे –य्य– मे परिवर्तित होते हुये) और म. भा. आ. के अन्त तक अपनी अलग स्थिति बनाये रख सका (यद्यपि कर्मवाच्य के –ज्ज– वाले रूप सम्भावक के –ज्ज– वाले रूपो मे थोडा बहुत घुलमिल गये)।

§ १५४. आत्मनेपदी प्रत्यय अशोकी प्राकृत की पश्चिमी विभाषा मे तथा पालि मे कृत्रिम प्राचीनपरकता के चिह्न के रूप मे कुछ थोडे से बच रहे।

§ १५५. कुछ विशिष्ट कर्मवाच्य–रूप नीचे दिये जा रहे हैं—

अशो. (टो. आदि) खादियति (वर्तमान, अन्य पु, ए. व.), (शा., मा, गिर., का., टो आदि) अनुविधीयति, अनुविधियति (वर्तमान, अन्य पु., व. व.), (गिर.) अनुविधियता (अनुज्ञा, अन्य पु., ए. व, आत्मनेपद), (का.) अनुविधियतु (अनुज्ञा, अन्य पु., व. व.), (का., धौ., जौ.) आलभियिसु (सामान्य, अन्य. पु., व. व.); खरो. ध दिशदि, परिसुचदि, लिपदि, वुचदि;

---

१. आयित– संभवतः आयात+इत का समिश्रण है।

२ द के बाद अनुस्वार का लोप (देखिये Burrow § १०६)।

३. अशोकी मे नही।

४. जैसा कि व्युत्पन्न—चाय्य– और कर्मवाच्य कृदन्त ताय्यमान मे।

निय. श्रुयति, लिह्यति, परिनियंति, लिपदि ; पा. दीयति, दिय्यति (=दीयते), भाजियति (=भाज्यते), हरीयति (=हर्यते) ; बौ. सं. मुच्चियसु, संयुज्यिसु (सामान्य, अन्य पु., ब. व.), उच्यन्ति (वर्तमान, अण्य पु., व. व.), प्रा. घरिज्जइ (वर्तमान, अन्य पु., ए. व.), सुमरिज्जऊं (अनुज्ञा, अन्य पु., ए. व.), (शौ.) गमीअदु (अनुज्ञा, अन्य पु., ए. व.) ; माग. इश्चीअदि (वर्तमान, अन्य पु., ए. व.) ; महा. दच्छिहिइ (भविष्यत्, अन्य पु., ए. व.), पिज्जइ< पीयते ; अप. दिज्जइ, किज्जइ, भणिज्जइ, होज्जउ (अनुज्ञा, अन्य. पु., ए. व.) ।

१०. णिजन्त तथा नाम-धातु
(Causative and Denominative)

§ १५६. म. भा. आ. मे णिजन्त (Causative) तथा नाम-धातुओ (नाम पदो से बनाये क्रियापद Denominative) की निष्पत्ति समान रूप से हुयी । इनके कुछ ऐतिहासिक रूप म. भा. आ. के अन्त तक चलते रहे । परन्तु म. भा. आ. के अपने विशिष्ट रूप– (आ)पय– प्रत्यय (जो प्रा. भा. आ. मे केवल आकारान्त एकाक्षरीय धातुओ के साथ लगता था, जैसे—दापयति, मापयति, ज्ञापयति, ज्ञपयति[1], के योग से बने । यह प्रत्यय कभी-कभी ऐतिहासिक णिजन्त अङ्ग (Causative base) के साथ भी जोड दिया गया ।

उदाहरण —

(१) –अय– से बने रूप—अशो. (गिर, मा.) वढयति, (शा.) वढेति, (का.) वढियति[2], (धौ.) दुखियति (नाम-धातु), (शा.) दिपयमि (नाम धातु) ; खरो. ध. भवइ, पा. भावेय<भावयेत् (सम्भावक) ; खरो. ध. दशेदि, घसेदि ; पा. घातेति, पा. करेति<कारयति, वड्ढेति<वर्धयति, ममायति <मम– (नाम-धातु), सद्धायति, सुखेति, अट्टियति (आर्त–) ; खारवेल कारयति ; प्रा., अप. कारेइ ।

(२) –पय–से बने रूप—अशो. (का., धौ., जौ.) आनपयामि, (गिर) आनपयामि, (शा.) अणपयमि, (शा., मा.) अणपेमि<आ–√ज्ञा– ; (मा.)

---

१. महाभाष्य (३ १. २.) मे ये तीन णिजन्त नाम-धातु मिलते हैं— अर्थापयति, वेदापयति, सत्यापयति ।

२. कर्मवाच्य वर्ध्यते या कर्तृवाच्य * वर्धीयति (नाम–धातु सुखीयति की तरह) ।

अनुनिक्खपयति<अनु-नि-√ख्या-, (शा.) अनुनिक्खपेति, (गिर.) सुखापयामि (नाम-धातु), खारवेल वन्धापयति, वंडापयति ; पा. आणापेति, पञ्ञापेति, मुञ्चापेति, कारापेति (दुहरा णिजन्त), सुखापेति (नाम-धातु) ; निय. उथवेति, उथवेयति<उद्-√स्था-, विलवेति, स्यवेंति, दशंवेति (दुहरा णिजन्त), कमंवेति (नाम-धातु) ; शौ. आणवेदि, विचिणावेदि ; अर्धमा. कारावेमि (दुहरा णिजन्त), ठावेइ, क्षमावेइ ; मागधी लिहावेमि ; अर्धमा. वेठावेइ (नाम-धातु), अप. करावेइ, देक्खावहि (अनुज्ञा, मध्यम, पु., ए. व.) ।

(२) नियमित णिजन्त रूप पारयामि (√पॄ-) का प्रा. भा. आ. मे एक अन्य रूप पालयामि भी वन गया था, जो √पा- धातु का भी णिजन्त रूप था। इसके सादृश्य पर अपभ्रंश मे √दा- धातु का णिजन्त दलयामि वन गया।

§ १५७. पालि मे कही-कही नाम-धातु मे अङ्ग-प्रत्यय-अय- नही जुड़ा है (जैसा कि परवर्ती संस्कृत मे पुत्रति, खोडति)—उस्सुकति>उस्सुक-, परिपञ्हति<परिप्रश्न । अप. कहइ को कथयति से म. भा. आ. द्वितीय पर्व के रूप कहेइ द्वारा अथवा सीधे * कथति से व्युत्पन्न माना जा सकता है।

§ १५८. कुछ नाम-धातुओ के अङ्गो को सामान्य अङ्ग की तरह माना गया—पच्चप्पिनिस्स<प्रत्यर्पण- (वसुदेवहिण्डी)।

११. सन्नन्त और यङन्त

(Desiderative and Intensive)

§ १५९. सन्नन्त (इच्छार्थक Desiderative) तथा यङन्त (भृशार्थक Intensive) म. भा. आ. के धातु-रूप-प्रक्रिया के नियमित अङ्ग नही रहे। प्रा. भा आ. से आरम्भिक म. भा. आ. मे इनके कुछ रूप चले आये जिनमे से कुछ द्वितीय पर्व मे भी रहे।

उदाहरण—

(अ) सन्नन्त (इच्छार्थक)—अशो. (गिर.) सुसुसेर, (का.) सुश्रुषेयु, (शा., मा.) सुश्रुषेयु (सम्भावक), (धौ, जौ.) सुसूसतु, सुस्सुसतु (अनुज्ञा) ; खरो. ध तितिक्षदि ; पा. सुस्सूसति, जिगुच्छति, तिकिच्छति<चिकित्स-, जिगिसति[1] दिगच्छति <दित्स- ; अर्धमा. सुस्सूसइ, तिकिच्छइ, दुगुच्छइ-, दुउच्छइ

---

1. प्रा. भा आ जिगीषति ; इ-ई के लिये मिलाइये विंशति-वीसति ।

(व्याकरण), दुगुं (-छं-) छइ (व्याकरण) ; शौ. जुगुच्छेदि ; महा. जुउच्छइ< जुगुप्स—।

(आ) यङन्त (भृशार्थक)—पा. वीमंसति< मीमांस-, चङ्कमति, दद्दल्लति<जाज्वल्य-, मोमुहति<मोमुह-, ववक्खति=विवक्ष- ; अर्धमा. लालप्पइ<लालप्य—।

§ १६० परवर्ती प्राकृत तथा अपभ्रंश मे नाम-धातु (अनुरणनात्मक) द्वारा भी कभी-कभी भृशार्थ ध्वनित कराया जाता था, जैसे—महमहइ 'बहुत महकता है', खुसखुसइ 'बार-बार उकसाता है', तडप्फडइ 'बहुत तडपता है', गम्मागम्मइ 'बार-बार आता जाता है'।

१२. नकारात्मक क्रिया

§ १६१. बहुत पहले से ही सहायक क्रिया अस्-के साथ नकारात्मक अव्यय न को जोडकर ऐसे रूप बनने लगे थे जैसे—नास्ति>नत्थि, नासीत्> नासि>नाहि, नासन्>नाह। नकारात्मक अव्यय शुरू मे जुड जाने से ये अस्- धातु के अन्य रूपो से इतने अलग हो गये कि ये रूप सभी पुरुषो तथा वचनो मे समान रूप से प्रयुक्त होने लगे। अशोक के चट्टानो पर खुदे अभिलेखो (Rock Edicts) नास्ति—नथि[1] का प्रयोग प्रथमा ब. व. (नपु.) के साथ किया गया है[2]। निय. मे नस्ति एक सबल नाकारात्मक पद है जिसका प्रयोग तिङन्त क्रिया पद के साथ क्रियाविशेषण के रूप मे किया गया है (सछि इश नस्ति हुतंति)[3]। और अस्ति प्रबल स्वीकारात्मक पद हैं (यव अस्ति सियति)[3]। तुलना कीजिये अशो. (गिर.) अस्ति जनो उचावचं मङ्गलं करोते (इसी प्रकार दूसरे अभि. मे)। अर्धमा. मे नत्थि सभी वचनो तथा पुरुषो मे प्रयोग किया जाता है ; अपभ्रंश मे नाहि और नाह नकारात्मक अव्यय-पद के तौर पर हैं। परवर्ती अप. मे एक नकारात्मक क्रियापद णिआणइ<न (हि) जानाति, नज्जइ <*न-ज्ञाति है। मध्य बंगला नारे 'योग्य नही है' <परवर्ती अप. * न आरइ<न पारयति।

---

१. नथि हि कंमतला।

२. मिलाइये—तृणा च ये केचिदस्ति ओषधियो (महाव.)।

३. Burrow § ९५।

१३. वर्तमानकालिक कृदन्त
(Present Participle)

§ १६२ प्रा. भा. आ. भाषा का -न्त् मे अन्त होने वाला कर्तृवाच्य वर्तमानकालिक कृदन्त म. भा. आ. मे अन्त तक बना रहा और प्रारम्भिक म भा आ. की किन्ही विभाषाओ तथा अर्धमागधी को छोड अन्यत्र इसका प्रयोग -मान (-मीन भी) तथा -आन मे अन्त होने वाले आत्मनेपदी रूपो के स्थान मे भी हुआ। -न्त् अन्त वाले शब्द अकारान्त बना लिये गये और बौ. सं. तथा अपभ्रंश मे इनके साथ स्वार्थे-क प्रत्यय जोडा गया। अपभ्रंश मे इन-न्तक वाले रूपो मे भविष्यत् का अर्थ भी द्योतित होने लगा। इस प्रकार -तुमं कण्हो गेण्हणतागो 'कृष्ण तुम्हे ग्रहण करेगा' (वसुदेवहिण्डी), घाइज्जंतगं =घाविज्यमाणम् (वसुदेवहिण्डी)।

§ १६३. म. भा. आ. मे वर्तमानकालिक कृदन्त के निम्नलिखित मुख्य रूप हैं,

अ. मूलतः कर्तृवाच्य—

(१) -न्त्- ; प्र., ए. व.—खरो. ध. इछो, अणुविचिदओ, अणुस्वरो< अनुस्मरन्, अपशु<अपश्यन्, सवशु<सम्पश्यन्, परियर ; पा. जीवं, जानं ; अशो. (गिर.) कस(-रुं)<* कर्वन्त्—। प्र., ब. व. -अशो (गिर) तिस्टंतो ; पा. इच्छतो। तृ., ए. व.—पा. इच्छता। ष., ब. व.—पा. विजानतं, करोत, कुरुनं।

(२) -न्त- ; अशो. संत-, असत-<*असन्त्-, (गिर.) करात-, करोत-, (शा., मा) करत (करत) -, (का., धौ. जौ) कलंत-, (टो.) अनुपटिपजत-, नासंत-, (जौ.) संपटिपातयत- ; खरो ध. भ (ज-) यदु<* ध्यायन्तः (प्र., ए व.), खारवेल जनेतो (प्र, ए. व.), पा. कन्दन्त-, निपतंत-, बौ. सं. रुदंत- ; निय. संत-, जनद- ; प्रा. (स्त्री.) सन्ती, भणन्ती ; अप. अच्छन्त-, जाणन्त-, पिअन्त-, हुणन्त-, चाहन्त-, होन्त-, जत- (यत-)।

(३) -न्तक- ; नासिक सतक- ; बौ सं. रोदन्तक, (स्त्री) ददन्तिका ; निय जिवदग ; अप जंतउ<* यान्तक, होन्तउ<भवन्तक-।

(४) -न्त्- (लुप्त)—पा जान-, पस्स-, अनुकुब्ब-।

(आ) मूलतः आत्मनेपदी—

(५) -मान- ; अशो. (गिर.) भुजमान-, (का., धौ., जौ.) अदमान-, (शा.) अशमन-, (टो.) अनुवेखमान, (शा. का.) विजिनमन (कर्मवाच्य), (ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर) समान-<* असमान- ; खरो. ध. दझमनो (कर्मवाच्य), <दह्यमानः ; निय. गछमन-, करेमन- ; पा. भुञ्जमान-, कुब्बमान-, अञ्हमान-<* अश्नमान-, कयिरमान- (कर्मवाच्य), समान- ; अर्धमा. वेच्छमाण-, सुणमाण-, समाणी (स्त्री.) ; मागधी लोदमान-, भग्गमाण-; बौ. सं. प्रजायमानी (स्त्री.), पृच्छिअयमानीयो (कर्मवाच्य, प्र., व. व., स्त्री.) गेण्हमाणो (वसुदेवहिण्डी) , अप. आगच्छमानी- (स्त्री., वसुदेवहिण्डी) ।

(६) *-मीन- (-मान- और -ईन-, जैसे -आसीन मे, का समिश्रण) —अशो. (शा.) करमीन-, (जौ.) कलमीन-, (धौ.) विपटि-पदयमीन-, सपटिपजमीन-, (ससराम) पलकममीन-, (सिद्धपुर, रूपनाथ, भाब्रू) पकममिन-, (ब्रह्मगिर) पकममिण-, (टो., कौशा., रधिया, मथिया, रूपनाथ) पायमीन- ; अर्धमा. (अधिकांशतः आयरंगसुत्त मे) आगममीण-, आसामीण-, भोअमीण- ।

(७) -आन- ; पा. (अधिकाशतः प्रचीन पद्यो मे) कुब्बाण-, पत्थयान-, परिपुच्छियान- (कर्मवाच्य) ; अर्धमा बुयाबुयाण-<* ब्रुवाब्रुवाण-) ।

(८) -ईन-[1] ; पा. आसीन- ; महा. मेलीण-<√मिल्-[2] ।

१४. भविष्यत् कृदन्त

(Future Participle)

§ १६४. प्रा. भा. आ. भाषा का -स्त् मे अन्त होने वाला भविष्यत कर्तृवाच्य कृदन्त पालि तथा अर्धमागधी मे प्राचीनपरकता के कारण मिल जाता है, यद्यपि विरल रूप से । पदान्त संयुक्त-व्यञ्जन के लोप द्वारा ये पद अकारान्त बन गये हैं । इसके जो रूप मिलते हैं, वे सभी पु., द्वि., ए. व. अथवा नपु., प्र., ए. व. के हैं । इस प्रकार, पा. करिस्सं, पच्चेस्सं ; अर्धमा. आगमिस्सं, भविस्सं ।

१५. भूतकालिक कृदन्त (Past Participle)

§ १६५ प्रा. भा. आ. भाषा के समान म. भा. आ. भाषा मे भी भूतकालिक कृदन्त के दो प्रत्यय थे -न और -(इ) त । -न ऐतिहासिक रूपो मे

---

१ एकमात्र प्रा. भा. आ. रूप आसीन- है ।

२. हेमचन्द्र के अनुसार ।

मिलता है, जिनमे से कुछ रूप तो प्रा. भा. आ. मे भी नही मिलते तथा –(इ) त एक जीवित प्रत्यय था, जिसके द्वारा म. भा. आ. के अनेक अङ्गो (base) से नये पद बनाये गये।

म. भा. आ. मे कुछ सेट् धातुओ को अनिट् बना दिया गया (विकल्प से) —पकृण्ण– (=प्रकर्दित–), आमट्ठ– (=अव्याविस–)।

§ १६६. नीचे म. भा. आ. के –न– तथा—(इ) त– प्रत्यय वाले रूपो को वर्गीकृत किया गया है ;

(१) –न– ; अशो (टो., मिहरौली, कौशा., रधिया, मथिया, रूपनाथ) दिन–, (भाब्रू) दिन–, (टो.) अनूपतिपंन– ; पा. तुन्न–, रुएण–, छिन्न– प्रा. दिएणा (स्त्री.) ; अप. दिएणी (स्त्री.) ; बौ. स. रुण्ण–=रुदित– ; प्रा. पपलीणु=प्रपलायितः।

(२) –(इ) त– ; अशो. वढित–, लिखित–, कत–, मत–, कारापित–, (का.,धौ., जौ., मा.) हूत–, (शा., मा., गिर., का , धौ., जौ., टो.) भूत– , (गिर.) हारापित–, (का., धौ., जौ.) हालापित–, (शा., मा.) ह्रपति–, (सिद्धपुर, ब्रह्मगिरि) उपयित–, (शा , का., टो , मिहरौली) अभिसित–, (रूपनाथ), उसपावित<* उत्–अपापित–, खरो. ध. अग्रत–<अग्राह्र–, सञत–<संयत–, वरद–<उपरत– ; पा. ञात–, भूत–, कत–, वुसित– (√वस्–), गच्छित–, भञ्जित–, छिज्जित– (<छिद्य–), खादियित – ; नासिक कोणित–, निय इछित, थवित, लिहित, गिनित<*गृह्णीत, .गित<गृहीत, छिनित<छिन्द्– ; मह्रा. वुत्थ–<वि–√वस्–, जाणिअ– ; शौ. जाणिद–, गहिद–, गिहिद–, जणिद–<√जन्– ; अर्धमा. गहिय, जट्ठ–<*यष्ट–, वुइय–<*वु वित– ; अप हणिअ–<*हनित–, जाली<ज्वालित–, चिट्टी (स्त्री.), पुच्छिअ–, पाविअ–, रुत्त–<रोपित–+उत–, अच्छिय–<√अस्– आदि। –अढत– जैसे कुछ विचित्र रूप भी है। प्रा. भा. आ. दत्त– के समान यह रूप भी द्वित्व–अङ्ग—धध् से बनाया गया है।

(३) –* (इ) त–क– ; बौ. सं. आगतक– ; निय. लिखिदग, लिखिअए, लिहितए, लिहितय, दितए, दिदए, दिदय, चितग्<*दितक–, गच्छिदगअ, थिवग, स्तितग ; अप. जायओ=जातः, मुक्कउ=मुक्तकः।

(४) *–(इ) तल (–तल्ल–) — ; अप मुक्कलओ=*मुक्तलकः।

(५) *–न+इल्ल+क– ; अप. दिण्णेल्लयं (दिया गया), हएल्लियाणं

(<हत-इल्ल-क, प., ब. व.), आणिएल्लियं (<आनीत-इल्ल-क-, द्वि., ए. व.)।

§ १६७. प्राकृत तथा अपभ्रंश मे अविकृत प्रत्ययो से व्युत्पन्न शब्द (Primary Derivatives) भूतकालिक कृदन्त जैसे बन गए है। इस प्रकार— अप. पड्डिल->√पत्-, फुल्लिल-<√स्फुर्-, पुच्छिल्ला, हसिर-; प्रा. कल-=कृत-, मूश-=मुषित-, खज्ज-=खादित-, रोइरी=रुदित-।

१६. वन्त्-प्रत्ययान्त भूतकालिक कृदन्त

(Possessive Past participle).

§ १६८.—वन्त् प्रत्यय युक्त भूतकालिक कृदन्त और सम्पन्न कृदन्तकर्तृवाच्य (Perfect Participle Active) के अर्थ मे इसका प्रयोग ऋक् संहिता मे नही मिलता और अथर्व संहिता मे भी केवल एक बार ही मिलता है (अशितावन्त्)। वैदिक गद्य मे भी ये रूप नही मिलते, परन्तु संस्कृत मे इनका खूब प्रचलन है।

(१) पालि तथा अर्धमागधी मे -वन्त् प्रत्यय वाले भूतकालिक कृदन्त विरल एवं प्राचीनपरकता के द्योतक हैं—पा. वुसितवा (प्र., ए व.), वुसितवतं (ष., ए. व.); अर्धमा. पुट्ठवं=स्पृष्टवान्।

(२) परन्तु -विन् (जो -वन् का ही एक रूप है) प्रत्ययान्त रूप पालि मे कम नही है-, जैसे—भुत्तावी [1] (प्र., ए. व.), भुत्ताविं (द्वि., ए. व.), भुत्ताविस्स (प., ए. व.) आदि। बौद्ध म. भा. आ मे इसके अन्य उदाहरण— खरो. ध. जितवि; बौ. स दर्शावी।

१७. भविष्यत् कर्मवाच्य कृदन्त

(Future Passive Participle)

§ १६९. परवर्ती वैदिक प्रत्यय -तव्य म. भा. आ. मे नियमित रूप से अन्त तक प्रयुक्त होता रहा और परवर्ती अपभ्रंश तथा आ. भा. आ. भाषा की पूर्वी विभाषाओ मे यह भविष्त् काल के रूप मे विकसित हुआ। दूसरा परवर्ती वैदिक प्रत्यय -अनीय इतना प्रचलन न पा सका। प्रा. भा. आ. भाषा का विशिष्ट भविष्यत् कर्मवाच्य कृदन्तीय प्रत्यय -य म. भा. आ. मे अपने पूर्ववर्ती व्यञ्जन के साथ समीकृत हो जाने के कारण शीघ्र ही लुप्त हो गया। ऋक्संहिता का -त्व (=तुम्) तथा -आय्य मिलकर अशोकी में -तवाय,

---

१. मायाविन् के सादृश्य पर।

–तवय हो गये ; –य तथा –त्व मिलकर –ताय बन गये। पालि –तव्य, –तेय <त्व+–य अथवा –त्व+–आय्य ; –नेय्य, प्रा. णिज्ज<–अनीय+–आय्य।

(१) –तव्य—अशो. कटविय–, कटव–, इछितविय–, दखितविय–, प्रजुहितविय–, प्रजोहितविय–, प्रयुहोतव–, पटिवेदेतव्य-(–तविय–) आदि, पा. कत्तब्ब–, जिनितब्ब–, जायितब्ब–, सद्दहेतब्ब– ; निय गदवो, गिनिदवो, कर्तवो ; प्रा. होदव्व–होअव्व–, जाणिदव्व–, जाणिअव्व–, कादव्व–काउव्व– ; अप. करेबा, करेबउ, जाणेवा, परवर्ती अप. पावा, जावा, कब्बा।

(२) –तवाय, –तवय ; अशो. (रूपनाथ) वीवसेतवाय, लाखापितवय (=लिखापेतवय–)।

(३) –तय ; अशो. (जौ.) इछितये, (गिर) पुजेतया।

(४) –ताय ; पा अतसिताय–(<अ–त्रस्–), जापेताय–, पब्बाजेताय–।

(५) –तय्य, –तेय्य ; पा. आतय्य–, आसेय्य–, दट्ठय्य–, दट्ठेय्य–।

(६) –अनीय, अशो. (जौ.) अस्वासनिय–, (शा, मा., का.) वेदनिय–, पा. पूजनीय– ; लभईय ; शौ. पूअणीअ ; निय. करनिय।

(७) –नेय्य (या*नीय) ; पा. पूजनेय्य– ; अर्धमा पुअणिज्ज–।

(८) –य ; अशो. (गिर.) कचं, (धौ., जौ., ससराम, वैराट) चक्ये, (टो., मिहरौली, रधिया, मथिया, रूपनाथ) देखिये, (टो., कौशा., रधिया, मथिया, रूपनाथ) दुसपटिपादये, (रधिया, मथिया, रूपनाथ) अवध्य–, (टो. मिहरौली, कौशा.) अवधिय– ; निय. किच ; पा. नेय्य–, देय्य–, खज्ज–, लेज्ज– ; अर्धमा. पेय्य–, वच्च– ; अप. दुग्गेज्झ– (दुर्–√ग्रह्)।

१८. असमापिका-पद (Infinitive)

§ १७०. संस्कृत का एकमात्र द्वितीया असमापिका-प्रत्यय–तुम्, जो ऋग्संहिता मे विरल है, म. भा. आ मे केवल एक विभापीय प्रत्यय मात्र रह गया है। अशोकी मे केवल गिरनार मे ही इसका एक रूप मिलता है और वह भी नपुं., ए. व. मे—आराधेतु। पालि, प्राकृत और अपभ्रंश मे इसके जो रूप हैं, वे अंशतः विभाषीय हैं और अंशतः कृत्रिम हैं—पा. सोतु, पप्पोतु, पुच्छितु ; प्रा. पुच्छिइ), गमिदु (–उं), गन्तु, कादु (–उं), सोढुं (–उं), दीसिउं ; अप. अच्छिउ, गहेउं. दुट्ठुं (कर्मवाच्य अङ्ग से)। निय. मे यह प्रत्यय विरल है—कर्तु, अगन्तु।

§ १७१. चतुर्थी असमापिका-पद, जो संस्कृत मे लुप्त हो गया, म. भा. आ. मे (परवर्ती अपभ्रंश को छोड़) सर्वत्र मिलता है—

(१) –तवे, –तवै>–तवे ; अशो. (गिर.) छमितवे, (धौ , जौ.) खमितवे, (सुपारा) आजानितवे, विस्वसयितवे, (धौ., जौ., टो., मिहरौली, रधिया, मथिया, रूपनाथ) आलाधयितवे, (ससराम) पावातवे, (वैराट) वतवे, (ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर) आराधेतवे, (रूपनाथ) आरोधवे=आराधेतवे, (टो., मिहरौली, रधिया, मथिया, रूपनाथ) पलिहतवे ; पा. दातवे, गन्तवे, रजेतवे ।

(२) *–त्वै[1]>–तुये ; पा कातुये, हेतुये ।

(३) –त्वायै[2]>– ताये (–त्ताये) (मिलाइये वेदिक गत्वाय,दृष्ट्वाय) , पा. दक्खिताये, खादिताये ; अर्धमा. गमित्तए, गच्छित्तए, भोत्तए ।

(४) *–तायै>–ताये, –ताए ; अर्धमा. पायाए[3] ।

(५) –आय, –*आयै ; अशो. (गिर.) निस्टानाय, (शा.) छमनये, (धौ., जौ.) अस्वासनाये ; निय. करंनये, गछंनए, थियनए, शुननए ; पा. करणाय, दस्सनाय– ।

(६) –से[4] ; पा. एतसे ।

§ १७२. प्रारम्भिक काल से ही असमापिका-पद और क्रियाजात-विशेष्य (gerund) मे धालमेल होता आ रहा था, जिसके फलस्वरूप अन्ततः अपभ्रंश मे ये दोनो एक हो गये (जैसे–लहिवि, लहेप्पिणु) । अपभ्रंश मे विशिष्ट असमापिका-पद –अन प्रत्ययान्त क्रियाजात-विशेष्य का द्वितीया तथा षष्ठी का ए. व. का रूप थे, जैसे—कहण (ण सक्कइ वत्थु), (चोरु ण) मुणणह (जाइ); (मणु) वारणह (न जाइ) । मिलाइये पालि क्रियाजात-विशेष्य अनुमोदियन (Geiger § २१४) ।

§ १७३. –अक, प्रत्ययान्त प्राथमिक-व्युत्पन्न (Primary Derivative) शब्दो के नपु., ए. व. के रूप को प्रारम्भिक म. भा. आ. मे कही-कही असमापिका-पद के रूप मे प्रयोग किया गया, जैसे – अशो. दापकं, लावापक

---

१ मिलाइये ऋ. सं. इष्वै (इषु–का चतु., ए. व. स्त्री.) ।

२. मिलाइये ऋ. सं. इत्यै ।

३. मिलाइये ऋ. स पीतये ।

४. ऋ. स. अयसे, चरसे ।

(सावकं) ; नागार्जुन --स (--सं--) पादके ; बौ. सं. (अरमासि देवि आस्रवणं) निरीक्षिका (महावस्तु) ; मिलाइये पतञ्जलि 'यवान् लवको लनति' ।

१९. क्रिया-जात विशेष्य (Gerund)

§ १७४. म. भा. आ. की विभाषाओं ने प्रा. भा. आ. से परम्परया –त्वा, –या (–त्या, –त्य), –त्वाय तथा –त्वी प्रत्यय प्राप्त किये । म. भा. आ के नये प्रत्यय हैं –तु (असमापिका से), –*त्वान और –*त्वीन, –*त्वन (>तून, तून) । म. भा. आ. मे विशेषतः द्वितीय पर्व मे और अपभ्रंश मे तो हमेशा ही क्रियाजात-विशेष्य के लिये असमापिका और असमापिका के स्थान पर क्रियाजात-विशेष्य का प्रयोग हुआ ।

कहीं-कहीं एक ही धातु से विभिन्न क्रियाजात-विशेष्य बनाये गये हैं । इस प्रकार स्नु– से थोऊण तथा संथुणित्ता (अपभ्रंश), ग्रह् (ग्रभ्–) से गहेत्वा (पा.), गण्हित्वा (पा.), –गय्ह (पा.), गहाय (पा., अप.) । घेत्तूण (प्रा.), गहेऊण (प्रा.), गिज्झ (प्रा.) ।

(१) –त्वा (म. भा. आ. मे यह उपसर्ग-रहित धातु तक ही सीमित न था) —अशो. (गिर.) दसयित्पा<दर्शयित्वा, अलोचेत्पा, आरभित्पा, परिच्चजित्पा <परि–√त्यज्– ; खारवेल अचितयिता<अचिन्तयित्वा ; खरो. ध. हत्व< √हन्–, छेत्व, किस्व, हित्व, सुत्व<√श्रु– ; निय. श्रुत्व, सुइ, दधित्व ; बौ. सं. विजहित्वा, छिनित्वा ; पा. ठत्वा, हन्त्वा, गन्त्वा, पिदहित्वा<अपिधा–, गत्वा, कत्वा ; अर्धमा. गन्ता, आगमेत्ता<आगम्–, जाणित्ता, उट्ठित्ता– ; अप. (वसुदेवहिण्डी) पराजिणित्ता, विलवित्ता<वि–√लप्–, छित्ता<√ क्षिप्–, ओगेण्हित्ता<अव–√गृह्– ।

(२) –त्वी (केवल ऋ. सं. मे जैसे कृत्वी ; यह प्रत्यय गान्धारी प्राकृत की विशेषता है) —अशो. (शा.) अलोचेति<आलोचय, तिष्ठिति<√स्था–, (मा.) द्रशेति<दर्शय्–, खारवेल वितासिति[1], <वि–√त्रासय्– ; खरो ध परिवजेति<परि–+वर्जय्–, वहेति<√वाह्य– ; निय श्रुनिति, अप्रुछिति ; बौ सं. निष्क्रमिति<√निष्क्रम्– ; अप. करेप्पि<√कृ–, कारय्–, होइवि <√भू–, सुइवि<√सुच्– ।

(३) *–त्वा+न ; खरो. ध. श्रुत्वन<√श्रु–, ग्रहत्वन ; पहुत्वान,

---

१. परन्तु यह वितसेति<वित्रसयति भी हो सकता है ।

अत्वान, हनित्वान, विनयित्वान[1] ; बौ. स. दृष्ट्वान ; अर्धमा. चिट्ठित्ताण (–ण), करेत्ताणं ।

(४) *–त्वी+न ; अप. करेप्पिणु, होएप्पिणु ।

(५) *–तु (म्)[2] ; अशो (का , टो.) सुतु, (शा. मा.) श्रुतु, (धौ.) जानितु, (धौ., जौ.) कटु<कृ–, (का., धौ., जौ., मा.) चिठितु, (शा., मा.) परितिजीतु , (धौ , जौ.) पलितिजितु, (का.) पलितिदितु, (गिर.) आराधेतु ; निय. वचितु[3] ; बौ. स. निर्जिनितु<नि–√जि–, शौ फेलट्टु 'फेंक कर' , प्रा गन्तु, गमिदु (–उ), पुच्छिदु (–उ) ; लंका अभि. कटु, कोटु<कृत्वा ।

(६) *–तु (तू)+न (म) ; अशो. (भाब्र्) अभिवादेतुन[4] ; नागार्जुन परिनमेतुन, परिनामेतुनं ; पल्लव अभि. अतिछितुन, कातूण, नातूण ; पा निक्खमितून, आपुच्छितून, छड्डून , प्रा. उट्ठेऊण, काऊण, गेण्हिऊण, गन्तूण, घेत्तूण, हन्तूण, दट्ठूण, वाहरिऊण<वि–अ–√हृ–, वुत्तूण (=उक्त्वा), निहिएऊण (=निधाप्य), पयहिऊण (=प्रहाय) ।

(७) –त्व[5] , बौ. स. करित्व, गृहीत्व, वेठित्व[6] , शौ., मागधी कदुअ, गदुअ , अर्धमा. जाणित्तु (<जाणित्ता+*जाणितु), वन्दित्तु ।

(८) –*त्व+न (ना) , बौ. स. करित्वन, कृत्वना, श्रुणित्वना, लोभयित्वन, जहित्वना ।

(९) –य , अशो. (गिर.) सछाय, (शा , मा.) सखय , खरो. ध. निहइ <निधाय, समदइ< समादाय, अरुपु[7] <आरुह्य, अभिवुयु[7]<अभिभूय . कालावान पुयइअ<√पूजय– , पा. अभिञ्ञाय, उट्ठाय, अभिभुय्य, पच्चुय्य ;

१. पा. दिस्वान<*दृश्वान ।

२. प्रा. भा. आ. असमापिका जैसा अङ्ग ।

३. Burrow § १०२ ।

४. पाठ अनिश्चित परन्तु अनुमानतः संभव ।

५. मिलाइये ऋ. सं. मे –त्व (–तुआ) प्रत्ययान्त क्रियाजात-विशेष्य ।

६. बौ. सं. के उदाहरण –त्वा प्रत्ययान्त रूपो के छन्दानुरोध से ह्रस्वीकृत रूप हो सकते है ।

७. यह पदान्त –उ संभवतः –तु प्रत्ययान्त रूपो के प्रभाव से आया होगा । (Senart) के पाठ मे सकरु है जो –उ<–तु प्रत्ययान्त असमापिका या क्रियाजात विशेष्य है (=संकर्तुम्) ।

वौ. स. करिय, ददिय . निय. उवदए, उदिश ; शौ. करिअ, गच्छिअ, सुणिअ · अर्धमा आयाए, शुनिय, पासिय, पस्सा ; अप. भइ, करि, सुणिअ, सुणि (सुणिए) लका अभि. करवय<√ कारय्-, कणवय<√खनय्- ।

पा. अन्वाय, पा., प्रा. गहाय आदि में दीर्घ-स्वर आदाय, निधाय आदि के साहस्य पर है ।

(१०) -या[1] : अशो. (सुपारा) संनंधापयिया ।

(११) *- या+न ; वौ. सं. करियान , पा. उत्तरियान, अनुमोदियान ; अर्धमा. लहियाण, तक्कियाणं ।

(१२) -या+य : नागार्जुन उदिसाय (=उद्दिश्य) ।

(१३) -त्य ; अशो. (भाब्रू) अधिगिच्य, (रूपनाथ, नागार्जुन) आगाच ; सुइ विहार ताम्र-पत्र ठपइचं , खरो. ध परिकिच : अर्धमा. समेच्च ।

(१४) -त्या[2] ; अर्धमा. चिच्चा, अपिच्चा ।

(१५) - त्वाय , वौ. सं. दृष्टाय=अ. सं. दृष्ट्वाय ।

---

१. मिलाइये ऋ सं. संगृभ्या, आत्त्या ।

२. मिलाइये ऋ. सं. एत्या, आहत्या, अरं-कृत्या, आगत्या । अशो. (रुपनाथ, नागार्जुन) आगाच संभवतः आगचा के स्थान पर भूल से लिखा गया ।

आठ | प्रत्यय

१. कृत्प्रत्यय (Primary Affixes)

§ १७५. म. भा. आ. के सभी कृत्प्रत्यय (Primary Affixes) प्रा. भा. आ. के आधे दर्जन से भी कम अविकृत प्रत्ययो (Primary endings) से व्युत्पन्न हैं। म भा. आ. के अधिक महत्वपूर्ण कृत्प्रत्यय नीचे दिये जा रहे हैं। कृदन्त तथा क्रियाजात विशेष्य के प्रत्ययो पर यथास्थान विचार हो चुका है।

१. –अ–, क्रियार्थक—अशो. (टो. आदि) दुसंपटिपादय 'प्राप्त करने मे कठिन'; अप. उट्ठ–बइस 'उठना-बैठना'।

२. –अक, –इक (म. भा आ. का बहु-प्रयुक्त प्रत्यय), क्रिया और कर्ता—अशो. (धौ., जौ.) आवागमके<#आवन्त्+√गम्–+अक–, (का.) चिकिसक 'चिकित्सा', (शा , मा , का., गिर., धौ., जौ) पटिवेदक 'सूचना देने वाला', (धौ., जौ.) नगलवियोहालक (<–व्यवहारक), (शा., मा., गिर , का., धौ., जौ.) दापक, (शा., मा.) श्रवक–, (का., धौ., जौ.) सावक–, (गिर) स्रावापक 'जिसकी घोषणा की जाय', (टो.), आनुगहिक 'अनुग्रह की बात'; प्रा. धारओ<धारकः।

३. –अन,–अना; क्रिया—अशो. (टो. आदि) दुखीयन 'दुखाना', सुखीयन 'सुख देना', (टो. आदि) सुखीयना, (टो.) सुखायना, (गिर) निस्टान 'पूरा करना', (टो.) धंम-सावना 'धर्म की घोषणा', (शा., मा., गिर., का., धौ., जौ.) पटिवेदना 'प्रतिवेदन करना', (टो., कौशा.) पालना, (रधिया मथिया, रामपुरवा, मिहरौली) पालन–, (शा., मा., गिर., का) क्षिपना (दिपन) 'प्रगति', (धौ.) तुलना<√त्वर–, (धौ., जौ.) अतुलना 'धैर्य', (गिर.) अथ–सतिसना, (धौ., जौ.) अस्वासना 'आश्वासन', (गिर.) हस्ति-दसना 'हाथियो का प्रदर्शन', खारवेल–संदसना 'प्रदर्शनी', –कारापना

'कराना', बौ सं. मन्थना 'विचार', प्रतिहन्यना 'प्रतिहिंसा', कुप्यन 'क्रुद्ध होना'; अप. कहाला 'बातचीत'।

४ –अन+क, –इका; कर्ता—अप. बोल्लणअ 'बातूनी', वज्जणक, मारणअ 'मारने वाला', भसणअ 'भूंकने वाला', (वसुदेवहिण्डी) उग्घाडणि (उद्–√घाटय्–), ओसवणि (अव–√श्वप्–णिजन्त); बौ. सं. भयानिका, मिलाइये लका अभि. (असमापिका के साथ) करणक कोट्ठ, परिभुजनक कोट्ठ।

५. –अनीय; अशो. (धौ., जौ.) अस्वसनीय 'आश्वासन के योग्य', (शा, मा., का.) वेदनीय 'ध्यान देने योग्य'; खरो. ध. करनिअनि; पा खादनीय–, भोजनीय–।

६. –अर (देखिये नीचे –इर); प्रा. गनरी (स्त्री.) 'गिन्ती'।

७. –इक, –इका (म. भा आ. का बहु-प्रयुक्त प्रत्यय); कर्ता, सुहच्छिअ, <सुखपृच्छिक, –का।

८. –इम (तद्धित –इमन् का विस्तार); क्रिया; अर्धमा. खाइम 'खाना', पूइम 'पूजना', गण्हिम 'ग्रहण, उपहार'; अप. खाइम, साइम (√स्वद्–)।

९. –इर (मिलाइये ऋ. सं. अजिर 'क्षिप्र', ध्वसिर– 'छितरा हुआ', मदिर– 'मस्ती-भरा', इषिर– 'सुन्दर', असिर– आदि); प्रायः सम्पन्न कृदन्त का अर्थ देने वाला विशेषण; प्रा., अप. घोलिर 'घूमता हुआ', हसिर (स्त्री. हसिरी) 'हसता', 'नचेरी' (स्त्री.) 'नचनी', वज्जिर 'आवाज करता हुआ', तुच्छ-जम्पिर 'तुच्छ बातें करता हुआ', बहु-सिक्किरि (स्त्री.) 'बहुत सीखी-पढ़ी', भीइर, 'भयंकर' (वसुदेवहिण्डी)।

१०. –इल्ल, सम्पन्न कृदन्त [1]; पुच्छिल्ल(य) 'पूछा हुआ', आणिल्लिय 'लाया हुआ'; प्रा. लोहिल्ल[2] 'लुभाया हुआ'; अप. पुच्छिल्ल–।

११. –य; अशो. (टो. आदि) देक्खिये 'देखने लायक', (कोशा.) लहिये 'प्राप्त करने योग्य', (ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर) सक्य–, (जतिंगा, सुपारा, रूपनाथ) सकिय–, (गिर, मस्की) सक–<शक्य–, (धौ., जौ., ससराम, वैराट) चकिये<*चक्य– 'संभव'।[3]

---

१. मिलाइये ऋ. स. मे –अर, –अल, –इल, जैसे –द्रवर 'भागता', पत्र 'उड़ता', अनिल 'श्वास' (√अन्–)।

२. यह लोभ– का तद्धित रूप भी हो सकता है।

३. क्रमदीश्वर ने अप. धातु चक्=शक् का उल्लेख किया है।

१. तद्धित प्रत्यय (Secondary Affixes)

§ १७६. तद्धित-प्रत्ययो, और विशेषतः स्वार्थिक (Pleonastic) प्रत्ययों का म. भा. आ. मे बहुत महत्व का स्थान रहा है। ध्वनि परिवर्तनो के कारण प्रा. भा. आ. के प्रत्ययो के लुप्त हो जाने पर स्वार्थिक प्रत्ययों (जिनमे –क प्रमुख था) द्वारा इस क्षति की पूर्ति करने की चेष्टा की गयी। म भा. आ. के अधिक महत्वपूर्ण तद्धित-प्रत्ययो पर नीचे विचार किया जा रहा है।

१. –अ (तथा इसके पूर्व स्वर की वृद्धि) ; भाववाचक संज्ञा ; अशो. (भाव्र्) गारव<गरु=गुरु, (गिर . का., टो.) मादव–<मृदु, (टो.) सांघव–< साधु ; जोगीमारा बलनशेये<वाराणसी= ।

२. –आ (स्त्री.) <–का ; प्रा. इत्थिआ 'स्त्री', बहिणिआ 'बहिन' ।

३. –आ<–आक (स्वार्थिक) ; खलन्तआ<स्खलन्, कलेन्तआ=कुर्वन् ।

४. –आइअ<–आकिक ; विशेषण अथवा स्वार्थिक ; अप. पराइअ< पर+ ।

५. –आक, –अक ; विशेषण ; अप. पराय–<पराक– ; बौ. सं. वाराणसीयक ।

६. –आन ; विशेषण या स्वार्थिक ; प्रा. सुक्खाण<शुष्क–+ ।

७. –आर ; पुरुष-वाचक सर्वनाम से विशेषण ; अप. अम्हार– 'हमारा', तुहार– 'तुम्हारा' ।

८. –आल ; विशेषण ; अर्धमा. अप. सद्दाल– 'शब्द करने वाला', धणाल– 'धनी' ; अप. घघेवालु 'चकराने वाला' ।

९. –इअ<–इक ; स्वार्थिक प्रा. विशेषण ; निय. सवत्सरि, पंचवर्षि [१] ; प्रा., अप. पथिअ–<पथिक–, पन्थिअ<*पन्थिक–, अप. जाइट्ठिअ–< *याहृष्टिक– ।

१०. –इआ<–इका; स्वार्थिक, विशेषण या भाववाचक ; प्रा –सअडिआ <–शकटिका, वसन्तसेणिआ<* वसन्तसेनिका, पश्चानुपच्छिआ<पश्चानुपश्चिका ।

११ –इक, –इक्य ; स्वार्थिक, विशेषण ; अशो. (शा., मा.) स्पमिक–, (गिर.) स्वामिक–, (धौ., जौ.) सुवामिक (का.) सुवामिकय–<स्वामिक,

---

१. यह प्रत्यय –इ (इय) अथवा –ई (ईय) हो सकता है ।

(मस्की) उडालिक<उदार+, (टो.) चंदमसुलियिक–<चन्द्रमस्सूर्यक–, (शा.) चिरथितिक–, (रूपनाथ) चिरठितिक, (का.) चिलठितिक्य–<चिर-स्थितिक–, (का) नतिक्य<ज्ञाति -, आकालिक्य, परलोकिक्य, जोगीमारा देवदशिक्यि=देवदासिका ; बौ. सं. पन्चवशवर्षदेशिक–, धोवापनिक<* धोवापन 'धोबी के पास धोने को जमा हुये कपड़े' (महावस्तु), वप्पिकी (स्त्री.) 'वशानुगत' । मागधी भालिक 'भारी' ।

१२. –इम (मिलाइये पश्चिम) ; विशेषण ; अशो, (टो.) पुलिम– ; पा. पुरिम ; बौ. सं पुरिमक–, अर्धमा. पूरिम– 'पहले का' ; अशो. (का., टो., धौ., जौ.) मझिम–, पा. मज्झिम=मध्यम– ; बौ. सं पुरस्तिम–, अर्धमा. पुरत्थिम—'सामने का' ; अर्धमा. पच्छत्थिम—'पीछे का'. बौ. सं. पृष्ठिम< पृष्ठ–+ ।

१३. –इम<इमन् ; भाववाचक ; अप. मुनीशिम– 'मनुष्यता', वंकिम–<वक्र+,गहिमि–<गभीर+,सरिसिम–<सदृश+ ।

१४. –इय–, –य– ; भाववाचक ; अशो. (धौ., जौ., टो. आदि) निठुनिय– 'निष्ठुरता', (मा.) निरथिय–, (धौ.) निलठिय–<निरर्थ–+, (गिर., का., शा., मा.) पटिवेसिय–<प्रतिवेश– ।

१५. इया–,या–; भाववाचक ; अशो. (का) माधुलिया, निलठिया–, (नागार्जुन) वाषनिषिदिया<*वर्षानिषद्या ।

१६. –लिअ, –इल्ल , स्वार्थिक तथा विशेषण , अर्धमा. सुक्किल–< शुक्र– ; अप. हेट्ठिल<हेट्ठा ; प्रा. नित्तिल्ल 'भीगा' , अर्धमा. मायिल्ल< माया+, पढमिल 'प्रथम' मझिल–, मज्झमिल– ; अप. वज्जिल–< वज्र+, रुठेल्ल<रुष्ट– (मिलाइये नासिक) शिवखदिल 'शिवस्कन्द' ।

१७. –इल्ल+, –क ; प्रा मूइल्लअ–<मूक–+ , अर्धमा. गामेल्लग–<ग्राम+ ; महा. घरिल्ल<घर+ ; अप. मुक्कलअ–<मुक्त+, दिण्णेल्लुय <* दिन्न– ; अप. (वसुदेवहिण्डी) गमिल्लअ<ग्राम–, पदिहत्थल्लिअ< प्रतिहस्त–, पुरिच्छमिल्ल–< पुरस्त्य–, रत्तेल्लग–< रक्तस.त्थल्ल–(<सार्थ–) ।

१८. –इर ; विशेषण ; अप. गुहिर–<गुहा–+, वज्जिर–< वज्र+ ।

१९. –इ– (संस्कृत व्याकरण का 'अभूततद्भावे च्वि.'—अशो (मस्की) मिसीभूत– ; अप. चुण्णीहोइ<चूर्णीभवति, लहुइहुअ<लघ्वीभूत–, खसप-सिहुअ=व्याकुलीभूत ।

२०. –ई– (स्त्री.)—अशो. सूकली ; निय. श्पेति<श्वेत– ; बौ. सं. प्रजायमानि; अप. दिट्ठी<दृष्ट–, तनुसरीरि, परपुट्ठी।

२१–उट ; विशेषण या स्वार्थिक; अप. वंकुट<वक्र।

२२.–उल्ल—विशेषण तथा स्वार्थिक; अर्धमा. पाउल्ल–<पाद+ ; अप. कुडुल्ली, वाहुवलुल्ल(उ), कोडउल्लइ<कीट–+, छडउल्लउ, 'छिड़का हुआ'।

२३.–क—स्वार्थिक या विशेषण ; (म. भा. आ. के स्वार्थिक प्रत्ययो मे से सर्वाधिक प्रयुक्त) ; अशो. (का., टो.) दासभटक–, (जौ.) नगलक–, (शा., मा.) प्रनतिक-पनतिक, (का.) पनातिक्य–, (का., मा.) अवक– (अम्बा+), (शा.) स्त्रियक–, (टो., दिल्ली-मेरठ, रधिया, मथिया, रूपनाथ) अजक— (रधिया, मथिया, रूपनाथ) अजका, (टो., कौशा., रधिया, मथिया, रूपनाथ) गंगपुपुतक–, (टो.) सडक– ; वेसनगर तक्खसिलाक–, नासिक नासिकक–, तेरण्हुक–, अविपन-मातुसुसूसाक, , नागार्जुन जामातुक– ; तक्षशिला रौप्य-पत्र तणुवक– ; माणिकिअला प्रस्तर-लेख अपनग–, कुर्रम ताम्र-पत्र तनुवक–; निय. तनुवगस, तनुवए, भतरग, त्रेवर्सग ; अप. सोणउ (=श्रवणक–) ; प्रा चालुदत्तक–, चालुदत्ताक– ; निय. जिववग ; बौ सं. रोदन्तक, ददन्तिका ; अप. जन्तउ। निय. मे कर्मवाच्य के अर्थ मे प्रयुक्त भूतकालिक कृदन्त मे –क प्रत्यय जुडता था—लिखितग, चरिदए, गदय, दिदए (परन्तु दित 'उससे दिया') बौ सं. आगतक– , अप. रहिअउ, थविअउ, फुल्लिअउ, गुरु-वुत्तउ, कहिअउ, गेहेअन्तग–।

बौ. सं. मे स्वार्थिक या विशेषणात्मक प्रत्यय के रूप मे –क का खूब प्रयोग हुआ है। इस प्रकार महावस्तु मे 'कन्यकुब्जक–, 'कान्यकुब्ज का', मद्रक 'मद्रास की जाति का'।

२४–क्क ; अप. (हेमचन्द्र) परक्क–, राइक्क–, गोणिक्क–।

२५. –ख (मिलाइये सुख–, दुःख–) ;ननख (स्त्री –खी)।

२६. –ट>–ड ; अप. विसडा (=विषम्), सल्लडा (=शल्यम्), दुइ-दिवहडा, भावडा, भावडउ, जिहुडि, मेहुडउ,–उपएडउ (=उपदेशकः), एत्तडउ, वक्खाणडा, अक्करडेहि, परहत्थडा, पिअडा, सुक्खडा, वुलडा, मेलावडा, जीवडा, पसुलोगडा, रत्तडी (=रात्री), णेहडा=स्नेह–, निद्दडी =निद्रा।

२७. –तक, –तिक ; गुणवाचक विशेषण ; अशो. (का) आवतके, (गिर.) यावतको, (मा.) यवतके, (गिर.) बहुतावतकं, (का.) –तावंतके, (शा.) –तवके, (गिर., का., धौ., जौ., शा., मा.) एतक ; बौ. सं. एत्तक–, तत्तक–, यत्तक–, यातुक–, तातुक– ; प्रा एत्ति (क)– ; अप. तत्तक– ।

२८ –तय (मिलाइये चतुष्टय–) ; अशो. (गिर.) एतय, अप. एत्तवि ।

२९. –तर ; तुलना एवं विशेषण कंमतर– (–तल–), बाढतर– (–तल–), दुकलतल– ; बौ. सं यावन्तर–, तावन्तर– 'उतना, इतना' ।

३०. –तम , सर्वोत्कृष्टता ; अशो. गजतम– ; अप. उत्तिम=उत्तम ।

३१. –तस् ; अशो. (धौ.) उजेनिते, तक्खसिलाते, (ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर) सुवंनगिरिते, (धौ.) ममते, (का., धौ., जौ.) मुखत, (शा., मा, गिर) मुखतो, (शा.) वननतो ।

३२ –ता ; अप. अपभांडता, अपव्ययता, कतनता, किटनत, अपबाधता, दिघ–(दिघ–), भतिता, फासुविहालता, लहुदंडता ; अप. मुखसहायता ।

३३. –ताहे ; सार्वनामिक क्रियाविशेषण ; प्रा. एत्ताहे 'अव' ।

३४.–त्र, –त्रिक, –त्रिका (स्त्री.) ; स्थानवाची क्रिया-विशेषण ; अशो. अवत्र, अवत, (अनत्र, अरणत्र, शा., मा.) अत्र, (शा.) तत्र, (टो. आदि) हिदतिकाये, (नागार्जुन) वडतिका कुभा ; अप. परत्त– ।

३५.–त्र ; भाववाचक ; निय ब्रह्मचरित्र, कमकरित्र, जनत्र ।

३६.–त्व ; भाववाचक; अशो. (का., धौ., जौ.) तदत्वाये, (गिर.) तदात्वनो, धर्मपा. पुप्फत्त–, फलत्त–, सामित्त–, रायत्त– ।

३७.–त्वता (मिलाइये ऋ. स. पुरुषत्वता) ; अशो. (रूपनाथ, सहसराम) महतता, हेमचन्द्र भउरत्तया ।

३८.–त्वन (मिलाइये ऋ. स. सखित्वन) ; महा. अमरत्तण–, शौ. बालत्तण–, धर्मपा तक्करत्तण–; अप. वड्डत्तण–, वड्डप्पण–, गहिलत्तण–, सिद्धत्तण–, थिरत्तण–, पत्तत्तण– (<पत्र–), उण्हत्तण–, तिलत्तण–,

३९.–त्य ; विशेषण ; अशो. (गिर.) इलोकच–, एकच– ; (का., धौ., जौ.) एकतिय–, (गिर., का., शा., मा.) निच– ।

४०.–था ; प्रकारात्मक क्रियाविशेषण ; अशो. (का.) अंनथा, (शा.) अनथ, (का., धौ., जौ. स्तम्भलेख) अथा (=यथा), अनथा ।

४१.—घ ; स्थान एव कालवाची क्रिया–विशेषण ; अशो (गिर.) इध, (शा., मा.) इह ; प्रा. अह, जह, तह ।

४२.—*द (देखिये नीचे —दा) ; अशो. (का.) इद (<इदम्) 'अब' ।

४३. —दा ; काल अथवा प्रकारवाची क्रियाविशेषण ; अशो. (धौ., जौ.) अदा (=यदा) ।

४४ —नी,—इनी (स्त्री.) ; अशो. भिखुनी, लखनऊ संग्रहालय मे हुविष्क की मूर्ति का अभि शिशिनिय (=शिष्यायाः) ; नासिक महासेनापतिनि–, नागार्जुन महादानपतिनि– ; अप. सिस्सिनी ।

४५. —*न(क), —*निका (स्त्री.) ; व्यक्तिवाचक नामो के साथ स्वार्थिक ; नागार्जुन खंदसागरनक–, चान्तिसिरिणिका–, हंमसिरिणिका–, चंदमुखन–, कम्बुधिन– ; जातिवाचक नाम— वौ. सं. दासिनिका–, कामिनिका–, हस्तिनिका– ।

४६. —मन्त् ; विशेषण ; अर्धमा. चितमन्त–, विज्जामन्त– ; अप. गुणमन्त–; धनमन्त, बज्जमा ।

४७. —ल (–र), —इल्ल , विशेषण या स्वार्थिक ; अशो. महालक– ; अर्धमा. महालोय–, महल्ल (य)–, कच्छुल्ल–, अन्धल्ल–, एक्कल्लय– , प्रा पक्क– (<पक्व–+) ; अप. एक्कल्ल–, एकल -, पकल–, पत्तल–, दीहर–, मोक्कलड (–अ)–, णग्गल–, अग्गल–, ताहर– 'उसका', तुहार–, अम्हार–, महार– 'मेरा', बेग्गल– 'मेढक, अलग किया हुआ (?)', वञ्चयर– (<वञ्चक–), बहिल्ल–(<बहिर–) ; मिलाइये बौ. सं. भार्यरा ।

४८. —लिक (–लिका स्त्री.) ; बौ. सं. पन्थलिक 'बटोही', ।

४९. —ली ; बौ. सं. नखली 'नाखून' ।

५०. —वन्त् ; अशो. (शा.) पजव<प्रजावान् ।

५१. —ह(—ख)+—क ; प्रा. सुणहक– 'कुत्ता', (मिलाइये पा. सुनख–) , अप. मेच्छहक– 'म्लेच्छ') मिलाइये खरो ध. धमिहो=धार्मिकः) ।

५२. —या<—ता ; अर्धमा. अज्जवया <*आर्जवता, मद्दवया< *मार्दवता ।

५३. —इया<—उ +(अंग)—य+—आ (स्त्री.) ; अर्धमा. (आयरङ्गसुत्त) अज्जविया<ऋजु–, लाघविया <लघु, मदविया<मृदु–, सोचविया<* शोचव्या ।

§ १७७. प्राचीन सामासिक पदों के कुछ उत्तर-पद म. भा. आ. में प्रत्यय बन गये हैं। इस प्रकार—

१. –आल (बहुवचन) ; अप. णवमेहआलु<नवमेघजाल', इन्दिअल–<इन्द्रियजाल–।

२. –अर(अ), –आर(अ) ; प्रा. मालारो<मालाकारो, चित्तअर–'चित्रकार' ; अप. अन्धार– 'अन्धकार', विप्पिअआरअ–<विप्रियकारक–, दिणअर <दिनकर, सोणार–<स्वर्णकार–।

३. –इण ; प्रा. पड्काइल<पङ्काविल–।

४. –वाल (<–पाल–) ; प्रा. गुत्तिवालअ<गुप्ति-पालक–।

५. –हर (<– घर–) ; अप. धराहर—'बादल', महिहर–'पहाड़'।

नौ | समास

§ १७८. प्रा. भा. आ. भाषा के सभी प्रमुख प्रकार के समास प्रारम्भिक म भा. आ भाषा मे चलते रहे ; परन्तु वैदिक भाषा के समान प्रारम्भिक म. भा. आ. मे मुख्यत. दो पदो के या अधिक से अधिक तीन पदो के समास मिलते हैं। म. भा. आ के साहित्यिक गद्य (अर्थात् पालि, अर्धमागधी, सस्कृत नाटको की प्राकृत तथा जैन अपभ्रश) ने लौकिक साहित्यिक संस्कृत के आदर्श का अनुसरण करते हुये दीर्घ एव जटिल सामासिक पदो के प्रति रुचि प्रदर्शित की ; परन्तु यह म. भा. आ. के स्वभाव के विपरीत बात थी। म. भा. आ. के द्वितीय-पर्व से वर्ण-परिवर्तन जिस तीव्र गति से हुये, उनके कारण प्रा. भा. आ. से परम्परया प्राप्त सामासिक-पद घिसकर असमस्त पद की सी स्थिति मे आ गये। इस प्रकार—परवर्ती ब्राह्मी अभि. पितुच्छा<पितृ-ष्वसा, निय. लेहरग <लेखहारक, जैन महा. लेहारिय- <लेखहारिक-, प्रा पणइणो<प्रणयिजन., अप सिलायल- <शिलातल-, अलिउल<अलिकुल-, पयावदि<प्रजापति-, विप्पिअआरअ-<विप्रियकारक-, इन्दीआल-<इन्द्रिय-जाल-, गएन्द- <गजेन्द्र, तरुहल- <तरुफल-, देउल- <देवकुल-।

§ १७९. म भा. आ. मे प्रमुख समास हैं—(१) द्वन्द्व, (२) कर्मधारय, (३) तत्पुरुष, (४) बहुव्रीहि, और (५) अलुक समास। अव्ययीभाव समास प्रारम्भिक म. भा. आ. मे पर्याप्त संख्या मे था, परन्तु बाद मे कुछ तो द्वन्द्व समास में शामिल हो जाने तथा कुछ घिसकर असमस्त-पद बन जाने के कारण इसका लोप हो गया। अन्य प्रकार के समासो के छिटपुट उदाहरण मिलते हैं।

समास मे आये पदो का क्रम कभी-कभी प्रा. भा. आ. से भिन्न है, जैसे—मूढविसो (वसुदेवहिण्डी) = स. विड्मढः।

१. द्वन्द्व

§ १८० द्वन्द्व-समास की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही समाहार (ए व) की ओर रही है। इस प्रकार अशोकी मे—सुस्रोयन-वुखियएां (स्तम्भलेख), मातापित्रइ (गिर.) के साथ-साथ मतपितुषु (शा., मा) मातापितिसु (का., धौ., टो), दसभटकस (शा., मा), दसभटकसि (मा.), दासभटकसि (का., धौ, जौ), मित-सस्तुत-ञातिक्यानं (का),—भनिकन (शा., मा.)। उत्तर-पश्चिमी खरोष्टी अभिलेखो मे—मवपिवर (प, ए व,) के साथ-साथ मतरपितरण (प, ब. व.)। निय-प्राकृत मे ब. व की अपेक्षा ए व अधिक प्रचलित है[1]—पितुमबुए, मबुपितुस्य, हस्तपदमि के साथ-साथ एदेव पितपुत्रन। इसी प्रकार अपभ्रंश मे जरामरणह, अघ-उघ-मज्झे, श्रागम-वेअपुराणे, परन्तु राम-कण्हा, खिति-जल-पवण-हुतासणेहि, रावण-रामहं (प, ब ब)[2]। इस प्रवृत्ति ने निय (मिलाइये Burrow § 156) तथा अपभ्रंश में वर्ग-रूपो (Group-inflection) को जन्म दिया। इस प्रकार—निय. फोज्भो यितक सोग बुक्तोस च 'कोज्भ यितक और तोग वुक्तोस को,' अप मिण-मअगम-करि-भमर पेक्खेह हरिणह जुत्त 'मीन, मक्षिका, हाथी, भ्रमर और हिरन का व्यवहार देखिये'।

२. कर्मधारय

§ १८१ कर्मधारय मे विशेष्य-विशेष्य अथवा विशेषण-विशेषण समास (Appositional Compound) भी शामिल है, जो म. भा आ मे बहु-प्रयुक्त है। म भा आ मे व्यक्तिवाचक नाम को पहले रखने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। इस प्रकार—अशो (भाब्रू) खलतिक-पवतसि, (धौ) तिस-नखतेन, (नागार्जुन) लंमिनिगामे, धंमनन्दि-थेर, खारवेल खारवेल-सिरि (सिरि-खारवेल भी), बौ. स नलिनी-धीतरा, राहुल-सिरि; जैद अभि सघमित्र-राजस; जैन महा चउडपज्जोय-राया, प्रा पज्जुण्ण-सिरिणा 'श्री प्रद्युम्न द्वारा' (वसुदेव-हिण्डी)।

नाम को पहले रखने की यह प्रवृत्ति इन उदाहरणो मे भी है—अशो (टो आदि) अठमि-पखाए 'पखवारे की अष्टमी को', निय. एकवसि-मसम्य, अर्धमा दसमी-वक्खेन। कर्मधारय के अन्य उदाहरण—अशो (ब्रह्मगिरि)

---

१ Burrow § 135।

२ मिलाइये प्रा. रामकेसवाए, अमारेन्लमारेन्ताणं।

दीघावुसे 'दीर्घायु के लिये', (गिर.) बहुतावतकं, (धौ.) बहुतवके, (का.) बहुतावंतके, 'बहुत-उतने'; (टो. आदि) सेत-कपोते 'सफेद कबूतर', अनठिक मछे 'बिना हड्डी की मछली', वधि-कुकुटे, (धौ., जौ.) सव-मुनिसान 'सब मनुष्यों का', एक-पुलिसे 'कुछ लोग', नासिक गुहा-लेख एक-बम्हण; नियं. अनति-लेख 'आज्ञापत्र', नागार्जुन सेल-वढाकि 'पत्थर तराशने वाला'; बौ. स. सत्त-राजनेषु; प्रा. मट्टिआ-सअडिआ 'मिट्टी की गाडी'; मागधी वलिवृद्द-चालुदत्त-; अर्धमा. हट्ठ-तुट्ठ<हृष्ट-तुष्ट-'; प्रा. बुड्ढ-बइल्ल, घर-मोरो< गृह-मयूर', चुल्ल-पिउणो 'पिता के छोटे भाई का, (वसुदेवहिण्डी); अप. बहुजणाइ 'दस लोग'।

§ १८२. म. भा. आ. में कर्मधारय समास की एक विशेषता है व्यक्ति-वाचक नाम को पहले रखना। इस प्रकार–कुशराजा (महावस्तु) 'राजाकुश'।

३. तत्पुरुष

§ १८३. कारक-सम्बन्ध पर आधारित विभिन्न प्रकार के तत्पुरुष-समास के उदाहरण म. भा. आ. से नीचे दिये जा रहे हैं;

(अ) तृतीया—अशो. बंधन-बध-<बन्धन-बद्ध-, (टो.) वयो महल्लक 'उमर में बड़ा', (का., धौ.) दान-संयुत-; खरो ध. धम-जिवि-<धर्म-जीवी, हस्त-सञतु<हस्त सयतः; प्रा. एास्स-कडुअ-; अप. आइ-रहिअ-< आदि-रहित-, तोम्हा-विहुणो 'तुम्हारे बिना'; आसुरुत्ता (वसुदेवहिण्डी) 'आँसू बहाकर रोते हुये'।

(आ) चतुर्थी—अशो. (गिर., का., धौ.) धंम-मंगले 'धर्म के लिये अनुष्ठान', (गिर., का., धौ., टो. आदि) धंम-लिपि 'धर्म के लिये लिखना', (शा., मा.) पशोपक-, (गिर., का.) पसोपग-, (धौ., जौ.) पसुओपग 'पशुओं के लिये उपकारी'; नियं. अठोवग 'अर्थोपयोगी'; प्रा. ण्हाणसडिआ 'नहाने का वस्त्र'।

(इ) पञ्चमी—खरो ध. अभमुतो<अभ्र मुक्त', परन्तु यह एक सदिग्ध उदाहरण है, क्योंकि यह असमस्त अभ्राद् मुक्तः का प्रतिरूप भी हो सकता है।

(ई) षष्ठी—अशो. (कौशा.) तिवल-मातु 'तिवल की माता का', (टो.) देवि-कुमालानं 'रानी के कुमारों का', (शा मा., का.) वच-गुति<वचो-गुप्ति-, (धौ.) नगल-जनस 'नगरवासियों का', (गिर.) गुरु-सुस्रुसा, 'गुरु-सेवा', प्राण-सत-सहस्रणि; खरो. ध. गोवम-सवक<गौतम-श्रावक-; प्रा.

छिण्णालिआ-पुत्तो 'छिनाल का बेटा', जण-संमद्दे 'लोगों की भीड़ मे', मागधी मश्चलीशत्तु 'मछलियो का शत्रु' ; नासिक महाराज-माता, गोतमी-पुतो ; अप. णभजलु<नभजल-गिरिसिंगहु 'पहाड़ की चोटी से', सूरप्पभाए 'सूर्योदय मे' ।

(ड) सप्तमी—अशो. (का.) 'अगभुत 'पहले पैदा हुआ', खरो. घ अप्रमुव-रद 'अप्रमाद मे रत', पग-सन 'कीचड मे सना' ; प्रा. माडु-घर-लद्ध— 'माता के घर मे पाया हुआ', कवड्ड-डाइणी 'पैसे मे डाइन' ; अप विसआ-सत्ति<विषयासक्ति-, हिययसाहीण '(द्वि., स्त्री) 'हृदय पर शासन करने वाली को' (वसुदेवहिण्डी) ।

(ऊ) द्वितीया—अशो (गिर) दसवर्सभिसितो 'दस वर्ष से अभिषिक्त', खरो. ध. वस-शव-जिवि 'शतायु', मल-भणि 'मृदु-भाषी', वहो-जगरु<बहु-जागर , अप. वक-हसिरि— 'बांकेपन से हंसने वाली', अद्धच्छि-पलोइरी 'आँख मीचं कर देखती हुयी' ।

(ए) उपपद—अशो. (का.) आदिकले<आदिकर. 'आरम्भ करने वाला', (गिर) सर्वलोक-सुखाहरो 'सबको सुखदायी', खरो ध धमचरि 'धर्मचारी', धमधरो 'धर्म का पोषक', भुम-ठो[1] 'भूमि पर स्थित', एक-पणनुअवि<*एक प्राणानुकम्पी— रधे-अरो 'रथ पर चढ़ा', भय-दशिम 'भय देखने वाला' ; कार्ले गुहा-लेख अठ-भाया-प(द)- 'आठ स्त्रियाँ (ब्राह्मणो को देने वाला' ; वी स रणं-जह— 'रणछोड', सर्व-दद— 'सब कुछ देने वाला', दु खानुपधिय प्रा. खुण्ट-मोडक— 'खूँटा तोड़ने वाला', गण्ठिच्छेवअ— 'गाँठ काटने वाला', निय घिद-पशवन 'घी बहाने वाली (गायें)' ; सुइ विहार ताम्रपत्र ध (मं) कथिस 'धर्म प्रचारक का' ।

४. बहुव्रीहि

§ १८४. बहुव्रीहि-समास म भा. आ मे अन्त तक जीवित रूप से बना रहा । म. भा. आ. भाषा-काल के अन्त की ओर बहुव्रीहि का अर्थ लुप्त होने लगा और इस क्षति की पूर्ति के लिये विशेषण-प्रत्यय जोडे जाने लगे । उदाहरण—अशो. महाफल—, (टो. आदि) पत-वध—<प्राप्तवध—, (गिर)

---

१. यह एक वास्तविक (न कि परम्परागत) म भा आ. समास है, जैसा कि भुम प्रातिपदिक से स्पष्ट है । यदि भुम<भ्रू स भूमन् तब इसे प्रा भा. आ. का समास माना जा सकता है ।

उच्चावुच-छन्द–'विविध रुचि वाले', पिप्रावा पात्र-लेख स-पुत-दलन<स-पुत्र-दाराणाम्; तक्षशिला ताम्र-पत्र स-पुत्र-दरस; खरो. ध. अबलशो 'निर्बल घोड़े वाला', भद्रशु<भद्राश्वः, गभिर-प्रञो<गम्भीर-प्रज्ञ.; निय. सर्वकार्य-कृद, अदर्थ<ज्ञातार्थ., महनुभव<महानुभावः, सर्वञ्ञदर्थी<सर्वज्ञातार्थ; बौ सं. सह-सीपिनी 'साथ सोने वाली स्त्री', चतुर्घोट–'चार घोड़ों वाला रथ'; प्रा. पोरत्थिम-मुही 'पूर्व की ओर मुह वाला', पउर-जुअणो 'ऐसा गाँव जिसमे अधिक युवक हों', हिअअ-पत्थर 'कठोर-हृदय', अप. तनु-अंगउ<तनु-अङ्गकः, बे-मुह– 'दो-मुहाँ', विरल-पहाउ<विरल-प्रभावः, वीस-पाणि 'बीस हाथों वाला', अप्पणच्छन्दउं<आत्मच्छन्दस्क–, ससणेहि=सस्नेहा, (वसुदेवहिण्डी) मूढविसो, भयगग्गिरगिरो 'डर से काँपती आवाज वाला', णीवुसाओ 'फूटा हुआ', सओरोहो=सावरोध', राजीवविबुद्धवयण<राजीवविबुद्धवदनः।

५. अव्ययीभाव (Adverbial)

§ १८५. म. भा. आ. के प्रथम-पर्व के अन्त तक आते-आते अव्ययीभाव-समास लुप्त होने लगे थे। द्वितीय-पर्व मे इसके उदाहरण विरल है और परवर्ती अपभ्रंश मे (कुछ ऐसे परम्परागत पदो को छोड, जो असमस्त-पद से बन गये थे) इसका सर्वथा अभाव है।

उदाहरण—अशो. (धौ., जौ.) अनुचातुंमासं, (शा., मा., का., धौ.) आवकपं, (धौ.) आकप, (नागार्जुन) आचवमसूलिय, (गिर, जौ.) आ-तंव-पंनि, (स्तम्भ-लेख) आ-पाणदखिनाये, (धौ, जौ.) आवाधमके, (टो) चवमसुलियिके, (ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर), यथारहं, (टो) पुता-पपोतिके, (स्तम्भ-लेख) अनुपोसथं, (गिर., का, धौ, जौ., मा) अनुदिवसं, (स्तम्भ-लेख) आसंमासिसे, (का.) दीयढ-मति, (मा) –मत्रे, (शा) –षमत्रे; निय. यव-जिव, यथा-काम, यथ-क्रम, यथ-गम-गरनीय–, यथ-दित-सुदित-कुलित, किक्रम, शिघ्र-कर्येन; बौ स. एकदुकाये 'इक्के-दुक्के', स्तनाचुसणं (आसति), केवचिरं 'कितनी देर', कार्षापन-मासिकं 'कार्षापण से तोला गया मास'; प्रा. एक्कपहारिअ<एकप्रहारिकम्।

६ पुनरावृत्तिमूलक तथा इतरेतर (Iterative and Reciprocal)

§ १८६ पुनरावृत्तिमूलक-संज्ञा-समास सामान्यतः अनिश्चित बहुत्व प्रकट करते हैं। उदाहरण—अशो. (गिर) अञमञस, (मा.) अणमणस, (मा.) अञमञस, (का.) अनोमंनस, (स्तम्भ-लेख) सुवे-सुवे, हिवत-पालते, निय.

अंब्रमंत्रन, वेलवेलय, फलोफल ; पा. भलाभल–; नासिक एकीकस ; अर्धमा. कल्लाकल्लि ; अप. जुअं-जुअ 'अलग-अलग', खण्डाखण्डि– (वसुदेवहिण्डी); वौ. स. भागभागं (करित्वान) (करित्वान) देवदेवां (नमस्यन्ति) ।

७. कृदन्तीय (Participial)

§ १८७ अशोकी मे –मत उत्तर पद वाले समासो में कर्मवाच्य भूतकालिक कृदन्त का भाव आ गया है, जैसा कि प्रा. भा. आ भूतपूर्व– और वशीकृत– में । इस प्रकार—(शा.) कटव-मतं, (शा मा.) गुरुमत, (का.) गलुमत, गलुमततले, (शा) गुरुमततरं, (गिर.) गरुमतो, (शा) छमितविय-मते, (शा , मा., का) मुखमते, (जौ) मोखियमत, (धौ , टो , मेरठ) मोख्य-मते, (गिर) वेदन-मते, (का , मा.) वेदनिय–, (गिर., का., धौ. जौ , शा , मा) साधुमता, (का.) हुत-पुलुव, (मा) –भ्रुव, (धौ , जौ.) हुत-पुलुव–, (गिर) भूत-पूर्वं, –पुव, (शा , मा) भुत-भ्रुव, (मस्की) मिसि-भूत ; प्रा मण्डणी-हूअं ; अर्धमा. सुवण्णि-काडणो ।

८. प्रादि-समास (Prepositional)

§ १८८ म. भा. आ मे सु तथा दुर् उपसर्गों को छोड़ अन्य उपसर्गों के साथ समास बहुत विरल हैं । उदाहरण—अर्धमा प-तेलस(<*प्र-त्रयोदश) 'लगभग तेरह', अप. दुमाणव 'बुरा आदमी' ।

९. अलुक्-समास (Syntactical)

§ १८९.—विविध प्रकार के अलुक् समास—

(१) अव्यय, सज्ञा अथवा क्रिया विशेषण के साथ—अशो. (सुपारा) उपासकान्-अतिकं, तुफाकतिकं, (टो) एतदया 'इस अर्थ से' ; निय. तस्मर्थ ।

(२) पद के साथ—अशो. (स्तम्भ-लेख) चिलं-ठितिका, बौ सं कुतोन्तरी एहिभिक्षुका–(<एहि भिक्षुक) 'भिक्षुक के स्वागत का वाक्य', अप जइड्डिआ 'आना और ठहरना' ।

§ १९०. म भा आ. मे प्राय तत्पुरुष, बहुव्रीहि तथा अलुक् समास के साथ स्वार्थिक प्रत्यय लगाया जाता है । इस प्रकार—(टो) अघकोसिक्यानि, (शा:) चिर-ठितिक, (का.) चिल-थितिक्या, –ठितिक्या (गिर.) दढ-भतिता, (जौ.) लाज-वचनिक, (का., शा) लहुदंडता–; नागार्जुन अपुवधनिक–; निय. पर-परारि-वर्षि-घृत, इम-वर्षि-पल्पि , त्रेवर्षग उट

सतवर्षेग उट ; नासिक अविपन-मातु-ससुसाकस ; बौ. सं. (दुवे) जायपतिका ; मागधी दलिद्द-चालुदत्ताके ; अप बुड्ड-दियहडा (विसयसुहा), सुहच्छडी, मज्झि-सडी, बाहुबलुल्लडा, पच्छायावडा, नववहुदंसणलालसउ ।

§ १९१. कभी-कभी समास मे प्रातिपदिक का रूप प्रा. भा. आ. भाषा से भिन्न भी हो जाता है। इस प्रकार—अशो (गिर.) योन-राज (गिर.) (गिर., धौ., जौ.) –लाजा ; खारवेल उत्तरापथ-राजानओ ; जैन महा पज्जोय-राइणो। अशो. (कौशा.) तिवलमातु ; भट्टिप्रोलु कुर-पितुनो जैसे समास वैदिक एव महाभारत के वाग्व्यवहार के अनुसार है।

§ १९२. इन्दुबिन्दुसेना (अर्थात् इन्दुसेना-बिन्दुसेना) मे समास के दोनो पदो मे समान 'सेना' का लोप हुआ है। ऐसा उदाहरण ऋ. स. मे है—पतयन्मन्दयत्सखम् ।